भारत का प्राकृतिक भूविज्ञान

भारत—देश और लोग

भारत का प्राकृतिक भूविज्ञान

शंकर मोहन माथुर

अनुवाद

विजय सिंह

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

मुख पृष्ठ : भोपाल (म. प्र.) के पास विन्ध्य क्वार्टजाइट के चट्टानी अवशेष (एस. एम. माथुर)

मानचित्रों के भीतर प्रदर्शित विवरण की प्रामाणिकता की जिम्मेदारी प्रकाशक की है।

ISBN 81-237-2061-0

पहला संस्करण : 1997

दूसरी आवृत्ति : 2003 *(शक* 1924)

Physical Geology of India *(Hindi)*

रु. 45.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

मेरी पत्नी
बिंदेश्वरी को

विषय सूची

प्राक्कथन

एक सौ पचास वर्ष पूर्व चार्ल्स लायल की "भूविज्ञान के सिद्धांत" प्रकाशित हुई जिसमें पृथ्वी की सतह पर हुए पिछले परिवर्तनों की वर्तमान में क्रियाशील कारकों के संदर्भ में व्याख्या करने का प्रयास किया था। उस समय के वैज्ञानिकों पर उस पुस्तक का बहुत प्रभाव पड़ा और यही प्रभाव एकरूपता की अवधारणा का प्रमुख स्रोत था।

इस पुस्तक के लेखक, एक अनुभवी भूवैज्ञानिक हैं, जो कि भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण से सेवानिवृत्ति के पश्चात वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के मानद वैज्ञानिक नियुक्त हुए। उन्होंने भारत के भूविज्ञान तथा उसकी वर्तमान आकृतिकी के निकट संबंध पर जोर दिया है और इसे विस्तृत रूप में विवेकपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है।

कुछेक देशों में भौतिक रूप से एक-दूसरे से अलग तीन इकाइयों में ऐसा स्पष्ट अंतर दिखाई देता है जैसा भारत में—यथा प्रायद्वीपीय भूपृष्ठ क्षेत्र, हिमालय की वलयित उच्चावचित पर्वतमालाएं, एवं इनके मध्य स्थित सिंधु-गंगा अवनमन। इन्हीं तीन भागों को समाहित करते हुए इस पुस्तक की रचना की गई है।

पुस्तक में उपमहाद्वीप के भौतिक भूविज्ञान के समस्त पहलुओं, जिनमें भूकंप समस्थिति एवं गुरुत्व, पुराचुंबकत्व, महाद्वीपीय संचलन, सागरतल विस्तार तथा प्लेट विवर्तनिकी आदि का वर्णन किया गया है। यह पुस्तक समस्त भूगोलविदों, भूवैज्ञानिकों के पुस्तकालयों में संग्रहणीय है और इसके साथ लेखक इस विषय पर अद्यतन जानकारी प्रस्तुत करने के लिए प्रशंसा के पात्र हैं।

3 सितंबर, 1984

—विलियम डिक्सन वेस्ट
(अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, सागर विश्वविद्यालय)

प्रस्तावना

किसी भी प्रदेश की प्राकृतिक विशिष्टताएं उसकी संस्कृति एवं इतिहास के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। यह भारत जैसे उपमहाद्वीप के विषय में और भी सत्य है, जिसकी उत्तरी सीमा का प्रहरी प्रायः अगम्य हिमालय है एवं प्रायद्वीपीय भाग की रक्षा हेतु विशाल महासागर हैं। दोनों ही अवरोधों ने इस भूप्रदेश की अनवरत बाह्य आक्रमणों से रक्षा की है और इस सत्य ने ही हमारे इतिहास व भाग्य का निर्माण किया है। प्राकृतिक कारकों ने हमारी संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सिंधु घाटी की महान सभ्यता संभवतया अस्तित्व में ही न आई होती यदि उसे उपजाऊ नदी घाटियों का अवलंब न मिला होता। गौरवशाली कला एवं अजंता एलोरा तथा एलिफेंटा की वास्तुकला की उत्पत्ति इसी चतुर्दिक प्राकृतिक पर्यावरण के कारण संभव हुई है। प्रकृति के महत्व को भारतीयों ने आदिकाल से ही समझ लिया था जैसा कि हिंदू तथा बौद्ध धर्मों में पर्वतों एवं सरिताओं से संदर्भित जनश्रुतियों से स्पष्ट है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि समस्त ज्ञात सार्वभौमिक संरचनाओं के लिए प्राकृतिक भूविज्ञान की प्रक्रियाएं ही उत्तरदायी हैं और इस प्रकार प्राकृतिक भूविज्ञान हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

पिछले तीन दशकों में भूविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अभूतपूर्व विकास हुआ है। इस अवधि में हुई प्रगति पिछली एक शताब्दी में हुई प्रगति से कहीं अधिक है। कुछेक पुराने विचारों को अब छोड़ दिया गया है तथा कई नए तथ्य एवं सिद्धांत प्रकाश में आए हैं। इस छोटी-सी पुस्तक में भारत के भूविज्ञान के समस्त प्राकृतिक पहलुओं पर उपलब्ध अद्यतन जानकारी, जिसका कोई सटीक अभिलेख अभी तक उपलब्ध नहीं है, को एक स्थान पर एकत्र करने का प्रयास किया गया है। कुछेक नए विषय—उदाहरण के लिए सिंधु-गंगा के मैदान, अपतटीय क्षेत्रों का भूविज्ञान तथा पटल विवर्तनिकी तथा प्रसारी पृथ्वी की अवधारणा आदि को इसमें सम्मिलित किया गया है क्योंकि इन्होंने वर्तमान समय में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है परंतु आधुनिक भारतीय साहित्य में इन्हें अभी तक समुचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ है।

पुस्तक की आवश्यकतानुसार इसमें उन क्षेत्रों, जो कि प्रतिवेशी देशों के अंतर्गत

आते हैं, के आंकड़ों को भी संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप की प्राकृतिकी तथा भूविज्ञान की दृष्टि से सम्मिलित किया गया है क्योंकि वे घनिष्ट रूप से इस मूलभूत फैब्रिक में गुंथे हुए हैं। इन क्षेत्रों से संबंधित किसी भी जानकारी को अलग करने के किसी भी प्रयास से उपमहाद्वीप की विशिष्टताओं को तथा पृथ्वी के इस भाग की बनावट पर उनके अत्यधिक प्रभाव को समझने में एक गंभीर व्यवधान आ जाएगा।

मैं, प्रोफेसर विलियम डिक्सन वेस्ट (सागर) तथा एफ. अहमद (जम्मू) का इस पांडुलिपि के आलोचनात्मक अध्ययन तथा उनकी बहुमूल्य टिप्पणियों एवं सुझावों के लिए आभारी हूं। मैं, सर्वश्री बी. एस. माथुर व ओम प्रकाश सचदेव का मानचित्रों के प्रारूप तथा प्रवीण कुमार माथुर का छायाप्रतियां तैयार करने के लिए हार्दिक रूप से आभारी हूं। मैं उन सभी का ऋणी हूं जिन्होंने उदारतापूर्वक निगेटिव प्रदान किए, उनके नाम छाया चित्रों के शीर्षकों के साथ कोष्ठकों में दिए गए हैं। मेरे अनेक मित्र व शुभचिंतक जिन्होंने अपने शोध पत्रों की प्रतिलिपियां मुझे उपलब्ध कराईं, मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। मैं अपनी पुत्री अर्चना का इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में प्रदत्त सहायता व भतीजे गोविंद जिनका इस पुस्तक की विषय सूची संकलित करने में सहयोग रहा, कृतज्ञ हूं। अंत में मैं प्रोफेसर टी. वी. पी. जी. आर. के. मूर्ति (सागर) के प्रति विभाग में कार्यशील वातावरण बनाने हेतु, जिसके कारण ही यह कार्य संभव हो पाया है, अपना आभार प्रकट करता हूं।

सागर
सितंबर, 1984

—शंकर मोहन माथुर

मानचित्र सूची

चित्र सूची

VII चित्र-1 मध्यप्रदेश में जबलपुर के निकट नर्मदा नदी पर धुआंधार जल प्रपात।
(एच. एन. पाण्डे)

चित्र-2 सह्याद्री पर्वतमाला में शरावती नदी पर जोग जल प्रपात।
(आई. बी. अवस्थी)

1

आकृति-विवर्तनिक प्राधार

भूमिका

भारतीय उपमहाद्वीप का भूवैज्ञानिक इतिहास तथा संरचना उसके प्राकृतिक लक्षणों द्वारा प्रतिबिंबित होती है। भूविज्ञान तथा आकृतिकी इस प्रकार अंतःसंबंधित हैं कि एक को समझने के लिए दूसरे का अध्ययन आवश्यक है। उपमहाद्वीप को तीन प्रमुख भागों या इकाइयों में विभाजित किया गया है—इनमें प्रत्येक का भूविज्ञान तथा आकृतिकी विशिष्ट है। ये इकाइयां निम्नवत् हैं :

1. हिमालय तथा उसके पूर्वी एवं पश्चिमी विस्तार
2. इसके दक्षिण की ओर सिंधु-गंगा का मैदान, तथा
3. प्रायद्वीपीय भारत

इन तीनों इकाइयों की स्तरिकी (स्ट्रेटिग्राफी), विकास (इवोल्यूशन) तथा संरचना (स्ट्रक्चर) एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। हिमालय तथा अन्य पर्वतमालाएं जो कि उससे ही विस्तारित हैं, अधिकांशतया सागरीय प्रागजीवी (प्रोटेरोजोइक) तथा दृश्यजीवी (फेनेरोजोइक) अवसादों से निर्मित हैं एवं विवर्तनिकी दृष्टिकोण से अत्यधिक विक्षुब्ध हैं। इनकी उत्पत्ति पटल विरूपी-संचलन (डायस्ट्राफिक मूवमेंट्स) के कारण है जिससे इन पर्वतमालाओं की उत्पत्ति अपेक्षाकृत अभिनव भूवैज्ञानिक समय में हुई है। अत्यधिक वलयित एवं भ्रंशित शैल इनकी विशेषता हैं तथा ये पर्वत अत्यधिक ऊंचे हैं।

सिंधु-गंगा मैदान इकाई एक अत्यंत ही नवीन संरचना है जोकि चतुर्थ कल्प की अवधि में निर्मित हुई है। ऊंची भूआकृति के संदर्भ में इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं है और सामान्यतया यह एक तरंगित मैदान है जिसे अत्यधिक विकसित सरिता-तंत्र द्वारा उत्कीर्ण किया गया है। इसकी सतह होलोसीन या अभिनव आयु के अवसादों से आच्छादित है। पश्चिम की ओर यह विस्तृत थार मरुस्थल से मिल जाता है।

भूवैज्ञानिक एवं भूआकृतिकी दृष्टि से भारतीय प्रायद्वीपीय क्षेत्र पूर्ववर्ती दोनों ही विभाजनों से पूरी तरह से अलग है। यहं कोम्बियन पूर्व (प्रीकैम्ब्रियन) शैलों का स्थायी समूह है, जिनमें से कुछेक तो पृथ्वी की रचना के समय से यहां विद्यमान हैं। अपने

संपूर्ण भूवैज्ञानिक इतिहास में ये शैल इसी स्थिति में हैं और इनमें कोई भी संरचनात्मक परिवर्तन शायद ही हुआ हो। इस प्रायद्वीपीय क्षेत्र को प्रभावित करने वाली दृश्यजीवी घटनाओं में गोंडवाना काल में अवसादन व मीसोजोइक कल्प के डेक्कन लावा प्रवाह हैं। प्रायद्वीप की स्थलाकृति ऊबड़-खाबड़ अवश्य है परंतु हिमालय के समान नहीं। अरावली पर्वतमाला के अतिरिक्त, प्रायद्वीपीय पर्वतमालाओं के उद्गम के लिए विवर्तनिकी उत्तरदायी नहीं है वरन वे पूर्व में विद्यमान पठारों के अनाच्छादन (डेन्युडेशन) के परिणामस्वरूप अवशिष्ट पर्वतमालाएं हैं—ये परिअनाच्छादन पर्वतमालाएं हैं।

इनके अतिरिक्त एक चौथा विभाजन भी है, जो भली प्रकार स्पष्ट नहीं है और जिस पर काफी लंबे समय तक भूवैज्ञानिकों का ध्यान ही नहीं गया। ये हैं : प्रायद्वीप को घेरे हुए तटीय मैदान जिनके आगे महाद्वीपीय सीमा है। ये पूरी तरह से अभिनव या होलोसीन अवसादों से निर्मित हैं, और कभी कभी अत्यधिक भूवैज्ञानिक महत्व के दृश्यजीवी (फेनेरोजोइक) संस्तरों को आच्छादित करते हैं।

बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर स्थित द्वीप समूहों व सागरों पर विचार किए बिना भारत के प्राकृतिक भूविज्ञान पर किया गया कोई भी कार्य अधूरा ही रहेगा। भारत को घेरे हुए ये महासागर वर्तमान काल में भूवैज्ञानिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टियों से बहुत ही महत्वपूर्ण हो गए हैं। भूवैज्ञानिक पुराकाल में ऐसे जलकाय ही स्तरित निक्षेपों के मूल निक्षेपण स्थल रहे हैं, तथा आधुनिक महासागरों के अध्ययनों से अवसादन की यांत्रिक प्रक्रिया तथा पृथ्वी के वर्तमान स्वरूप को निर्मित करने वाली भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायता मिली है। इन सागरीय अध्ययनों के परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक खनिज निक्षेपों के एकत्रीकरण, जिनमें हाइड्रोकार्बन के विशाल भंडारण क्षेत्र भी हैं, महाद्वीपीय सीमांत तथा सागर तल में मिले हैं। बॉम्बे हाई में पेट्रोलियमयुक्त संरचनाओं की खोज, तथा अरब सागर में बहुमूल्य बहु-धात्विक खनिज पिंडों की खोज, केवल दो उदाहरणस्वरूप हैं जिनसे भारत में अधःसागरीय भूविज्ञान के अध्ययन को बल मिला है। अतः भारत के भूवैज्ञानिक इतिहास के अध्ययन क्रम में सागरों की भूमिका का निरीक्षण आवश्यक है।

भारत के प्राकृतिक भूविज्ञान की इन विशिष्टताओं की विस्तृत चर्चा अगले अध्यायों में की गई है। उन प्रक्रियाओं, जिनके द्वारा इन विशिष्टताओं का निर्माण व रचना हुई है, समझने के लिए उनकी भूआकारिकी, भूवैज्ञानिक इतिहास तथा विवर्तनिकी को जानना आवश्यक है तथा विश्वव्यापी आधार पर कार्यरत प्रमुख बलों का ज्ञान भी आवश्यक है जो कि महाद्वीपों व महासागरों के निर्माण के लिए उत्तरदायी हैं और जो पृथ्वी की रचना में ही, जब गैलेक्सीय धूल व गैस ने घनीभूत होकर लगभग 4.5 बिलियन वर्ष पूर्व पृथ्वी का निर्माण किया, उन्हें बना व संवार रहे हैं, और इन आधारभूत विषयों तथा अवधारणाओं के ज्ञान के बिना भूविज्ञान का अध्ययन निश्चित रूप से अधूरा है।

भूआकारिकी (जियोमॉर्फोलॉजी)

संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप को उसकी भूआकारिकी के आधार पर छह प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है, तथा प्रत्येक क्षेत्र को पुनः उपक्षेत्रों में विभाजित किया गया है (मानचित्र-I)। इन क्षेत्रों में से प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट भूविज्ञान है जिसे इस पुस्तक में उचित अध्यायों में वर्णित किया गया है। निम्नलिखित वर्गीकरण भारत के राष्ट्रीय एटलस से कतिपय संशोधनों के साथ उद्धरित किया गया है :

(1) उत्तरी पर्वतशिखर
- 1. पूर्वोत्तर पर्वतमालाएं
- 2. पूर्वी हिमालय
- 3. मध्य हिमालय
- 4. पश्चिमी हिमालय
- 5. पश्चिमोत्तर पर्वतमालाएं
- 6. बलूचिस्तान पर्वतमालाएं

(2) विशाल मैदान
- 1. असम का मैदान
- 2. पूर्वी मैदान
- 3. उत्तरी मैदान
- 4. सिंधु का मैदान
- 5. थार मरुस्थल

(3) मध्य उच्चभूमि/अधित्यका
- 1. उत्तर-मध्य उच्चभूमि
- 2. दक्षिण-मध्य उच्चभूमि

(4) प्रायद्वीपीय पठार
- 1. पूर्वी पठार
- 2. उत्तर-दक्षिणी पठार
- 3. दक्षिणी पठार
- 4. पूर्वी घाट
- 5. पश्चिमी घाट

(5) तटीय मैदान
- 1. पूर्वी तटीय मैदान 2. पश्चिमी तटीय मैदान

(6) द्वीप समूह
- 1. बंगाल की खाड़ी के द्वीप समूह 2. अरब सागरीय द्वीप समूह

उत्तरी पर्वतमालाओं के अंतर्गत बृहत हिमालय है जिसकी शृंखलाएं पूर्वोत्तर में भारत-बर्मा सीमा तथा पश्चिम में पाकिस्तान पर्वतमालाओं से मिलती हैं। बृहत हिमालय 2500 किमी. से अधिक क्षेत्र में एक बृहत अर्धचंद्राकार संरचना के रूप में पूर्व में मिशमी पर्वत से पश्चिम में पामीर पर्वतमाला तक फैला है तथा जिसका उन्नतोदर भाग उत्तर भारतीय मैदान की ओर है। इसकी दक्षिणी सीमा गिरिपाद (फुट हिल्स) से स्पष्ट है, परंतु इसकी उत्तरी सीमा तिब्बत के पठार के किनारे में मिल जाती है। अरुणाचल प्रदेश, असम तथा भूटान की पर्वतमालाएं पूर्वी हिमालय के नाम से जानी जाती हैं। मध्य हिमालय क्षेत्र में नेपाल राज्य की पर्वतमालाएं, तथा पश्चिमी हिमालय में कुमाऊं, पंजाब तथा कश्मीर हिमालय की पर्वतमालाएं सम्मिलित हैं। असम-बर्मा सीमा पर स्थित पूर्वोत्तर पर्वतमालाएं हैं जिनकी दिशा उत्तर-दक्षिण है और जो बृहत हिमालय के पूर्वी छोर से बर्मा में पश्चिम की ओर उभरे हुए चाप के आकार में हैं। मेघालय पठार अब इन पर्वतमालाओं की ही निरंतरता में है परंतु बहुत पहले प्रायद्वीपीय पठार के विशाल खंड का ही फैलाव था। पश्चिमी हिमालय पर्वतमाला के और आगे अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान की दक्षिण घुमाव वाली पर्वतमालाएं हैं जिन्हें पश्चिमोत्तर पर्वतमालाओं में सम्मिलित किया गया है। इनकी परिणति सुदूर दक्षिण में स्थित बलूचिस्तान की पूर्व-पश्चिम फैली पहाड़ियों में हुई है।

विशाल मैदान पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम में उत्तरी पर्वतमालाओं तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठारों के मध्य सीमित हैं। असम के मैदानी क्षेत्र में ब्रह्मपुत्र घाटी स्थित है। पूर्वी मैदान बंगाल द्रोणी तथा बिहार को आच्छादित करता है, उत्तरी मैदान उत्तर प्रदेश, पंजाब-दोआब आदि को आच्छादित किए हुए है तथा सिंधु नदी का मैदान पंजाब के भागों तथा सिंध को आच्छादित करता है जिसका सिंचन इसी महानदी में होता है। शुष्क थार मरुस्थल अपनी प्रकृति के कारण सिंधु-गंगा-ब्रह्मपुत्र तंत्र के अत्यधिक उपजाऊ मैदानों से पूर्णतया भिन्न है इसलिए भूआकृति-विज्ञान की दृष्टि से इसे एक अलग घटक के रूप में रखा गया है।

विस्तृत पहाड़ी भूप्रदेश, जो कि आकार में लगभग त्रिभुजाकार है, उत्तर में विशाल मैदान, पश्चिम में अरावली पर्वतमाला तथा दक्षिण में सतपुड़ा पर्वतमाला से सीमाबद्ध है—**मध्य उच्चभूमि** कहलाता है। इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में बुंदेलखंड उच्चभूमि, अरावली पर्वतमाला तथा इन दोनों के बीच की तरंगित भूमि सम्मिलित है। इसके दक्षिणी भाग में प्रमुख रूप से विस्तृत मालवा एवं विन्ध्य पठार हैं जो दक्षिण की ओर सोन-नर्मदा घाटी में मिल जाते हैं।

मध्य उच्चभूमि के दक्षिण में स्थित विशाल **प्रायद्वीपीय पठार** आकार में उल्टे त्रिभुज के समान है, तथा भारत का सबसे बड़ा भूआकृतिक भाग है। पूर्वी पठार की स्थलाकृति बहुत ही विविधतापूर्ण है, यह निचली महानदी द्रोणी से बघेलखंड, छोटा नागपुर एवं दंडकारण्य पठारों तक फैला है। उत्तरी दक्षिण पठार का अधिकांश भाग डेक्कन ट्रैप द्वारा आच्छादित है जिसने इसे सीढ़ीनुमा स्थलाकृति की विशिष्टता प्रदान

की है, परंतु इसकी उत्तरी सीमा पर सतपुड़ा पर्वतमाला की पथरीली पहाड़ियां हैं। कर्नाटक व तेलंगाना के उत्तरी पठारों की तरंगित सतह से शेष दक्षिण पठार आच्छादित है। पूर्वी घाट की बिखरी हुई पहाड़ियां दक्षिण भारत की पूर्व की ओर प्रवाहित अनेक सरिताओं द्वारा विच्छेदित हैं जबकि दूसरी ओर पश्चिमी घाट की पर्वतमालाएं पश्चिमी तट के समानांतर लगभग एक अटूट शृंखला के रूप में तट के ऊपर सीधी खड़ी हुई हैं।

ऐसी धारणा है कि पूर्वी व पश्चिमी घाट के तटवर्ती मैदान सामने स्थित महाद्वीपीय शेल्फ में विलीन हो गए हैं। **पूर्व तटीय मैदान** चौड़े हैं और उनमें प्रायद्वीप की मुख्य नदियों के डेल्टा स्थित हैं। **पश्चिमी तटीय मैदान** अपेक्षाकृत संकरे हैं और उनमें केवल नर्मदा तथा ताप्ती के नदीमुख (एस्चयुरी) ही बड़े हैं। इनके उत्तर में गुजरात, सौराष्ट्र तथा कच्छ के विस्तृत जलोढ़ मैदान हैं। पूर्व तटीय महाद्वीपीय किनारा मैदानों की चौड़ाई के बावजूद पश्चिमी तटीय महाद्वीपीय किनारे से काफी संकरा है।

भारतीय द्वीपों के दोनों वर्ग प्राकृतिक रचना तथा उत्पत्ति के संबंध में एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। बंगाल की खाड़ी में स्थित अंडमान-निकोबार शृंखला अधःसागरीय पर्वतों के उभरे हुए भाग हैं, जबकि अरब सागर स्थित लक्षद्वीप समूह पूर्णतया प्रवालों (कोरल्स) द्वारा ही निर्मित है।

विवर्तनिकी

प्रमुख लक्षण

हिमालय क्षेत्र तथा प्रायद्वीप (जिसमें विशाल मैदान समाहित हैं) के विवर्तनिक लक्षण पूर्णतया स्पष्ट हैं, जबकि बाह्य प्रायद्वीपीय क्षेत्र अत्यधिक वलयित तथा भ्रंशित हैं। प्रायद्वीपीय क्षेत्र में विरूपण अत्यधिक कम हुआ है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा 1968 में तैयार किया गया भारत का मानचित्र, समस्त उपलब्ध भूवैज्ञानिक, भूभौतिकी, संरचनात्मक तथा विवर्तनिक जानकारियों की विवेचना पर आधारित है। इस पर आधारित एक सामान्यीकृत मानचित्र भारत के प्रमुख विवर्तनिक लक्षणों को दर्शाते हुए मानचित्र-II के रूप में इस पुस्तक में दिया गया है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा किए गए निर्वाचन को आगे के पृष्ठों में दिया गया है।

भारत में भूपृष्ठ के विवर्तनिक विकास को दो मुख्य चरणों में देखा गया है : 1. भूअभिनतिक तथा, 2. प्लेटफार्म। किसी भी भूप्रदेश के विवर्तनिक वर्गीकरण के लिए भूअभिनतिक विकास को पूर्ण करने वाले प्रमुख वलयनों की आयु का सिद्धांत सुपरिचित है। कई बार वलयित पट्टियों के संरचना आलेख पर्वतनी वलयन (ओरोजेनिक फोल्डिंग) के पारस्परिक संबंधों तथा उनके संभावित अनुक्रम के आंकड़े प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन वलयित तंत्र (फोल्डिंग सिस्टम) के संपर्क स्थल गहराई में स्थित भ्रंश तंत्र में निहित होते हैं जिन्हें संबद्ध शैलों के संरचनात्मक आलेख द्वारा पहचाना जा

सकता है। ऐसी आकृतियां प्राचीन वलयन तंत्र की सीमा निर्धारित करती हैं।

भारतीय भूप्रदेश का संपूर्ण उत्तरी भाग तथा सुदूर पूर्वी भाग को घेरे हुए स्थित बृहत वलयन पट्टी और अराकान योमा वलयित प्रक्षेत्र सीनोजोइक वलयन को प्रदर्शित करते हैं। चूंकि हिमालय वलयित पट्टी के विवर्तनिक विकास के संबंध में भिन्न भिन्न मत हैं तथा इस विषय में स्तरिकीय आंकड़े अपर्याप्त हैं, हिमालय के विकास के संबंध में सर्वमान्य सिद्धांत निश्चित न हो पाने के कारण इस पूरे क्षेत्र को मोटे तौर पर एक ही विवर्तनिक क्षेत्र के रूप में माना गया है। संबद्ध अग्र वलयित प्रक्षेत्र को अलग से माना गया है। अराकान योमा वलयित एक भूअभिनति है जिसमें अग्र गभीर वलयित प्रक्षेत्र (फ्रंटल फोर डीप फोल्डेड जोन) भी समाहित है।

भारतीय प्रायद्वीप में भारतीय प्लेटफार्म का आधार बनाने वाले पांच वलयित क्षेत्रों को ज्ञात किया गया है। ये भूकाल अनुक्रम के अनुसार प्राचीनतम से नवीनतम हैं यथा— 1. धारवाड़ वलयन, 2. अरावली वलयन, 3. पूर्वी घाट वलयन, 4. सतपुड़ा वलयँन, तथा 5. दिल्ली वलयन।

भारतीय प्रायद्वीप के विकास की प्लेटफार्म अवस्था भूअभिनतिक क्षेत्रों के संघनन से प्रारंभ हुई जिसके परिणामस्वरूप प्लेटफार्म का आधारतल निर्मित हुआ, जो वलयित आर्कियन तथा प्रोटेरोजोइक शैलों द्वारा स्पष्ट है। कई अवसादी द्रोणियां भी इस भारतीय प्लेटफॉर्म का भाग हैं। इसके विवर्तनिक विकास में प्रोटेरोजोइक से लेकर निओजीन तक छह संरचनात्मक-स्तरिकीय अनुक्रम ज्ञात किए गए हैं, जो इस प्लेटफार्म के संपूर्ण अवसादी आच्छादन का निर्माण करते हैं। इनमें से प्रत्येक अनुक्रम स्पष्ट तथा व्यापक विषय-विन्यासों द्वारा सीमित है तथा प्लेटफार्म विकास के प्रमुख चरणों को इंगित करता है। ये हैं—1. कडप्पा (निम्न प्रोटेरोजोइक), 2. विन्ध्य (मध्य तथा ऊपरी प्रोटेरोजोइक),3. गोंडवाना (निम्न पर्मियन—निम्न क्रिटेशस) 4. मीसोजोइक, 5. पेलिओजीन, तथा 6. निओजीन।

दक्षिण पठार के मोटे ज्वालामुखीय प्रवाह क्षेत्रीय ऋणात्मक गुरुत्व असंगति संकेत करते हुए, एक प्रमुख ऋणात्मक गुरुत्व प्लेटफार्म संरचना को स्पष्ट करते हैं। इसके नीचे स्थित अवसाद काफी मोटाई के हैं। भिन्न भिन्न मोटाइयों के कडप्पा, विन्ध्य, गोंडवाना तथा मीसोजोइक अवसाद डेक्कन ट्रैप के दृश्यांशों को घेरे हुए हैं। ट्रैप क्षेत्र एक उच्च कोटि के ऋणात्मक प्लेटफार्म संरचना का प्रतिनिधित्व करता है (सिनक्लाइज)। चौड़ी तलहटी वाली विन्ध्य द्रोणी (सिनक्लाइज) पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में प्रमुख भ्रंशों से सीमांकित है, परंतु इसकी उत्तरी सीमा हिमालय विवर्तनिक प्रक्षेत्र तक विस्तारित है। भूभौतिकी सर्वेक्षणों द्वारा इस चौड़ी तलहटी वाली द्रोणी (सिनक्लाइज) में कई प्रथम कोटि की संरचनाएं, यथा—पश्चिम उत्तर प्रदेशीय कगार, शारदा गर्त आदि का पता चला है। बुंदेलखंड ग्रेनाइट गिरिपिंड (मास्सिफ) अपने ढके हुए उत्तर-पूर्वी विस्तार (फैजाबाद कटक) सहित इस चौड़ी पेंदी वाली घाटी का महत्वपूर्ण विवर्तनिक घटक है।

भारतीय शील्ड की सीमाओं के अंदर ही नर्मदा-सोन-दामोदर महानदी तथा गोदावरी द्रोणिकाएं (ग्राबेन्स) स्थित हैं। नर्मदा-सोन-दामोदर द्रोणिका के उत्तर की ओर प्रमुख भ्रंश तंत्र है जो नर्मदा-सोन-दामोदर नदी मार्गों के साथ साथ दृष्टिगत है, तथा दक्षिण में दक्षिण सिनक्लाइज में अवस्थित ताप्ती नदी के साथ साथ भ्रंश तंत्र (फाल्ट सिस्टम) से सीमाबद्ध है। कैम्बे, लक्षद्वीप, केरल तथा भारत-श्रीलंका द्रोणियां तटीय मैदानों तथा अपतटीय क्षेत्रों में स्थित हैं।

भारतीय प्लेटफार्म का विकास

आर्कियन-प्रोटेरोजोइक वलयित पट्टी भारतीय प्लेटफार्म का आधारतल निर्मित करती है। कडप्पा अनुक्रम (प्रोटेरोजोइक) जो भारतीय प्लेटफार्म का सबसे पुराना अवसादी अनुक्रम है, के निक्षेपण की अवधि में कतिपय ऋणात्मक संरचनाओं के विकास के साथ ही भारतीय प्लेटफार्म का विवर्तनिक विकास प्रारंभ हुआ। यह अनुक्रम कडप्पा गर्त, गोदावरी द्रोणिका तथा संभवतया नर्मदा-सोन-दामोदर द्रोणिका के अधिकांश भाग को आच्छादित किए हुए है। अंतिम तथा गोदावरी द्रोणिका का उत्तर-पश्चिमी भाग ही दक्षिण सिनक्लाइज के नाम से जाना जाता है। संभवतया इन दोनों ही द्रोणिकाओं की उत्पत्ति कडप्पा काल की अवधि में ही हुई है। इस संरचनात्मक चरण के विकास में भारतीय प्लेटफार्म का अधिकांश भाग सम्मिलित था। तत्पश्चात इस अंतःप्लेटफार्म क्षेत्रों के उभरे हुए कुछेक भागों से धनात्मक संचलनों के परिणामस्वरूप इन अवसादों का पूर्णरूप से अपक्षरण हो गया।

भारतीय प्लेटफार्म के विवर्तनिक विकास के अगले चरण का संकेत विन्ध्य अनुक्रम में प्राप्त होता है। इस चरण की अवधि में प्लेटफार्म के अधिकांश क्षेत्र धंसाव से प्रभावित हुए एवं विभिन्न बड़ी बड़ी संरचनाओं का निर्माण हुआ। विन्ध्य अनुक्रम उत्तर की ओर विन्ध्य सिनक्लाइज में नर्मदा भ्रंश प्रक्षेत्र, पश्चिमी उत्तरप्रदेश शेल्फ, पूर्वी उत्तरप्रदेश शेल्फ के कुछेक भाग तथा राजस्थान शेल्फ की दिशा में अत्यधिक विकास की ओर संकेत करता है। छत्तीसगढ़ तथा बस्तर गर्त समान संरचनाएं भी इनके साथ ही उत्पन्न हुई हैं। इस चरण के मूल संरचनात्मक ढांचे को परवर्ती संचलनों ने काफी हद तक परिवर्तित किया है जिसके परिणामस्वरूप प्लेटफार्म के कुछ भागों से विन्ध्य अवसाद पूरी तरह से लुप्त हो गए हैं।

विन्ध्य अवसादन प्रक्रिया के समाप्त होने पर, भारतीय प्लेटफार्म धनात्मक संचलनों से प्रभावित हुआ तथा मध्य कार्बोनीफेरस के अंत तक उभरा हुआ रहा, जब गोंडवाना अवसादन प्रक्रिया प्रारंभ हुई। गोंडवाना संरचनात्मक चरण की अवधि में प्राचीन भ्रंशों पर प्रचुर खंड संचलन प्रारंभ हुआ, जिसके परिणामस्वरूप संभवतया प्रमुख आधारतल संरेखणों (लिनियामेंट्स) के पास इंट्राक्रेटानिक ग्राबेन्स की उत्पत्ति हुई। ऐसा विचार किया जाता है कि पश्चिमी बंगाल शेल्फ के अधिकांश भाग की उत्पत्ति इसी

चरण में हुई। द्रोणिका (ग्राबेन) निर्माण के एक द्वितीय चरण ने पूर्ववर्ती चरण की गोदावरी द्रोणिका (ग्राबेन) निर्माण को इस चरण में पूरे तौर से ढक लिया है। इन क्षेत्रों में पश्चिम में साल्ट रेंज और राजस्थान से अथवा पूर्व में महानदी ग्राबेन से सागरीय अतिक्रमण हुआ, जो विवर्तन के कारण नर्मदा-सोन-दामोदर ग्राबेन में अवस्थित है।

इस संरचनात्मक चरण के अंत में इन द्रोणिकाओं का विकास भी रुक गया। बाद के संचलनों द्वारा इन द्रोणिकाओं के मूल संरचनात्मक स्वरूपों में बदलाव आया है।

भारतीय प्लेटफार्म के और अधिक विवर्तनिक विकास में आए हुए स्पष्ट परिवर्तन का प्रतिनिधित्व अगले संरचनात्मक चरण द्वारा किया गया है जिसमें मध्य एवं ऊपरी मीसोजोइक अनुक्रम का निक्षेपण हुआ था। इस प्रकार वर्तमान शील्ड क्षेत्र ने अंतिम रूप से स्थायित्व प्राप्त किया तथा उसके किनारे किनारे ही प्रथम कोटि की संरचनाओं का विकास हुआ। निओजीन काल तक इन संरचनाओं का, क्रमशः उनके संरचनात्मक ढांचे में छोटे छोटे परिवर्तनों के अतिरिक्त सतत विकास होता रहा। नर्मदा-सोन-दामोदर द्रोणिका, सौराष्ट्र-कच्छ तथा राजस्थान शेल्फ के भाग, कैम्बे व भारत-श्रीलंका द्रोणिका एवं शिलांग गिरिपिंड (मास्सिफ) की दक्षिणी ढलानों सहित समस्त परिधीय संरचनाओं में भी मीसोजोइक अनुक्रम विकसित हुए हैं। यह अनुक्रम अधस्थलीय रूप में जैसलमेर (राजस्थान शेल्फ), कावेरी द्रोणी (भारत-श्रीलंका द्रोणी), गोदावरी डेल्टा तथा पश्चिमी बंगाल शेल्फ में दृष्टिगत होता है।

भारतीय प्लेटफार्म के विकास में डेक्कन ट्रैप तथा समतुल्य लावा प्रवाहों की उपस्थिति एक महत्वपूर्ण घटना है। प्लेटफार्म, विशेषकर मध्य एवं पश्चिमी भारत के अधिकांश भागों, को इन निःसरणों ने आच्छादित कर रखा है। कहीं कहीं पर तो इन लावाओं ने इतनी अधिक मोटाई प्राप्त कर ली है कि कैम्बे विभ्रंश घाटी तथा दक्षिणी सिनक्लाइज का पूर्व विवर्तनिक इतिहास ही छुप गया। दक्षिण सिनक्लाइज का विकास तो लावा प्रवाहों के साथ ही पूर्ण हो गया था, परंतु राजमहल (पश्चिमी बंगाल शेल्फ) और सिलहट (दक्षिणी शिलांग शेल्फ) का विकासक्रम क्रिटेशस काल तक चलता रहा।

पेलिओजिन अवसादन, भारतीय प्लेटफार्म के विवर्तनिक विकास का अगला चरण था। संरचना के इस चरण में पंजाब, ऊपरी असम तथा उत्तरी शिलांग शेल्फ की उत्पत्ति हुई। संभवतया विन्ध्य समय में विवर्तनिक विकास के प्रथम चरण को पूरा करने वाले पश्चिमी तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश शेल्फ के विकास का अंतिम चरण इसी समय पूर्ण हुआ। इन संरचनाओं का पेलिओजोइक व मीसोजोइक इतिहास ज्ञात नहीं है।

भारतीय प्लेटफार्म के विवर्तनिक विकास के अंतिम चरण का प्रतिनिधित्व निओजीन द्वारा किया जाता है। विवर्तनिक विकास की यह प्रक्रिया भारतीय प्लेटफार्म के अपतटीय भागों में अभी भी सक्रिय है।

2

प्रायद्वीपेतर पर्वतमालाएं

भूमिका

भारतीय उपमहाद्वीप के प्रायद्वीपेतर भाग की पर्वत शृंखलाओं के अंतर्गत बृहत हिमालय तथा इसके पूर्वी एवं पश्चिमी विस्तार सम्मिलित हैं। पूर्व में यह पर्वत शृंखला दक्षिण की ओर एकदम मुड़कर पटकाइ बम, मिजो, और चिन पर्वतमालाओं से होकर बर्मा तट की अराकान योमा तक एक सतत पर्वतमाला की रचना करती है। पश्चिम की ओर, पाकिस्तान व अफगानिस्तान के भागों में यह पर्वतमाला सतत रूप में बढ़ती हुई पहले पश्चिम की ओर मुड़कर हिंदूकुश और फिर दक्षिणवर्ती होकर सफेद कोह, सुलेमान तथा किरथर पर्वतमालाओं से मिलती है, इसके बाद छगाई पहाड़ियों तथा मकरान पर्वत शृंखला के रूप में पश्चिम की ओर से बलूचिस्तान में प्रवेश करती है।

हिमालय विश्व की महानतम पर्वत शृंखला है जिसमें उत्तुंग पर्वत शिखर स्थित हैं। महत्वपूर्ण पर्वत शिखरों को मानचित्र-V में दर्शाया गया है। 8,000 मी. से ऊंचे शिखरों की संख्या 14, तथा 7,500 मी. से ऊंचे शिखर कुल 20 तथा 7,000 मी. से अधिक ऊंचाई वाले सैकड़ों और 6,000 मी. से ऊंचे शिखरों को कभी समुचित रूप से तालिकाबद्ध नहीं किया गया है। ये शिखर संख्या में इतने अधिक हैं कि मानचित्रकारों ने इनमें से अनेक को नाम तक देने की चेष्टा नहीं की है। यह एक स्मरण रखने योग्य रोचक तथ्य है कि विश्व में 7,000 मी. से अधिक ऊंचाई वाले पर्वत शिखर अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं। दक्षिण अमरीकी द्वीप की एंडीज पर्वतमाला में स्थित सेरो एकोनाकागुआ पर्वत शिखर अपनी 6,960 मी. की ऊंचाई के कारण 7,000 मी. की ऊंचाई को लगभग छू ही पाया है, वहीं 6,000 मी. से अधिक ऊंचाई के केवल 22 शिखर ही गिने गए हैं। उत्तर अमरीकी द्वीप में 6,000 मी. से अधिक उंचाई के केवल दो शिखर हैं—यथा अलास्का पर्वतमाला स्थित माउंट मैकिन्ले (6,194 मी.) और रॉकी पर्वतमाला के उत्तरी छोर पर स्थित सेंट एलियास पर्वतमाला में स्थित माउंट लोगन (6,050 मी.) ही हैं। अन्य महाद्वीपों में स्थित पर्वत शिखर तो हिमालय की तुलना में बहुत अधिक छोटे हैं, और कोई भी 6,000 मी. की ऊंचाई को छू तक नहीं पाया है। अफ्रीका में सबसे ऊंचा

तंजानिया स्थित माउंट किलिमंजारो अपनी 5,895 मी. की ऊंचाई के बावजूद 6,000 मी. की उच्चता प्राप्त नहीं कर पाया है। योरोप के गर्व का प्रतीक आल्पस पर्वतमाला स्थित मॉण्ट ब्लैंन भी मात्र 4,807 मी. ही ऊंचा है, हालांकि काकेशस (रूस) स्थित माउंट एलबोरस (5,633 मी.) ऊंचाई के साथ योरोप का सबसे ऊंचा पर्वत शिखर है। फिर भी समुद्र तल में कुछेक सागरीय पर्वत शिखर हैं जो अत्यधिक ऊंचे हैं और हिमालय से ऊंचाई में बराबरी करते हैं। चपटे शिखर वाला ओजबोर्न सागर शिखर जो प्रशांत महासागर में टोंगा की खाई की पूर्वी ढलान पर स्थित है 8,690 मी. की ऊंचाई का है और सागर तल से मात्र 365 मी. ऊंचा है और विश्व के सर्वोच्च शिखरों में से एक है। विश्व का सर्वोच्च पर्वत शिखर (मोना की) (व्हाइट) पर्वत हवाई द्रोणी की गहराई में है और सागर की तलहटी से शिखर तक इसकी ऊंचाई 10,203 मी. है और हवाई द्वीप समूह में सागर तल से इसकी ऊंचाई मात्र 4,205 मी. ही है।

बृहत हिमालय

सामान्य

बृहत हिमालय पूर्व में मिशमी पहाड़ियों से पश्चिम में पामीर तक एक विशाल चाप के रूप में 2500 किमी. लंबी, 150 से 400 किमी. तक चौड़ी तथा दक्षिण की ओर उन्नतोदर होती हुई एक विशाल पर्वतमाला है। इसकी अधिकांश पर्वतमालाएं भारत, नेपाल व भूटान में हैं तथा उत्तरी ढलानों का भाग तिब्बत और पश्चिमी विस्तार पाकिस्तान तथा रूस तक है। कराकोरम उत्तर-पश्चिम में स्थित इसकी सुदूरतम पर्वतमाला है जिसकी दैर्घ्य दिशा उत्तर-पश्चिम : दक्षिण-पूर्व है। इसका सुदूर उत्तर-पश्चिमी किनारा हिंदूकुश से मिलता है, जिसे गिलगित नदी 'विश्व की छत' कहा जाने वाले पामीर पर पृथक करती है। कराकोरम के पूर्व में कुनलुन पर्वतमाला है जिसे तिब्बती में कुनलुनशानमाइ कहा जाता है। यह तिब्बत के उत्तर तक विस्तारित है। लद्दाख, जस्कार, पीर पांजाल तथा धौलाधार पर्वतमालाएं कराकोरम के दक्षिण की ओर समान दिशा ग्रहण करती हुई समानांतर शृंखलाओं के रूप में दृष्टिगत होती हैं। लद्दाख पर्वतमाला पश्चिमी तिब्बत की कैलाश पर्वतमाला में बंट जाती है। शिमला-कुमाऊं क्षेत्र में नागटिब्बा तथा मसूरी पर्वतमालाओं और नेपाल की महाभारत लेख पर्वतमालाओं में समान निरंतरता दृष्टिगत होती है। परंतु यह निरंतरता अनुप्रस्थ रूप में प्रवाहित होने वाली काली नदी द्वारा भंग हो जाती है। बृहत हिमालय के दक्षिण की ओर समानांतर रूप से स्थित शिवालिक पर्वत शृंखला गिरिपाद की एक लगभग अनवरत शृंखला का निर्माण करती है। बृहत हिमालय की उच्च पर्वतमालाएं नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा पूर्वोत्तर भारत में अलग अलग नामों से नहीं पहचानी जातीं वरन इनके लिए निवासियों द्वारा दिए गए नाम ही प्रचलित हैं।

भारत एवं नेपाल के बाहर हिमालय की वास्तविक भौगोलिक सीमाएं अभी तक

निर्धारित नहीं हैं और यह अभी भी विवाद का विषय है। लेकिन यह एक सामान्य सहमति है कि बृहत हिमालय कराकोरम से लेकर सुदूर पूर्व में अरुणाचल प्रदेश तक विस्तारित है, परंतु कुछ भूगोलवेत्ता हिमालय को एक ओर पाकिस्तान तथा पूर्व अफगानिस्तान पर्वतमालाओं तक तथा दूसरी ओर सुदूर पूर्व में बर्मा की पहाड़ियों तक उनकी भूवैज्ञानिक एवं भूआकृतिक समानता के आधार पर विस्तारित मानते हैं। जापान के आधुनिक भूगोलवेत्ता तथा पर्वतारोही हिमालय में दक्षिणी तिब्बत, चीन के सिंक्यांग तथा ताजकिस्तान (रूस) के संपूर्ण पर्वतीय क्षेत्र को हिमालय में सम्मिलित करते हैं। ये पर्वत जो हिम के भंडारागार हैं और जिसके कारण इन्हें हिमालय की संज्ञा दी गई है, उनके अंतर्संबंधों और आवश्यक प्राकृतिक एवं संरचनात्मक संबद्धता के कारण उनके विचारों को अविरंजित नहीं मानना चाहिए। इस संपूर्ण पर्वत तंत्र की कुल लंबाई पूर्व में मीजो पहाड़ियों से लेकर बलूचिस्तान-ईरान सीमा पर स्थित मकरान पर्वत शृंखला तक, लगभग 5,000 किलोमीटर है।

अध्याय-1 में दिए गए भूआकृतिक विभाजनों के अतिरिक्त बृहत हिमालय को चार समानांतर, ऊर्ध्वाधर प्रक्षेत्रों में उनकी पार्वतिकी एवं भूवैज्ञानिक विशिष्टताओं के आधार पर निम्नलिखित रूप में विभाजित किया गया है : (मानचित्र-III)

·········सिंधु-त्सांगपो संधिरेखा प्रक्षेत्र·· ·········

(1) टेथिस या तिब्बती हिमालय

(2) अंतः या उच्च हिमालय

···········मुख्य मध्य क्षेप प्रक्षेत्र·· ·········

(3) लघु या निम्न हिमालय

···········मुख्य सीमा क्षेप प्रक्षेत्र·· ·········

(4) बाह्य या अधः हिमालय

1. टेथिस या तिब्बती हिमालय लगभग 40 किलोमीटर चौड़ा तथा अंतः या उच्च हिमालय के ठीक उत्तर में 3,000 से 4,300 मी. की ऊंचाई पर स्थित है। यह अत्यधिक जीवाश्मी शैलों, जो कि आयु में अति प्रारंभिक पेलिओजोइक (कैम्ब्रियन) से टर्शियरी (ईओसीन) काल तक की हैं, से निर्मित है। इन संरचनाओं में गोंडवाना संलक्षणी के हिमनद-सागरीय अवसादों की उपस्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इस संभावना को इंगित करता है कि कम-से-कम हिमालय के कुछ भाग तो गोंडवानालैंड के भाग थे। ये यूरेशिया प्लेट से सिंधु-त्सांगपो संधि रेखा प्रक्षेत्र द्वारा पृथक्कृत हैं।

2. अंतः या उच्च हिमालय 6,000 मी. से अधिक ऊंची पर्वतमालाओं की सुदूर उत्तरी सीमा निर्धारित करता है जो कि सदैव ही हिमाच्छादित रहती हैं तथा भूपृष्ठ के सर्वोच्च शिखरों को अपने में समाहित करती हैं। यह प्रक्षेत्र लगभग 50 किमी. चौड़ा तथा मुख्यतया केंद्रीय क्रिस्टली शैलों (ग्रेनाइटों) तथा नाइसों से निर्मित है जो कि कैम्ब्रियन आयु की कुछेक अवसादी संरचनाओं से आच्छादित है। मुख्य मध्य क्षेप द्वारा

बहुधा नाइसों को दक्षिण की ओर क्षेपित कर दिया गया है।

3. लघु या निम्न हिमालय मध्यम ऊंचाई वाली पर्वतमालाओं से बना है तथा अंतः या उच्च हिमालय से बहुत निकट से संबंधित है, तथा इसकी ऊंचाई लगभग 3,600 मी. से 4,200 मी. तक ही है। इसमें पर्वतमालाओं का एक जटिल तंत्र है जो लगभग 60 से 80 किमी. चौड़ा है। यह प्रक्षेत्र मुख्यतया अजीवाश्मीय प्री-कैम्ब्रियन, पेलिओजोइक तथा मीसोजोइक संरचनाओं से निर्मित है।

4. बाह्य या अधः हिमालय प्रक्षेत्र लघु हिमालय से कुछेक स्थानों में चपटी तली वाली घाटियों द्वारा पृथक हैं। यह शिवालिक पर्वत शृंखला के स्वस्थाने गिरिपादों द्वारा स्पष्ट है, जो कि पूर्णतया वलयित, लगभग अजीवाश्मीय टर्शियरी काल के अवसादों से निर्मित हैं। प्राचीन शैल मुख्य सीमा क्षेप के नाम से ज्ञात क्षेप द्वारा टर्शियरी शैलों को आच्छादित किए हुए हैं। विशाल मैदानों की सीमा बनाते हुए उत्तर-पश्चिम में सिंधु दर्रे से लेकर पूर्वोत्तर असम तक विस्तारित शिवालिक पर्वतमाला 2,400 किमी. तक लंबी एक लगभग अनवरत शृंखला का निर्माण करती है। इन पहाड़ियों की ऊंचाई शायद ही कहीं 1,300 मी. से अधिक हो तथा ये पहाड़ियां 10 से 50 किमी. तक चौड़ी हैं।

हिमालय की उत्पत्ति

बृहत पर्वत शृंखला के रूप में हिमालय की उत्पत्ति 65-70 मिलियन वर्ष से अधिक पूर्व की नहीं है, हालांकि इसे निर्मित करने वाली शैल कभी अतीत में विवर्तनिक विरूपण से प्रभावित हो चुकी हैं। यद्यपि प्रीकैम्ब्रियन विरूपण के प्रमाण उपलब्ध हैं, पश्च प्रीकैम्ब्रियन अनुक्रम कैम्ब्रियन शैलों में धंस गए हैं। कैम्ब्रियन या आर्डोवीसियन के प्रारंभ में संचलन की एक अवधि थी। इसके पश्चात बड़ी उथल-पुथल वाला कोई भी समय नहीं आया सिवा उस प्रोत्यान के जिसके परिणामस्वरूप टर्शियरी कालावधि में हिमालय की उत्पत्ति हुई। इसके पूर्व कार्बोनीफेरस काल में मंद संचलन का एक दौर आया जब सागरीय अवसाद ऊपर उठे, अपक्षरित हुए तथा पुनः सागर में समा गए परंतु उनमें कोई कुंचन (Contortion) नहीं हुई। यह पटल विरूपिणी संचलन जिसने हिमालय को ऊंचा करके एक विशाल उत्तुंग पर्वत शृंखला को जन्म दिया क्रिटेशस के अंतिम काल में प्रारंभ हुआ तथा यह प्रक्रिया पूरे ईओसीन, मध्य मायोसीन, प्लायोसीन में और फिर वहां से निम्न प्लायस्टोसीन तक और अंतिम रूप से ऊपरी प्लायस्टोसीन से अद्यः अभिनव काल तक अनवरत रूप से चलती रही है।

अधः हिमालय के प्लायोसीन शिवालिक व करेवा अवसादों को प्रभावित करने वाले विक्षोभ अत्यधिक दूर दूर तक फैले क्षेत्रों जैसे. पूर्वी अफगानिस्तान, तिब्बत के हुण्डेस क्षेत्र, गढ़वाल में गंगोत्री हिमनद के उत्तर तक विस्तारित हुए, जहां पर समान आयु के एक समान निक्षेप अत्यधिक वलयन तथा झुकाव से प्रभावित हुए मिलते हैं। प्लायस्टोसीन काल में अपेक्षाकृत शांति रही हालांकि कुछ-न-कुछ क्रियाएं बराबर चलती

रहीं और वे वर्तमान समय में भी बराबर चल ही रही हैं। हिमालय अब भी ऊंचा हो रहा है, और इसके ऊंचा होने की गति 7.5-10 सें. मी. प्रति वर्ष है। अंतिम हिमनदीय घटनाक्रम के समय से पिछले 20,000 वर्षों में हिमालय 1,500-2,000 मी. तक ऊंचा हो चुका है।

हिमालय के तलछटों का निक्षेपण टीथियन सागर में हुआ था, तत्पश्चात गोंडवानालैंड महाद्वीप के उत्तर की ओर खिसकने के कारण टीथियन सागर के संकुचन से ये अवसाद ऊपर को उठे और इस प्रकार हिमालय का जन्म हुआ। यह गोंडवानालैंड महाद्वीप भारतीय स्थलमंडलीय प्लेट का एक भाग था जिसने स्थायी यूरेशियन प्लेट को उत्तर की ओर अधःक्षेपित कर दिया। यह खिसकाव मीसोजोइक के अंतिम चरण तथा अति प्रारंभिक सीनोजोइक समय में हुआ। भारत व एशिया के बीच स्थित टेथिस सागर क्रिटेशस काल में बंद होना प्रारंभ हुआ। इन दोनों प्लेटों की सीमा रेखा सिंधु-त्सांगपो भूसीवन के नाम से जानी जाती है जिसके आसपास ही संभवतया सबडक्शन हो रहा था। इसके कारण भूपृष्ठ की मोटाई दोगुनी हो गई तथा तिब्बत का पठार ऊपर उठ गया। भूकंपीय एवं गुरुत्वीय अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि तिब्बत के पठार के नीचे भूपृष्ठ औसत रूप में अधिकतम 60 किमी. है जबकि यह हिमालय के नीचे अधिकतम 80 किमी. तथा भारतीय प्लेट के नीचे महाद्वीपीय भूपृष्ठ की औसत मोटाई मात्र 30-40 किमी. ही है।

असम-बर्मा पर्वतमाला की उत्पत्ति भारतीय प्लेट के बर्मा चाप के नीचे अधःक्षेपण के कारण ही हुई है। भारतीय प्लेट की पश्चिमी सीमा स्थित किरथर सुलेमान पर्वतमाला संभवतया एक अनुप्रस्थ भ्रंश को इंगित करती है जिसका विस्तार अरब स्थित ओवेन विभंग प्रक्षेत्र तक है। भारत तथा एशिया का अंतिम टकराव लगभग 38 मिलियन वर्ष पूर्व हुआ था।

मध्य मायोसीन के आसपास विकसित मुख्य मध्य क्षेप (एम. सी. टी.) संभवतया इस समय के आसपास अधःक्षेपण प्रक्रिया के पुनः सक्रिय होने के कारण हो सकता है। मुख्य सीमा क्षेप, जो कि कहीं बाद में प्लायो-प्लायस्टोसीन काल में विकसित हुआ तथा प्लेटों के संचलन से प्रकट रूप से असंबंधित है।

हिमालय की संरचना

हिमालय विशिष्ट रूप से एक वलयित पर्वत शृंखला है। विभिन्न प्रक्षेत्रों व क्षेत्रों में भिन्न भिन्न संरचनात्मक जटिलता के कारण इसके ढांचे व संरचना के संबंध में कोई भी एक दृष्टिकोण नहीं बनाया जा सकता। फिर भी, इनकी विभिन्न विवर्तनिक इकाइयों की मोटी मोटी विशिष्टताएं स्पष्ट रूप से ज्ञात हैं, और उनका वर्णन यहां किया जा रहा है। इसकी मुख्य प्रवृतियां मानचित्र-IV में दर्शाई गई हैं।

सिंधु-त्सांगपो भूसीवन प्रक्षेत्र यह प्रक्षेत्र भारतीय शील्ड के तिब्बती पिंड के नीचे

अधःक्षेपण के कारण उत्पन्न विवर्तनिक दबाव की प्रतिनिधि पट्टी है। यह भारतीय एवं यूरेशियन प्लेटों के मध्य की सीमा- रेखा है तथा ओफियोलाइट, अन्य विदेशज (exotic) खंडों तथा फ्लिश समान अवसाद इसकी विशेषताएं हैं। अन्य विदेशज खंड ओफियोलाइट तथा फ्लिश अवसादों में रिफ्ट के रूप में पाए जाते हैं तथा तिब्बत में एक बड़े ज्वालामुखी विस्फोट अथवा ऊपरी क्रिटेशस काल में अधःसागरीय फिलसन आदि के लिए उत्तरादायी माने गए हैं। यह भूसीवन प्रक्षेत्र उत्तर-पश्चिम हिमालय संरचना में नंगा पर्वत से प्रारंभ होकर सुदूर पूर्व में नामचे बारवा पर्वत तक विस्तारित है। यह संभवतया दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़कर पाकिस्तान-अफगानिस्तान, तथा पूर्व में असम-बर्मा से होता हुआ अंडमान-निकोबार शृंखला तक विस्तारित है।

इस भूसीवन प्रक्षेत्र के दक्षिण में टेथिस हिमालय स्थित है। इसकी संरचना के विषय में कुछ अधिक तो ज्ञात नहीं है परंतु इस प्रक्षेत्र में दृष्टिगत शैलें संभवतया विरूपण के कई चरणों से गुजरी हैं जिसके परिणामस्वरूप जटिल संरचनाओं का निर्माण हुआ है। क्रिटेशस से प्लायोसीन कालावधि में वलयन तथा क्षेपण हुआ, और पश्च-पर्वतन काल में तिर्यक भ्रंश (क्रास फाल्टिंग) हुआ है।

टेथिस हिमालय शनैः शनैः बिना किसी विशिष्ट व्यतिक्रम के अंतः या उच्च हिमालय में समाहित हो गया है। यह निम्न हिमालय के क्रिस्टलीय नापे का मूल प्रक्षेत्र माना जाता है तथा यह संरचनात्मक रूप में सरल है। यह क्रिस्टलीय-प्रक्षेत्र निम्न पेलिओजोइक अवसादों का आधार है। प्लायस्टोसीन वलयन ने उच्च हिमालय को 4,000-5,000 मी. ऊंचा उठा दिया और तिब्बत क्षेत्र में उद्गमित नदियों ने इसकी पर्वतमालाओं में तंग गहरे पूर्ववर्ती गार्ज का निर्माण किया।

मुख्य मध्य क्षेप उत्तर के उच्च हिमालय को दक्षिण के लघु हिमालय से पृथक करता है तथा इसने इन पर्वतमालाओं के विवर्तनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नाइस, शिस्टस, फायलाइट, क्वार्टजाइट तथा चूना-पत्थर ने मिलकर इस तंग क्षेप प्रक्षेत्र का निर्माण किया है। ये शैलें अत्यंत दलित एवं मिश्रित हैं।

निम्न हिमालय एक जटिल तथा बहुधा अत्यधिक वलयित एवं भ्रंशित पट्टी है। अपने पूरे फैलाव में इसमें अनेक क्षेप दृष्टिगत हैं जिनके कारण शैलों के बड़े बड़े भाग विस्थापित हो गए हैं। बाह्य या अधः हिमालय क्षेत्र लगभग पूर्णतया टर्शियरी संरचनाओं का बना है, जिनमें प्रोटेरोजोइक शैलों के नवांतःशायी (इनलायर्स) हैं। इनमें सरल वलयित अवनतियां तथा अभिनतियां हैं जिनके अक्ष इन पर्वतमालाओं की शिरा के समानांतर हैं। इन कम ऊंचाई वाले पर्वतों में अनुदैर्घ्य घाटियां भी हैं जो स्थानीय भाषा में 'डन्स' कहलाती हैं। अधः हिमालय की दक्षिणी सीमा अधिकांशतया अपक्षरित है तथा इसका विस्तार जलोढ़क निक्षेपों के बड़े बड़े पंखों के रूप में सुस्पष्ट है।

मुख्य सीमा क्षेप एक बृहत आयामी उत्क्रम भ्रंश है जो असम से पंजाब तक विस्तृत है तथा बाह्य या अधः हिमालय को निम्न हिमालय से अलग करता है।

अक्षसंधि (सिनटैक्सि)

हिमालय पर्वतमाला की कम चापाकार पहाड़ियां अपने पश्चिमी तथा पूर्वी किनारों पर दक्षिण दिशा में समकोला मोड़ के रूप में नमित हैं और अक्षसंधि मोड़ के नाम से जानी जाती हैं। दोनों ही सिरों पर यह विशाल पर्वतमाला एक धुरी पर मुड़ गई लगती है। इसका पश्चिमी सिरा पामीर के दक्षिण में जहां कराकोरम व हिंदूकुश मिलते हैं वहां स्थित है। यह मोड़ लगभग 480 किमी. गहरा है तथा यह सिंधु नदी के किनारे किनारे अत्यधिक गहरी तंग घाटियों के साथ साथ पामीर शृंखला से लेकर सुदूर दक्षिण में रावलपिंडी के उत्तर में पंजाब के मैदानों के गिरिपादों को मोटे तौर पर प्रभावित करता है।

इसी प्रकार के तीव्र, लगभग चिमटी के आकार का मोड़ अरुणाचल प्रदेश की पूर्वी सीमा पर दृष्टिगत होता है जहां पर्वतमाला की अनुदैर्घ्य दिशा एकदम से पूर्व के स्थान पर दक्षिण की ओर हो जाती है। इस पूर्व अक्षसंधि मोड़ के कारण शैलों की भूवैज्ञानिक विशिष्टताएं भी परिवर्तित हो जाती हैं। पर्वतों के अक्ष भी सैकड़ों किलोमीटर तक बदल गए हैं, पहले उत्तर पूर्व-दक्षिण पश्चिम फिर उत्तर-दक्षिण की ओर झुकते हुए अराकान योमा में यह अक्ष उत्तर पश्चिम-दक्षिण उत्तर दक्षिण-पूर्व हो गए हैं।

कश्मीर-हजारा क्षेत्र के अक्षसंधि मोड़ के भी आगे, सुलेमान पर्वतमाला की लवण शृंखला उद्गमित हुई है, जिसमें उत्तर-पश्चिम की ओर विकसित एक सुस्पष्ट वलन तंत्र है जिसमें वलयन चापाकार माला के रूप में है जो बलूचिस्तान में क्वेटा की मध्य ब्राहुई शृंखला से मिल जाती है। यह उत्तर-दक्षिण की ओर अनवरत रूप से बढ़ती हुई किरथर शृंखला में मिल जाती है। सुलेमान शृंखला के समान ही किरथर व बलूचिस्तान शृंखलाओं में भी कुछ 'मालाकार' वलयनों का विकास छोटे पैमाने पर हुआ है। सुलेमान तथा बलूचिस्तान चापों के ये चापाकार अक्षसंधीय वलन भारतीय शील्ड के आधारतल के प्रभाव से निर्मित हुए होंगे जो कि हिमालय अक्षसंधि के ही समान है किंतु ये छोटे आयाम के हैं।

बृहत हिमालय पर्वत शृंखला पूर्वी छोर पर पूर्वांचल तथा बर्मा चापों से अक्षसंधि मोड़ पर मिल जाती है। अरुणाचल प्रदेश यहां पतला होकर अपने बड़े ग्रेनाइटी प्लूटान पर एक धुरी के रूप में कार्य करता है और हिमालय, जो अपने सामान्य रूप में चीन की ओर बढ़ता है, को एकदम से घुमाकर नामचे बारवा शिखर की ओर पहले दक्षिण-पश्चिम तथा बाद में दक्षिण की ओर मोड़ देता है।

छोटे छोटे अक्षसंधि मोड़ हिमालय शृंखला के अन्य भागों में भी दृष्टिगत होते हैं, इनके कुछेक उदाहरण यहां दिए जा रहे हैं। हिमाचल प्रदेश के डलहौजी के पास उत्तर पश्चिम-दक्षिण पूर्व शृंखला दक्षिण की ओर झुक जाती है। शिमला-बिलासपुर क्षेत्र में फ्लिश तथा मोलेस अवसाद मेहराब के आकार में ऊपर उठ गए हैं तथा नतिलंब

(स्ट्राइक) क्षेपों एवं भ्रंशों से प्रभावित हैं। मसूरी-ऋषिकेश क्षेत्र में शैलों का झुकाव लगभग उत्तर-दक्षिण दिशा में है एवं वे सुस्पष्ट रूप से गंगा तथा यमुना विदरण भ्रंशों से प्रभावित हैं। नेपाल के विभिन्न भागों में उत्तर-दक्षिण के असमान वलयन विशेष रूप से अरुणाचल तथा हांगगांव के वलय अकस्मात मोड़ को इंगित करते हैं।

पर्वत शृंखला

कराकोरम पर्वतमाला पामीर से उद्गमित होकर गिलगित नदी के पूर्व, गिलगित, बाल्तिस्तान व कश्मीर में लद्दाख क्षेत्रों को पार करती हुई लगभग 600 किमी. तक विस्तारित है। इसकी उत्तरी सीमा पर पामीर तथा अघिल पर्वतमालाएं तथा यारकंद (या जरफशान) नदी तथा दक्षिण में यह सिंधु नदी तथा उसकी सहायक नदी श्योक द्वारा सीमित है। इस पर्वतमाला की औसत चौड़ाई 120-140 किमी. के बीच है। कराकोरम एक विशाल पर्वतमाला है, जिसकी चोटियों की ऊंचाई शायद ही 5,500 मी. से नीचे हो। इसमें पृथ्वी का दूसरा सर्वोच्च शिखर के (ब्रिटिश लोगों के अनुसार माउंट गॉडविन ऑस्टिन तथा क्वोगिट चीनी लोगों द्वारा अनधिकृत रूप से कश्मीर के इस भाग पर कब्जा करने के बाद से) है जिसकी समुद्रतल से ऊंचाई 8,611 मी. है। इसी के आसपास तीन और शिखर हैं जो 8,000 मी. से भी ऊंचे हैं: गाशेरब्रम-I या छिपा हुआ शिखर-8,068 मी., ब्रॉड शिखर-8,047 मी. और गाशेरब्रम-II 8,035 मी.। कराकोरम शृंखला में 19 अन्य पर्वत शिखर ऐसे हैं जो 7,600 मी. से भी अधिक ऊंचे हैं तथा 7,000 मी. से अधिक ऊंचे शिखरों को पूर्णतया वर्णित नहीं किया गया है। ध्रुवीय क्षेत्रों के बाहर यह बृहत्तम हिमनदों का स्थान है। कराकोरम में हिमरेखा परिवर्तनीय है। यह हिमरेखा 5,000 मी. से अधिकतम 5,700 मी. तक है, यद्यपि कुछ हिमनद 2,260 मी. की ऊंचाई तक भी मिलते हैं।

एक ग्रेनाइट बैथोलिथ कराकोरम के क्रोड में है। इसके उत्तर में पेलिओजोइक से क्रिटेशस के अंतिम भाग की आयु वाली अधिकांशतया कायांतरित संरचनाएं हैं। इसके दक्षिण स्थित क्षेत्र में सुस्पष्ट रूप से प्रीकैम्ब्रियन से टर्शियरी काल की कायांतरित शैलें हैं। ये समस्त शैलें अभिनव भूजननिक क्रियाओं के फलस्वरूप अत्यधिक वलयित एवं भ्रंशित हैं।

कराकोरम के उत्तर-पूर्व में भारत का सर्वोच्च **लद्दाख का पठार** है जिसकी समुद्र तल से औसत ऊंचाई 4,000 मी. से भी अधिक है। यह पठार पेलिओजोइक और ट्रायसिक अवसादों से निर्मित है। कराकोरम पर्वतमाला तथा लद्दाख का पठार दोनों ही सिंधु-त्सांगपो भूसीवन क्षेत्र के उत्तर में स्थित हैं तथा दोनों ही मूल यूरेशियन स्थलमंडलीय प्लेट का भाग हैं।

लद्दाख पर्वतमाला कराकोरम के दक्षिण तथा सिंधु और उसकी सहायक नदी श्योक के बीच स्थित है, और यह तिब्बत की सीमा से होकर मुस्तांग तक विस्तारित है।

इसकी कुल लंबाई 1,000 किमी. है। इस पर्वतमाला की सामान्य ऊंचाई कराकोरम की अपेक्षा काफी कम है तथा इसके कुछ ही शिखर 6,000 मी. की ऊंचाई पार कर पाए हैं। सिंधु नदी के पार राकापोशी-हारामोश पर्वतमाला लद्दाख पर्वतमाला का उत्तर-पश्चिम विस्तार माना जाता है।

पश्चिमी तिब्बत के पार हिमालय **कैलाश पर्वतमाला** (चीनी में गांगडिसे) लद्दाख पर्वतमाला की एक प्रशाखा है। इन दोनों पर्वतों की औसत ऊंचाई 5,500 से 6,000 मी. तक है व एक ही प्रकार की है। कैलाश की औसत चौड़ाई लगभग 30 किमी. है। उच्चतम शिखर कैलाश शिखर (तिब्बती में कांग रिन्पाछे तथा चीनी में कान्गिनवॉक) 6,714 मी. ऊंचा है। सिंधु नदी इसी पर्वत से उद्गमित है। कैलाश के दक्षिण में सिंधु-त्सांगपो भूसीवन प्रक्षेत्र स्थित है जिसमें फ्लिश प्रकार की शैलें हैं, कुछेक अन्य विदेशज प्रखंड तथा ओफियोलाइट सजातीय ज्वालामुखीय शैलें हैं।

लद्दाख-कैलाश पर्वत शृंखला के दक्षिण में स्थित **जस्कार-पर्वतमाला** (कभी कभी अनुपयुक्त वर्ण-विन्यास के कारण जन्सकार) को मुख्य बृहत हिमालय पर्वत शृंखला का पश्चिमी भाग कहा जा सकता है। उत्तर-पश्चिम में इसका चरम बिंदु नंगा पर्वत 8,126 मी. है, परचु दोसाइ पर्वतमाला को भी इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। हालांकि भौगोलिक रूप से यह कश्मीर-हिमाचल प्रदेश-गढ़वाल क्षेत्र में ही सीमित है परंतु इसकी पूर्वी अनवरतता को मध्य नेपाल स्थित धौलागिरि (8,172 मी.) से भी जोड़ा जा सकता है जहां से यह शृंखला लगभग अनवरत रूप से पूर्व में स्थित नामचे बारवा (7,756 मी.) तक बृहत हिमालय में सम्मिलित है। कामट (7,756 मी.), नन्दादेवी (7,817 मी.) गुर्ला मान्धाता (7,728 मी.) आदि भी यहीं स्थित हैं। भूवैज्ञानिक रूप से यह उत्तरी भाग अत्यधिक जीवाश्मीय प्लेटफार्म प्रकार के अवसादों वाले टेथिस हिमालय प्रक्षेत्र का भाग है जो वलयित होकर साधारणतया जूरा प्रकार के अपकर्तन (डिकालमेंट) संरचना बन गए हैं तथा दक्षिण से क्रिस्टलीय शैलों वाले उच्च हिमालय का प्रक्षेत्र भाग हैं।

जस्कार से और पूर्व की ओर ऊंची पहाड़ियां हैं जिनके स्थानीय भाषा में नामों के अतिरिक्त विशिष्ट नाम नहीं हैं, परंतु सामान्यतया ये सब बृहत हिमालय के नाम से जाने जाते हैं। ये विश्व के सबसे अधिक विशिष्ट पर्वत शिखर हैं तथा विश्व के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर कहलाते हैं। इनमें नौ मुख्य पर्वत शिखर 8,000 मी. से अधिक ऊंचे हैं लेकिन यदि इनके सहायक शिखरों को भी मिलाया जाए तो यह संख्या चौदह हो जाती है। ये हैं—अन्नपूर्णा (8,078 मी.), मानासुलू (8,156 मी.), गोसाईथान या शीशापांग्मा (8,013 मी.), यो ओयू (8,153) मी.), एवरेस्ट (जिसे सागरमाथा या चोमोलांग्मा भी कहा जाता है, (8,848 मी.), एवरेस्ट दक्षिणी शिखर (8,754 मी.), ल्होत्से-I (8,501 मी.), ल्होत्से मध्य शिखर (8,410 मी.), ल्होत्से शार (8,348 मी.), मकालू-I (8,481 मी.), मकालू दक्षिणी शिखर (8,010 मी.), कंचनजंघा-1 (8,598 मी.), कचंनजंघा दक्षिणी शिखर (8,474 मी.), तथा कंचनजंघा पश्चिमी शिखर (8,420 मी.)।

गढ़वाल-नेपाल-सिक्किम-भूटान तथा अरुणाचल प्रदेश के बृहत हिमालय में 7,000 मी. से ऊंचे पर्वत शिखरों की संख्या 29 है, और इससे कम ऊंचाई के शिखरों को इसमें वर्णित नहीं किया गया है। समस्त उच्च शिखरों में अनेक हिमनद हैं। यद्यपि बृहत हिमालय में काफी बड़े बड़े हिमनद हैं लेकिन वे कराकोरम के हिमनदों से प्रतिद्वंद्विता नहीं करते हैं। ये ऊंची पर्वतमालाएं अल्पाइन प्रकार के ग्रेनीटाइड व अन्य क्रिस्टलीय शैलों से बनी हैं परंतु इनके उत्तरी किनारे पर तिब्बती प्रक्षेत्र की अवसादी शैलें भी हैं। कुछेक प्रीकैम्ब्रियन कायांतरित शैलें पूर्वी भूटान तथा अरुणाचल प्रदेश में विवर्तनिक वेज के समान दृष्टिगत होती हैं। कंचनजंघा के पूर्व की हिमालय शृंखलाओं में ऊंचाई की अचानक अत्यधिक कमी हुई है, उनकी औसत ऊंचाई मात्र 4,000 मी. ही है। फिर भी इनमें से कई शिखर 6,000 मी. से भी अधिक ऊंचे उठे हैं।

कश्मीर-पंजाब में **पीर पांजाल पर्वत शृंखला** झेलम नदी से प्रारंभ होकर ऊपरी व्यास नदी तक लगभग 300 किमी. तक विस्तारित है तथा कश्मीर घाटी द्वारा जस्कार पर्वतमाला से पृथक है। यह बृहत हिमालय पर्वतमाला की ही एक शाखा है। लाहुल के दक्षिण में अनेक हिमनद हैं। ये 5,000 मी. से अधिक ऊंचे हैं तथा इनका अधिकांश भाग ज्वालामुखीय शैलों से निर्मित है। श्रीनगर घाटी का उत्तरी भाग प्लायस्टोसीन आयु के सरोवरीय अवसादों से निर्मित है।

धौलाधार निम्न हिमालय की सुदूर दक्षिण पर्वतमाला है। इसकी अधिकांशतया ऊंचाई 4,000 मी. तक ही है। यह शृंखला प्रीकैम्ब्रियन आयु की निम्न कोटीय कायांतरित अवसादों से निर्मित है। यही संरचनाएं गढ़वाल-कुमांऊ क्षेत्र की नाग टिब्बा और मसूरी शृंखलाओं में अनवरत रूप से विद्यमान हैं। ये पहाड़ियां अपेक्षाकृत कम ऊंचाई, 2,000-3,000 मी. की हैं। ये नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा पूर्वी हिमालय की मध्य शृंखला में भी दृष्टिगत होती हैं।

महाभारत पर्वत शृंखला दक्षिणी नेपाल में निम्न हिमालय (मसूरी शृंखला) का अविच्छिन्न भाग है तथा इसके शिखरों की ऊंचाई 3,000 मी. तक है। यह प्रीकैम्ब्रियन मेटा अवसादों तथा ग्रेनाइटों की एक समभिनति है, जो विकृत एवं वलयित है। इसके उत्तर में स्थित काठमांडू घाटी एक विशिष्ट संरचना बनाती है जो कश्मीर में श्रीनगर घाटी के समान है। सन कोसी नदी, सप्त कोसी, सिक्किम, भूटान, मीरी, अबोर तथा मिशमी पहाड़ियां निम्न हिमालय का प्रतिनिधित्व करती हैं।

विशाल मैदान के सामने **शिवालिक शृंखला** इन पहाड़ियों की सबसे बाहरी शृंखला है जो 2,400 मी. लंबी है, तथा सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक विस्तारित है। यह कम ऊंचाई वाली पहाड़ियों का लगभग एक अटूट अनुक्रम है। तीस्ता नदी की घाटी से आच्छादित केवल 80 किमी. के व्यवधान को छोड़कर इसकी ऊंचाई शायद ही 650 मी. से अधिक है। ये पहाड़ियां मध्य मायोसीन से निम्न प्लायस्टोसीन आयु की वलयित तथा आंशिक रूप से कोरछादी (इम्ब्रिकेट) निर्मल जलीय अवसादों से निर्मित हैं तथा

शृंखला का ही स्तरिक नाम धारण करते हैं।

कल्पित सिंधु-ब्रह्म या शिवालिक नदी

ऐसी कोई भी नदी वर्तमान में नहीं है, यह एक काल्पनिक नदी है, जिसे प्राचीन काल की भूवैज्ञानिकी कल्पना माना जा सकता है, जिसमें अधः हिमालय प्रक्षेत्र के शिवालिक अवसादों का निक्षेपण हुआ। इस प्राचीन सरिता को ई. एच. पास्को ने 'इंडो-ब्रह्म' का नाम दिया क्योंकि उनके विचारानुसार 'सिंधु व ब्रह्मपुत्र' उसी मूल नदी के दो टुकड़े हैं, जिसे जी. ई. पिलग्रिम ने शिवालिक नदी का नाम दिया, उनके अनुसार वर्तमान पहाड़िया प्राचीन नदी के प्रवाहमार्ग में स्थित हैं। इस विस्तृत टर्शियरी निक्षेपण तथा उनके पर्वत शृंखला के रूप में ऊपर उठने के संबंध में शिवालिक अवसादन संबंधी 1919 के पास्को व पिलग्रिम के विचार भूवैज्ञानिक दृष्टि से रोचक हैं, इसलिए इनको यहां सम्मिलित किया गया है।

पास्को के अनुसार, जिसे पिलग्रिम ने भी समर्थन दिया है, यह प्राचीन नदी असम से उद्गमित हुई तथा इस क्षेत्र से प्रवाहित हुई, जो अब हिमालय गिरिपाद क्षेत्र है, तथा अरब सागर में समाप्त हुई। ऐसा टर्शियरी काल में हुए भू-प्रचलनों के परिणामस्वरूप हुआ। ईओसीन काल में सिंधु से अफगानिस्तान तक एक खाड़ी यहां से पूर्व की ओर तथा दक्षिण-पूर्व की ओर घूमकर कोहाट और पंजाब से होती हुई नैनीताल तक विस्तारित थी। इस खाड़ी ने एक विशाल नदी को रास्ता दिया, जिसके अभिशीर्ष जल में असम से होकर प्रवाहित ब्रह्मपुत्र के कुछ भाग थे। यह नदी हिमालय के गिरिपाद क्षेत्र में पहले पश्चिम तथा बाद में उत्तर-पश्चिम की ओर उत्तर-पश्चिम पंजाब तक प्रवाहित होकर तथा दक्षिण की ओर घूमकर वर्तमान सिंधु नदी के संरेखण में प्रवाहित होती हुई अरब सागर में मिल गई। दो भिन्न भिन्न नदियों या एक ही नदी की दो शाखाएं, जो बंगाल की खाड़ी में मिलती हैं, ने सिंधु-ब्रह्म को काटकर विभाजित कर दिया है। इसका पूर्वी भाग असम को आच्छादित करके वर्तमान में ब्रह्मपुत्र बनाता है तो पश्चिमी भाग ने शनैः शनैः असम व वर्तमान यमुना के बीच के क्षेत्र को आच्छादित किया है। इसी बीच में सिंधु-ब्रह्म के बीच का क्षेत्र और यमुना और झेलम के बीच का क्षेत्र उसकी अपनी सहायक नदियों द्वारा और छोटा किया जा रहा था। वर्तमान सिंधु का अटक भाग जो कि सिंधु-ब्रह्म की अपनी एक सहायक नदी थी, ने रास्ते को काटकर कश्मीर में प्रवेश किया तथा एक बड़ी नदी (अब विलुप्त) के भाग को पकड़ा जो उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित होकर आक्सस नदी में मिल गया या दक्षिण-पश्चिम दिशा में घूमकर पूर्वी अफगानिस्तान में चला गया।

एम. एस. कृष्णन व एन. के. एन. आयंगार (1940) ने भूवैज्ञानिक तथा भूआकृतिक आधार पर ऐसी किसी भी नदी के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है। प्रमाणों को पुनरावलोकित करते हुए, उन्होंने अधः हिमालय प्रक्षेत्र व उसके निकटवर्ती मैदानों के

टर्शियरी इतिहास की खोज की। उनके अनुसार ईओसीन सागर सिंधु, राजस्थान तथा पंजाब से जम्मू तक तथा वहां से पूर्व दिशा में लैंसडाउन तक एवं नैनीताल तक विस्तारित था तथा यह टेथिस से जुड़ा हुआ था। लैंसडाउन के निकट उपलब्ध दृश्यांश उथली जल संलक्षणी के अवसादों को प्रदर्शित करते हैं जो सागर तट की निकटता के प्रतीक हैं। यह सीमा अरावली शृंखला की एक कटक के पूर्वी विस्तार से भी मेल खाती है, जिसने संभवतया एक रोक का कार्य किया है। इसी समय एक अन्य कटक (रिज) राजमहल पहाड़ियों से निकलकर शिलांग के पठार तक जाती है जो बंगाल की खाड़ी को वर्तमान गंगा-ब्रह्मपुत्र द्रोणी के क्षेत्र से पृथक करती है। हिमालय के प्रथम उभार ने इस ईओसीन सागर को उत्तर-पश्चिमी भारत में एक एकाकी द्रोणी के रूप में विभाजित कर दिया जिसमें निक्षेपित अवसाद प्रथम तो सागरीय संलक्षणी प्रदर्शित करते रहे जो बाद में धीरे धीरे स्वच्छ जल निक्षेपों में परिवर्तित हो गए। दूसरे हिमालय उभार में दक्षिण में पूरे हिमालय की लंबाई के साथ साथ एक स्पष्ट अग्रगभीर (फोर डीप) गर्त निर्मित हुआ। यह अग्रगभीर गर्त वास्तव में लेगून्स की एक अनवरत शृंखला थी जिसमें प्रायद्वीप से और नवनिर्मित हिमालय से अनेक अनुप्रस्थ सरिताएं प्रवाहित होती थीं और अवसादों का वहन करते हुए यहां निक्षेपण करती थीं जो कालांतर में शिवालिक संरचना के नाम से जानी गईं। लगभग 4,800 मी. की इन संस्तरों की मोटाई ने अवसादन (द्रोणी) के धीरे धीरे नीचे धंसने की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। यह सोचना ही निरर्थक है कि शिवालिक अवसादों की इस विशाल मोटाई का निक्षेपण किसी एक नदी के बाढ़ मैदान में हुआ होगा, चाहे वह नदी कितनी ही बड़ी क्यों न हो। इस अग्रगभीर गर्त का एक मुहाना राजमहल घाटी से होकर बंगाल की खाड़ी में तथा दूसरा मुहाना पश्चिम में अरब सागर में था। इस नदी के न होने का एक और पक्ष यह है कि जिस स्थान पर तथाकथित सिंधु-ब्रह्म नदी थी और जहां पर इसका उद्गम होना चाहिए वहां पर बेला संगम (एस्चयुरी) निक्षेप हैं। समस्त संभावनाओं सहित, राजमहल गैप मध्य मायोसीन काल में हिमालय के द्वितीय अभ्युत्थान काल में अर्थात शिवालिक अवसादन प्रारंभ होने के ठीक पहले बना होगा। पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली कोई भी नदी पूर्वी हिमालय के शिवालिक प्रक्षेत्र में कभी नहीं बही होगी, क्योंकि ऐसी किसी भी नदी को बंगाल की खाड़ी में मिलने के लिए राजमहल गैप बना-बनाया मार्ग मिल गया होता। परंतु पश्चिमी हिमालय में ऐसी नदियों का पश्चिम व दक्षिण-पश्चिम की ओर एक रास्ता था जो अंत में अरब सागर में मिलता था।

पाकिस्तान की पर्वत शृंखलाएं

सामान्य

पामीर ग्रंथि से दक्षिण की ओर स्थित अक्षसंधि मोड़ से निकलने वाली व अरब सागर

तक विस्तारित समस्त पर्वतमालाएं, हिंदूकुश को छोड़कर, जो 300 किमी. तक पाकिस्तान-अफगानिस्तान सीमा पर होते हुए दक्षिण-पश्चिम से मध्य अफगानिस्तान में फैला है, पाकिस्तान में ही हैं। बलूचिस्तान में ये पर्वतमालाएं पश्चिम दिशा ग्रहण करती हैं। इनकी भूवैज्ञानिक एवं भौगोलिक इकाइयां बृहत हिमालय पर्वतमालाओं के समान ही हैं। हिंदूकुश में चित्राल से सफेदकोह पर्वतमाला में खैबर दर्रे तक पहाड़ियों की दिशा उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर है। सुलेमान पर्वतमाला स्वयं ही उत्तर-दक्षिण में अभिविन्यस्त है लेकिन साई से क्वेटा की ओर यह 'U' के आकार का मोड़ लेती है और मारी-बुग्ती पहाड़ियों का निर्माण करती है और फिर दक्षिण दिशा की ओर होकर मध्य ब्राहुई पर्वतमाला और फिर किरथर पर्वतमाला में सिबी पर एक अंतःप्रवेशी घाटी की रचना करती है।

उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत में पामीर से लेकर खैबर दर्रे तक फैली पर्वतमालाओं की वर्जित भूदृश्यावलि बृहत हिमालय के ही समान है जिसमें ऊंची पहाड़ियां तथा नतिलंब (स्ट्राइक) घाटियां एकांतरित रूप में स्थित हैं। **हिंदूकुश** का पूर्वी भाग पाकिस्तान-अफगानिस्तान सीमा का निर्माण करता है, यह विश्व के सर्वोच्च पर्वतों में से एक है, जिसका उन्नयन (एलिवेशन) 7,500 मी. से भी अधिक है तथा यह कराकोरम से अपने पर्वत शिखरों की विशालता तथा अपने हिमनदों के आकार के आधार पर समान है। तिरिश मीर (7,690 मी) और नौशाक (7,485 मी) इसके दो सर्वोच्च शिखर हैं। इस पर्वतमाला में 6,000 मी. से भी अधिक ऊंचे 200 से अधिक शिखर ज्ञात किए गए हैं। पश्चिम की ओर हिंदुकुश अफगानिस्तान में कई शृंखलाओं में फैल गया है। यह हिमालय की पश्चिमी अक्षसंधि के पश्चिम में स्थित है। इन पर्वत शृंखलाओं से चित्राल, कोहिस्तान और हजारा आदि क्षेत्र आच्छादित हैं। सामान्य रूप से वलयित मीसोजोइक और टर्शियरी काल के सीमावर्ती अवसाद क्रिस्टलीय कायांतरित शैलों का एक जटिल अनुक्रम हैं जो इन शैलों के क्रोड का निर्माण करते हैं।

कोहिस्तान क्षेत्र सिंधु-त्सांगपो भूसीवन क्षेत्र में स्थित है तथा यह उत्तर-पश्चिम में पश्चिमी भूसीवन द्वारा चित्राल क्षेत्र से अलग है तथा दक्षिण में यह क्षेत्र मुख्य प्रावरण क्षेप (मेन मैण्टल थ्रस्ट) जो कि मुख्य मध्य क्षेप का ही विस्तार है, द्वारा हजारा क्षेत्र से अलग है। हजारा पहाड़ियां पश्चिमी हिमालय की अक्षसंधि तथा बलूचिस्तान की सुलेमान पर्वतमाला के बीच क्षेप वलयन पट्टी का निर्माण करती हैं।

साल्ट रेंज (लवण पर्वतमाला) पूर्व-पश्चिम दिशा में स्थित एक चाप है, जो दक्षिण की ओर उत्तल और खड़ी दीवार वाला है, जिसकी लंबी नति ढलान उत्तर की ओर पोटवार मैदान के नीचे पूर्व की ओर सिंधु नदी के पूर्व से पश्चिमी पंजाब में झेलम नगर तक लगभग 200 किमी. तक विस्तृत है। यह सिंधु के पार सरघर पर्वतमाला के रूप में, जो कि सामान्य भाषा में सिंधु लवण शृंखला कहलाती है, तथा मारवट-खीसर शृंखला नदी के दाहिने किनारे के साथ साथ दक्षिण की ओर बढ़ती है। ये पर्वत शृंखलाएं

लगभग एक चेन के रूप में दक्षिण कश्मीर हिमालय को सुलेमान पर्वत शृंखला के उत्तरोत्तर भाग से मिलाती हैं। हालांकि सुदूर दक्षिण हिमालय, लवण शृंखला से मात्र 80 किमी. ही दूर है, दोनों के भूविज्ञान में पर्याप्त अंतर है, परंतु हिमालय के विभिन्न पार्वतिकी विकासों ने इस शृंखला पर भी अपना प्रभाव डाला है। लवण शृंखला (रेंज) का पूर्वी छोर पश्चिमी हिमालय अक्षसंधि से कुछ सीमा तक प्रभावित प्रतीत होता है। कुछ ऊंची पहाड़ियों को छोड़कर लवण शृंखला सामान्यतया पहाड़ियों की तुलना में बहुत छोटी हैं और मात्र 800-1000 मी. तक ही ऊंची हैं। ये पहाड़ियां बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस उपमहाद्वीप की अत्यधिक विस्तृत जानकारियों पर इसी क्षेत्र में कार्य किया गया है। यह मीसोजोइक व प्रारंभिक पेलिओजीन भूविज्ञान का एक अनूठा संग्रहालय है। इन पहाड़ियों की एक अपवादीय विशिष्टता चार लवण ताल हैं। लवण शृंखला की संरचना सरल है, मूलभूत रूप से यह एक भ्रंशित तथा वलयित एकनति (मोनोक्लाइन) है।

किरौना दृश्यांश, लवण पर्वत शृंखला से मात्र 100-110 किमी. दक्षिण में अरावली शैलों का एक पुरांतःशायी (आउटलायर) है जो भारतीय प्रायद्वीपीय खंड की एक विशेषता है जिसने इस क्षेत्र की पहाड़ियों की संरचना को नियंत्रित किया है।

सुलेमान पर्वतमाला

सफेद कोह शृंखला के दक्षिण में स्थित **सुलेमान पर्वतमाला** सिंधु नदी के मैदान की ओर एक खड़ा पार्श्व प्रस्तुत करती है परंतु मात्र 2,000 मी. ही ऊंची होने के कारण ये उत्तरी पर्वतमालाओं के समान प्रमुखता प्राप्त नहीं कर पाई हैं। दक्षिण में ये फैल गई हैं, और चाप क्षेत्र में अत्यधिक वलयित हैं। क्रिटेशस और ईओसीन चूना-पत्थर तथा बालुआ पत्थर एक अत्यधिक रोचक अनगिनत कगारों तथा शूकर पृष्ठो (हॉग बैक्स), छोटे पठार तथा मीजा और अतप्रवण पथरीली खड़ी शैलों वाली भूदृश्यावलि प्रस्तुत करते हैं, जिसकी ढलानों पर अति विशाल शैलपिंड छितरे हुए हैं। हालांकि ऐसी उत्तरी पर्वतमालाओं की तुलना में इन पर्वतमालाओं की ऊंचाई कुछ भी नहीं है परंतु फिर भी ये अपनी अत्यधिक सुंदरता के कारण प्रसिद्ध हैं। इसके उत्तरी किनारे जुड़वां पर्वत शिखर बख्त-ए-सुलेमान (3,440 मी. व 3,378 मी.) बहुत प्रसिद्ध पर्वत शिखर हैं। सीबी अवअवेशी के उत्तर की ओर सुलेमान और मध्य ब्राहुई पर्वतमाला के संपर्क स्थल पर स्थित खिलाफत शिखर की ऊंचाई 3,485 मी. है। इसके दक्षिणी किनारे पर सुलेमान शृंखला चापाकार रूप में होकर एक 'माला' के समान पश्चिम की ओर मरी-बुग्ती पहाड़ियों से मिलती हुई क्वेटा-जियारत शृंखला में समाप्त होती है। यह "मालाकार" आकृति संभवतया सुलेमान शृंखला के दक्षिणावर्ती संचलन में क्वेटा के निकट रुकावट के परिणामस्वरूप बनी और क्वेटा अक्षसंधि की उत्पत्ति हुई।

क्वेटा से दक्षिण की ओर दो पर्वतीय प्रवृत्तियां बलूचिस्तान के विशिष्ट लक्षण हैं। उत्तर-दक्षिण दिशा में संरेखित मध्य किरथर-ब्राहुई शृंखला सिंध-बलूचिस्तान की सीमा पर स्थित है। ये पहाड़ियां कम ऊंचाई की हैं, लेकिन क्वेटा के निकट **मध्य ब्राहुई शृंखला** के उत्तरी खंड में स्थित जारघन शिखर 3,578 मी. ऊंचा है। **किरथर शृंखला** ऊंचाई में और भी कम है। ये शृंखलाएं मध्य से उत्तर मीसोजोइक काल के अवसादों से निर्मित हैं। क्वेटा से दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक और कटक दृष्टिगत होती है जिसकी सर्वोच्च ऊंचाई 3,310 मी. और रासकोह पहाड़ी 3,118 मी. है। टर्शियरी ज्वालामुखीय शैलों तथा क्रिटेशस अवसादों से मिश्रित **छगाइ पहाड़ियां** पूर्व-पश्चिम दिशा में बलूचिस्तान व अफगानिस्तान सीमा का निर्धारण करती हैं। इनके दक्षिण में मात्र 450-500 मी. की ऊंचाई पर एक विशाल बालुकामय मरुस्थल का धंसाव दृष्टिगत होता है, जो दक्षिणी पार्श्व में बलूचिस्तान की **विशाल मकरान पर्वत शृंखला** से घिरी है। मकरान ऊंची पथरीली ऑलिगोसीन काल की खंडमय शैलों की बनी हैं जो शायद ही ऊंचाई में 2,000 मी. से अधिक हों, तथा पूर्व-पश्चिम तट रेखा का अनुगमन करती हैं।

छामन भ्रंश, जो अफगानिस्तान में काबुल से उत्तर-दक्षिण नतिलंब के साथ क्वेटा के पश्चिम से होकर बलूचिस्तान की मकरान शृंखला के उत्तरी छोर तक दृष्टिगत है, भारतीय प्लेट तथा ईरान-अफगानिस्तान माइक्रो प्लेट की सक्रिय सीमा है। यह एक सक्रिय भूकंपीय विशिष्टता है। भूवैज्ञानिक एवं भूभौतिकी प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि मकरान क्षेत्र एक ऐसा सक्रिय सबडक्शन क्षेत्र है जो संभवतया अधिकांश सीनोजोइक काल में सक्रिय रहा है।

असम-बर्मा पर्वतमाला

भारत-बर्मा की पूर्वी सीमा पर स्थित पर्वतमालाओं को सम्मिलित रूप में पूर्वांचल के नाम से जाना जाता है जो पश्चिम की ओर उन्नतोदर चाप के आकार में हैं। इनके उत्थान हेतु वही पर्वतन संचलन हैं जिनसे बृहत हिमालय का निर्माण हुआ। यह भारत-बर्मा पर्वतमाला क्रिटेशस-ईओसीन-फ्लिश-ओफियोलाइट मिलान्ज प्रक्षेत्र का निर्माण करती है जो अराकान योमा-भूसीवन प्रक्षेत्र का ही एक भाग है जो दक्षिण की ओर अंडमान-निकोबार द्वीप-समूह पर्वतमाला से होता हुआ सुण्डा चाप तक विस्तारित है। यह प्रक्षेत्र भारतीय प्लेट के सागरीय भूपटल घटक की पूर्वी सीमा को इंगित करता है जो पूर्वोत्तर दिशा में खिसककर बर्मा लघु प्लेट के नीचे धंस गया है।

इसका सुदूर उत्तरी भाग **पटकाइ बम पर्वतमाला** है जो **मिशमी पहाड़ियों** से कहीं नीची हैं, तथा बृहत हिमालय पर्वत शृंखला की सुदूरवर्ती सीमा निर्धारित करती हैं और मात्र 2,000-3,000 मी. ही ऊंची हैं। यह कठोर टिपम बलुआ पत्थर की एक प्रारूपिक अभिनतिक पर्वतमाला है। यह दक्षिण की ओर स्थित **बरेल पर्वतमाला,** दक्षिण-पश्चिम की ओर झुककर फिर पश्चिम की ओर मुड़कर **जयंतिया, खासी** तथा **गारो पहाड़ियों** से

मिलती हैं तथा इसी में **शिलांग का पठार** स्थित है। ये पहाड़ियां वास्तव में भारतीय प्रायद्वीपीय खंड का ही पूर्व दिशा में विस्तार है जो अब बंगाल द्रोणी द्वारा अलग हो गया है। ब्रह्मपुत्र नदी की ब्रह्मपुत्र घाटी पूर्वी हिमालय पर्वतमालाओं के मध्य स्थित है। शिलांग पठार का अधिकांश भाग आर्कियन क्वार्टजाइट, शैल तथा शिस्ट से निर्मित है जिसमें ग्रेनाइट अंतर्भेदन हैं, परंतु दक्षिण में यह क्रिटेशस एवं ईओसीन बलुआ पत्थरों द्वारा क्षैतिज रूप में आच्छादित हैं परंतु बाह्य पार्श्वीय भागों में वे दक्षिण की ओर सीधी नति ग्रहण करती हैं।

बरेल शृंखला से लगभग 150 किमी. दूर तक समानांतर चलने के बाद **नागा पहाड़ियां** दक्षिण दिशा की ओर घूमकर **मिजो** तथा **चिन पहाड़ियों** में मिल जाती हैं। ये समस्त पर्वतमालाएं सामान्यतया 2,000 मी. से कम ऊंची हैं परंतु घने वनों तथा कठिन भूप्रदेश व जंगली जातियों के कारण दुर्गम्य हैं। चिन पहाड़ियां बर्मा तट स्थित **अराकान योमा** पर्वतमालाओं में मिल जाती हैं।

3

हिमनद तथा हिमनदन

सामान्य

हिमनद, ऊंची पर्वतमालाओं से प्रवाहित होने वाली हिम की जमी हुई नदियां हैं, अथवा अंटार्कटिक व ग्रीनलैंड महाद्वीपों की स्थायी विशिष्टता हैं। उच्च पर्वतमालाओं व शिखरों से उद्गमित हिमनद अपनी स्वयं की घाटियां निर्मित करते या पुरानी घाटियों को ग्रहण करते हुए धीरे धीरे नीचे की ओर खिसकते हैं, वर्षों में वे पीछे की ओर भी खिसक जाते हैं। पर्वतों से टूटकर गिरने वाले शैलों के टुकड़े तथा शैलखंड बर्फ पर गिरकर लुढ़कते हुए तथा हिमनद के साथ प्रवाहित होते हुए अपने उद्गम स्थानों से बहुत दूर चले जाते हैं। ये शैलखंड हिमोढ़ अथवा मोरेन कहलाते हैं जो टीलों या कटकों के रूप में या अलग प्रकार के बिना छंटे अस्तरित मृत्तिका, बालू बजरी तथा गोलाश्मों के विभिन्न माप और आकारी हिमनदीय अर्पाढ हैं जो गोलाश्मी मृत्तिका या टिल कहलाती है। इनका निक्षेपण हिमनदीय हिम की क्रिया द्वारा ही किया जाता है। जब ये निक्षेप या संग्रह हिमनद के किनारों पर होते हैं, तब यह मार्जिनल या पार्श्वीय हिमोढ़ कहलाते हैं। जब दो घाटी हिमनद मिलते हैं तो समीपवर्ती तथा भीतरी पार्श्वीय हिमोढ़ मिलकर मध्यस्थ (मीडियल) हिमोढ़ बनाते हैं। इनमें से कुछ शैलखंड हिमनद पर गिरकर हिम के भीतर धंस जाते हैं तथा इसी अवस्था में हिमनद में ही रह जाते हैं तथा ये अंतःहिमनदीय हिमोढ़ (एनग्लेशियल मोरेन) कहलाते हैं। परंतु जब ये हिमनद की तलहटी में एकत्र होते हैं तो ये अधःहिमनदीय हिमोढ़ (सब ग्लेशियल मोरेन) कहलाते हैं। शैल मलबा जो हिमनद के किनारों तथा तलहटी में घिसटता हुआ निक्षेपित होता है, आधारिक या तलछटीय हिमोढ़ (ग्राउंड या बॉटम मोरेन) कहलाता है। जब हिमनद का निचला भाग अधिक मलबे से भर जाता है, जिसे वह ढो नहीं सकता है, तो ऊपर का अधिक सक्रिय हिम अध्यारोहित हो जाता है। जब हिमनद अपनी प्रगामिता रोकता है तो वह अपने मलबे का भार वहीं अंत में चापाकार या अर्धचंद्राकार भित्ति के रूप में घाटी के आर पार छोड़ देता है, ये हिमोढ़ अंतस्थ या प्रतिसारी हिमोढ़ (टर्मिनल या रेसेशनल मोरेन) कहलाते हैं तथा यह हिमनद के सुदूरवर्ती प्रसार को इंगित करना है। यदि यह अंतिम

भाग या प्रोथ (स्नाउट) लगातार ग्रीष्म प्रति ग्रीष्म अपसर्पण करता है, उस दशा में भित्ति का एकत्र होना संभव नहीं है और इस अवस्था में मलबा अनियंत्रित गोलाश्मी मृत्तिका (टिल) के रूप में पूर्व निक्षेपित तलछटीय हिमोढ़ के ऊपर ही स्थिर हो जाता है। यह शिलीभूत गोलाश्मी मृत्तिका टिलाइट कहलाती है। प्राचीन भूवैज्ञानिक अनुक्रमों में ये टिलाइट सामान्यतया अवसादी संस्तरों के रूप में दृष्टिगत होती हैं।

घाटियों में अथवा घाटीशीर्षों में उद्गमित हिमनद गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से नीचे की ओर हिम की जिह्वा समान सरिता के रूप में बहुत ही मंथर गति से खिसकते हैं। हिमनद हिमक्षेत्रों में शीतकालीन भारी हिमपात के कारण उद्‌गमित होते हैं, जिसका गरमी के कारण पिघलना तथा वाष्पीकरण भी संपूर्ण हिम को हटा पाने में सफल नहीं हो पाता है। हिमनद के शीर्ष पर दृष्टिगत दृढ़ीकृत हिमखंडों को कणहिम (नेवे या फर्न) कहते हैं। हिमनदीय घाटीशीर्ष जिससे हिमनद विलुप्त हो चुका होता है, 'सर्क' कहलाता है। यह एक गहरी खड़ी दीवारों वाला आधे कटोरे के समान अर्धचंद्राकार खोखला स्थान है जो घाटी में खुलता है। हिम के पिघलने, वाष्पीकरण, वायु अपरदन तथा टूटने के कारण हिमनद सिकुड़ते हैं तथा हिम की वार्षिक हानि या अपक्षरण (एब्लेशन) कहलाता है।

यदि प्रत्येक हिमनद की स्थानीय विशेषताओं को छोड़ दिया जाए तो एक ही क्षेत्र के समस्त हिमनद, समान जलवायु दशाओं के अंतर्गत, समान ऊंचाई पर पहुचेंगे, परंतु हिमनदों की स्थानिक विशेषताओं के कारण एक हिमनद दूसरे हिमनद से भिन्न होता है। यदि नेवे क्षेत्र से हिम की सतत आपूर्ति होती रहती है तथा तापक्रम में सामान्य वृद्धि होती है तो हिम का पिघलना बढ़ जाता है तथा इस प्रकार हिम के नष्ट होने से प्रोथ (स्नाउट) का प्रतिसरण होता है। परंतु जब तापक्रम घटता है तो प्रोथ आगे बढ़ता है। तापक्रम व जलवायु में इस प्रकार का परिवर्तन प्रोथ की चिरंतन गति को जन्म देता है। हिमनद प्रोथ की चिरंतन गति, हिमपात या तापक्रम या दोनों को वर्षानुवर्ष मापा जा सकता है। यदि विश्व के अन्य भाग के हिमनदों में भी समान परिवर्तन पाए जाएं तो ये चिरंतन परिवर्तन क्षेत्रीय या विश्वव्यापी हो सकते हैं।

हिमनदों को सामान्यतया दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। अनुदैर्घ्य (लांगिट्यूडिनल) प्रकार के हिमनद पर्वतमाला की नतिलंब दिशा की घाटी में स्थित होते हैं जबकि अनुप्रस्थ (ट्रांसवर्स) प्रकार के हिमनद पर्वतमाला की दिशा की अनुप्रस्थ दिशा में स्थित होते हैं। निलंबी तथा अनुप्रस्थ प्रकार के हिमनद अनुदैर्घ्य घाटी हिमनदों की अपेक्षा सामान्यतया छोटे तथा द्रुत गति वाले होते हैं।

हिमालय के हिमनद

हिमालय क्षेत्र में लगभग 15,000 हिमनद हैं जो हिंदूकुश-कराकोरम पर्वतमाला (पामीर) तथा पूर्वी हिमालय-पटकाइ बम पर्वतमालाओं के दो अक्षसंधि मोड़ों के मध्य स्थित हैं। ये हिमनद आकार में कहीं तो दैत्याकार 60 किमी. से अधिक तथा कहीं कहीं छोटे केवल

3 से 5 किमी. लंबे हैं। भूपृष्ठ पर ध्रुवीय तथा उपध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर सबसे बड़े हिमनद हिमालय में ही हैं। हिमालय का लगभग 33,000 वर्ग किमी. या 17% भाग हिमाच्छादित है, जिसमें से अकेले कराकोरम पर्वतमाला ही 16,000 वर्ग किमी. हिम से आच्छादित है, जबकि आल्पस का केवल 22% भाग ही हिमाच्छादित है। हिमालय के हिमनद अन्य स्थानों की अपेक्षा, यहां तक कि अपेक्षाकृत कम ऊंचाई वाले आल्पस हिमनदों को भी सम्मिलित करके, काफी अधिक ऊंचाई पर स्थित हैं। अस्थायी हिम या हिमरेखा की निम्नतम सीमा हिमालय के विभिन्न खंडों में देशांतर, उपलब्ध वर्षा की मात्रा तथा स्थानीय स्थलाकृति आदि पर निर्भर होने के कारण काफी अलग अलग हैं। एन. अहमद तथा पी. ए. मायव्स्की (1981) द्वारा की गई अद्यतन गणना के अनुसार हिमरेखा के परिप्रेक्ष्य में ऊंचाई को लेकर पूर्व से पश्चिम तक स्थित विशाल मैदान के सामने की पर्वतमालाओं का कोई नियमित प्रतिरूप नहीं बनाया जा सकता, लेकिन अत्यधिक सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि पूर्वी हिमालय में भूटान और एवरेस्ट के बीच हिमरेखा समुद्रतल से लगभग 4,200 मी. ऊपर है, जबकि कराकोरम पर्वतमाला में यह हिमरेखा 4,000 मी. तक नीचे उतर आती है। प्लायस्टोसीन काल में ऐसा ही एक समानांतर प्रतिरूप दृष्टिगत होता है, लेकिन इसमें, हिमरेखा, पूर्व से पश्चिम तक 200 से 800 मी. तक और नीचे है। उत्तरी कराकोरम तथा अफगानिस्तान में हिमरेखा के ऊंचे होने का कारण इन क्षेत्रों की अपेक्षिक उच्च शुष्कता है। हिमालय पर्वतमालाओं में उत्तरी ढलानों की अपेक्षा दक्षिणी ढलानों में हिमरेखा अधिक नीची है। इसका कारण यह है कि दक्षिणी ढलानों में अधिक वर्षा होती है, तथा उत्तरी ढलानों की अपेक्षा जो अधिक सरल ढलान की व अधिक शुष्क हैं, दक्षिणी ढलानें मानसून की छाया वाले क्षेत्र में स्थित हैं, तथा उनकी ढलानें अधिक सीधी खड़ी हैं। तिब्बती पर्वतमालाओं में नतिलंब बृहत हिमालय के समान होते हुए भी उपरोक्त का उल्टा ही सत्य है। अलिंग कांगड़ी तथा न्येनशेन तांगाचा पर्वतमालाओं की दक्षिणी ढलानों पर उनकी उत्तरी ढलानों की अपेक्षा हिमरेखा काफी ऊंचाई पर है क्योंकि यह क्षेत्र काफी शुष्क है तथा वर्षा भी कम होती है और सूर्य की किरणें भी सीधी दक्षिणी ढलान पर ही पड़ती हैं, इस कारण उत्तरी ढलानें छाया में होने के कारण ठंडी भी हैं।

हिमालय के विभिन्न भागों की क्षेत्रीय कर्ण हिम की सीमा की समुद्रतल से माध्य ऊंचाई एवरेस्ट-कंचनजंघा क्षेत्र के लिए 5,500-5,600 मी., गढ़वाल खंड में 5,200-5,700 मी., नंगा पर्वत में 4,500-4,700 मी., कराकोरम पर्वतमाला की दक्षिणी ढलानों में 5,000-5,200 मी. तथा कराकोरम पर्वतमाला के उत्तरी क्षेत्र में 5,500 मी. है।

अत्यधिक व्यापक क्षेत्रीय रूप में हिमालय के हिमनद सन 1850 से अपसरण (रिट्रीट) की सामान्य अवस्था से गुजर रहे हैं। वर्ष 1850-1910 की अवधि संचलन की जटिलता से भरी हुई है यथा अपसरण, उच्चावचन और या कुछ क्षेत्रों में आगे बढ़ना भी है। परंतु 1900-1920 तक सामान्यतया अपसरण ही हुआ है। गढ़वाल-कुमाऊं व

कराकोरम क्षेत्रों में ऊर्ध्वाधर हिमनदों की अपेक्षा अनुप्रस्थ प्रकार के हिमनदों के उच्चावचन अभिलेख अधिक जटिल हैं। ऊर्ध्वाधर हिमनद सामान्यतया 1850 से अपसरित हो रहे हैं, जबकि अनुप्रस्थ हिमनदों ने 1850-1880 की कालावधि में उच्चावचन प्रदर्शित किया है, तथा 1880-1900 की कालावधि में सामान्यतया आगे बढ़ना तथा सामान्यतया 1900 से अपसरण प्रदर्शित किया है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि कराकोरम के हिमनदों की उच्चावचन सक्रियता 1850 से 1910-1920 की अवधि तक रही तत्पश्चात अपसरण हुआ; और हिमालय के अन्य भागों के हिमनदों की तरह 1850 से सामान्यतया अपसरण में ही रहे हैं।

कराकोरम के अनेक हिमनदों के उच्चावचन अभिलेखों का के. मेसन (1930) व अन्य वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया, और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि बहुत से हिमनद जिनके अभिलेख उपलब्ध थे, वर्ष 1900-1910 के मध्य आगे बढ़ रहे थे, जबकि उनमें से बहुत से 1910-1920 के मध्य अपसरित हो रहे थे। बड़े हिमनद प्राथमिक रूप में एक-से बढ़ाव से प्रभावित थे, जबकि छोटे हिमनदों में प्राथमिक रूप से चक्रीय या बारंबार आगे बढ़ने की प्रक्रिया चल रही थी। अभिलेखित तीव्र अग्रगामिता संभवतया भूकंपों के कारण है।

बृहत हिमालय की संपूर्ण लंबाई में हिमनद उपलब्ध हैं। इनमें निम्नलिखित समूह सरलता से पहचाने जा सकते हैं :

(अ) पूर्वी हिमालय,

(ब) कंचनजंघा-एवरेस्ट क्षेत्र,

(स) मध्य नेपाल,

(द) कुमाऊं-गढ़वाल क्षेत्र (पश्चिमी नेपाल के निकटवर्ती भागों को समाहित करते हुए)

(इ) पीर पांजाल पर्वतमाला

(फ) कराकोरम पर्वतमाला

(ग) हिंदूकुश पर्वतमाला

प्रत्येक क्षेत्र के केवल मुख्य हिमनदों की मुख्य विशेषताओं का ही वर्णन यहां पर किया गया है। इनमें से अधिकांश हिमनद अत्यंत दुर्गम भूप्रदेश में स्थित हैं, जहां पहुंचना अत्यंत कठिन है, और उनका सावधानीपूर्वक अध्ययन वांछित है और बहुतों का केवल औपचारिक अध्ययन ही किया गया है। अत्यधिक सरल पहुंच वाले सामान्यतया छोटे हिमनदों का लगभग संपूर्ण अध्ययन किया गया है। कई आंकड़े जो यहां दिए गए हैं वे उन वैज्ञानिकों तथा अन्य लोग जिन्होंने उनका अध्ययन किया है, के अध्ययनों पर ही आधारित हैं। उल्लिखित प्रोथ ऊंचाइयां अधिकांशतया अंतिम अभिलेखन पर आधारित हैं, तथा अभिलेखन वर्ष को कोष्ठक में लिखा गया है। चूंकि उनके अंतिम सिरे सामान्यतया संचलन में रहते हैं इसलिए उनके मान समय समय पर परिवर्तित होते रहते हैं। हिमनदों के

आगे बढ़ने तथा अपसरण संबंधी जानकारी उपलब्ध अभिलेखों पर ही आधारित हैं। संभवतया उनके संचलन की दिशा भी पिछले अभिलेखन के बाद बदल गई हो।

पूर्वी हिमालय

हिमालय के सुदूर पूर्वी भाग में अधिक हिमनद नहीं हैं और उनके बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। हिमालय के सुदूर पूर्वी अंत में नामचे बारवा शिखर (7,756 मी.) से कुछेक अनुप्रस्थ हिमनद उद्गमित हुए हैं। इस संबंध में उपलब्ध जानकारी के अनुसार इस शिखर की उत्तरी ढलानों पर स्थित हिमनद औसत सागर तल से 2,750 मी. की ऊंचाई तक आते हैं।

नामचे बारवा तथा अरुणाचल प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर स्थित कांग्टा शिखर के मध्य की हिमालय पर्वतमाला लगभग हिमनद विहीन है। कांग्टा शिखर (7,089 मी.) के मानचित्र में तथा निकटवर्ती पर्वतमालाओं में कुछ हिमनद दर्शाए गए हैं। कुछ बंजर अंतराल के बाद उत्तरी भूटान के कुर्ला कांगड़ी (7,593 मी.) शिखर तथा उसके पश्चिमी विस्तार में हिमनद फिर प्रचुरता से दृष्टिगत होते हैं। इन हिमनदों के विषय में भी बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।

कंचनजंघा-एवरेस्ट क्षेत्र

कंचनजंघा-एवरेस्ट क्षेत्र सिक्किम और नेपाल सीमा पर फैला हुआ है तथा चुनौती भरे पर्वतशिखरों में पर्वतारोही अभियानों के कारण इसके कई विशाल हिमनद विश्व प्रसिद्ध हो चुके हैं। इन हिमस्रोतों से संबंधित भूवैज्ञानिक आंकड़े प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि अधिकांश अभियानों ने इन शिखरों पर चढ़ने की आतुरता में वैज्ञानिक जानकारी को पृष्ठभूमि में कर दिया है। इस क्षेत्र का कोई भी हिमनद 4,000 मी. की ऊंचाई से नीचे नहीं है। सामान्यतया इन हिमनदों की प्रवणता सीधी खड़ी है। इस प्रकार की तीव्र गिरावट खुम्बू हिमनद में 8,500 मी. से 4,900 मी. की ऊंचाई तक केवल 20 किमी. की दूरी में दृष्टिगत होती है। कंचनजंघा-एवरेस्ट क्षेत्र के कई हिमनदों के अन्त्य भाग बहुत अधिक मलबे से लदे हुए हैं। यह मलबा आच्छादन अपनी कुचालक प्रवृत्ति के कारण प्रोथ को अपने स्थान पर ही स्थायित्व प्रदान करता है। खुम्बू, जेमू तथा त्सांगपू हिमनद इसके उदाहरण हैं।

इस क्षेत्र के हिमनदों को विशेष रूप से दो विशिष्ट समूहों में बांटा जा सकता है : यथा कंचनजंघा गिरिपिंड जिसे अरुण (कोसी) नदी घाटी एवरेस्ट और निकटवर्ती पर्वतों से पृथक करती है। कंचनजंघा समूह में जेमू हिमनद पूर्वोत्तर में, पश्चिमोत्तर में कंचनजंघा तथा दक्षिण में तालुंग और यालुंग हिमनद महत्वपूर्ण हैं। निःसंदेह एवरेस्ट समूह में सर्वाधिक प्रसिद्ध खुम्बू हिमनद है जिसके किनारे ही से होकर एवरेस्ट पर्वत शिखर का मार्ग है। एवरेस्ट की उत्तर दिशा में तिब्बत की ओर स्थित रांगबक हिमनद भी प्रसिद्ध

है। जैसा कि मानचित्र से ज्ञात होता है कि इन पर्वत शिखरों के निकटवर्ती क्षेत्र में कई हिमनद हैं परंतु उनसे संबंधित हिमनदीय अभिलेख बहुत ही कम प्रकाशित किए गए हैं।

जेमू हिमनद औसतन 25 किमी. लंबा और 1 किमी. चौड़ा है, इसकी मोटाई लगभग 180 मी. है। इसका प्रोथ 4,260 मी. (1965) की ऊंचाई पर स्थित है। इसके 140 मी. चौड़े प्रोथ के पश्चिमी किनारे पर एक विशाल हिम गुफा है। यह हिमनद अनुदैर्घ्य है तथा इसका प्रवाह पूर्व दिशा की ओर जेमू नदी घाटी के शीर्ष पर है, जिसकी एक शाखा तीस्ता के नदीशीर्ष का स्रोत है। निकटवर्ती पर्वतशिखरों से उद्गमित कई छोटे छोटे सहायक हिमनद जेमू हिमनद के हिमस्रोत हैं; इसके दक्षिणी पार्श्व में कई बहुत छोटे निलंबी हिमनद भी दृष्टिगत हुए हैं। सर्क क्षेत्र को छोड़कर हिमनद की पूरी सतह हिमोढ़, धूल तथा बालू से ढकी हुई है। जेमू हिमनद संभवतया अपसरण चरण में है, लेकिन यह पहली बार ही नहीं है। संपूर्ण हिमनद यहां तक कि कंचनजंघा शिखर के पादस्थल की खड़ी चट्टानों तक मलबे से पटा हुआ है। इस हिमनद की सतह पर फैली कुछ झीलें हैं, जिनमें सबसे बड़ी 45,000 वर्ग मी. क्षेत्र में फैली है। इसकी विशिष्टता है यह झील चारों ओर से हिम की खड़ी चट्टानों से घिरी हुई है।

कंचनजंघा हिमनद लगभग 21 किमी. लंबा है। यह उत्तर में स्थित पर्वत शिखर से नीचे उतरता है तथा पश्चिम की ओर प्रवाहित होता है और कांगशेन नदी का शीर्ष बनाता है जो कोसी सरिता तंत्र का छोटा संभरक स्रोत है। यह हिमनद भी अनुदैर्घ्य प्रकार का हिमनद प्रतीत होता है। जेमू हिमनद से समान ही, कंचनजंघा हिमनद भी निकटवर्ती पर्वत शिखरों से उद्गमित अनेक हिमनद शाखाओं के मिलने से निर्मित हुआ है। लगभग 10 किमी. लंबा **रामबंग हिमनद** कंचनजंघा हिमनद के प्रोथ का सहावसानी (कोटर्मिनस) है।

अलुकथांग हिमनद, हालांकि केवल 5 किमी. ही लंबा है, परंतु यह साफ मौसम में कंचनजंघा के पाद स्थित दार्जिलिंग से स्पष्ट दिखाई पड़ने के कारण प्रसिद्ध है। इसका प्रोथ हिमोढ़ों से पूरी तरह से ढका हुआ है, और यह सुनिश्चित करना कठिन हो जाता है कि किस बिंदु तक हिम विस्तृत है। अलुकथांग हिमनद एक कटक द्वारा **तालुंग हिमनद** से पृथक है, जो लगभग 15 किमी. लबा है, तथा कंचनजंघा पर्वत शिखर के दक्षिणी भाग से सीधे ही दक्षिण-पूर्वी दिशा की ओर नीचे उतरता है। लगभग 16 किमी. लंबा **यालुंग हिमनद** इस शिखर से दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रवाहित होता है। ये सभी हिमनद अनुप्रस्थ प्रकार के हैं।

एवरेस्ट के दक्षिण से उद्गमित **खुम्बू हिमनद** 20 किमी. लंबा है और इसका अंत 4,900 मी. (1963) की ऊंचाई पर होता है, जो 460 मी. ऊंचे तथा कम-से-कम 12 भित्तियों वाले अंतस्थ हिमोढ़ हैं। खुम्बू की कणहिम सीमा 5,600 मी. है। हिमनद का निचला भाग मलबे की मोटी परत में ढका हुआ है। ऊंचाई पर हिम शिखरिकाओं का प्रक्षेत्र है जिसमें सैकड़ों अधिहिमानी झीलें (Supraglacial) हैं जो कभी कभी

अपवाहित्त होने पर साधारण बाढ़ का कारण बनती हैं और शृंखला प्रतिक्रिया प्रारंभ करती हैं। अपक्षरण का प्रमुख कारण वाष्पीकरण है। वर्ष 1930-1956 के बीच हिमनद मोटे मलबे के कारण 70 मी. पतला हो गया है, जबकि इसका प्रोथ अपने स्थान पर ही स्थिर रहा।

एवरेस्ट पर्वत शिखर के उत्तरी (तिब्बत) पार्श्व की ओर, **रांगबक हिमनद** स्थित है, जो 52 किमी. लंबा तथा कराकोरम के बाहर सबसे बड़ा हिमनद है। पर्वत शिखर से 8 किमी. दूर पश्चिमी रांगबक हिमनद मुख्य धारा में मिलता है तथा पूर्व की ओर से 3 किमी. और नीचे इसमें पूर्व रांगबक हिमनद गिरता है। ये दोनों सहायक हिमनद कई अन्य हिमनदों से आपूर्तित हैं। मुख्य रांग क अनुप्रस्थ प्रकार का हिमनद है जिसका प्रोथ 5,047 मी. की ऊंचाई पर स्थित है। इसकी एक अद्भुत विशेषता लगभग 30 मी. चौड़ी तथा 15 मी. गहरी एक द्रोणिका है, जो कि लगभग 5.5 किमी. तक पूर्वी रांगबक हिमनद के साथ एक अनुदैर्घ्य गलियारे के रूप में चलती है। यह खड़े कगारों वाली द्रोणिका अपनी अद्वितीय सुंदरता के साथ दोनों हिमस्रोतों, जो मिलकर हिमनद का निर्माण करते हैं, के मध्य संभवतया एक विशेष प्रतिबल (Stress) रेखा के रूप में स्थित है। रांगबक के अतिरिक्त एवरेस्ट के उत्तर की ओर कई छोटे छोटे हिमनद हैं। एवरेस्ट क्षेत्र के समस्त हिमनद संकुचित हो रहे हैं और पश्चगतिक दिशा में दीर्घकालीन संचलन प्रदर्शित कर रहे हैं। रांगबक के पाद स्थित दज्कारचू घाटी हिमोढ़ों से पटी हुई है, क्योंकि पश्चगति के समय यह हिमनद कई बार रुका है जिससे इस घाटी में विभिन्न अंतरालों में अंतस्थ हिमोढ़ के बड़े टीले बने हुए हैं। कैब्रक के नीचे स्थित घाटी में हिमोढ़ों के 60 मी. ऊंचे विराट परकोटे हैं जो घाटी के दोनों किनारों पर प्रोथ से लगभग 24 किमी. दूर तक हैं।

एवरेस्ट के पूर्व से प्रवाहित अनुदैर्घ्य **कांगशंग हिमनद** लगभग 19 किमी. लंबा है तथा उसका प्रोथ 4,450 मी. (1925) की ऊंचाई पर स्थित है।

बारूनत्से शिखर (7,220 मी.) के उत्तर तथा पूर्व से उद्गमित बहु-जेहन्वी **बारून हिमनद** तथा उसी शिखर के दक्षिण से उद्गमित **निम्न बारून हिमनद** क्रमशः 15 तथा 16 किमी. लंबे हैं।

निकटवर्ती छो ओयू क्षेत्र में कई हिमनद स्थित हैं, जिनमें सबसे बड़ा अनुप्रस्थ **हिमनद कायब्रेक** (16 किमी.) है जो अपनी दो प्रमुख शाखाओं **ङोजुम्बा** (17 किमी.) जो अनेक छोटे छोटे हिमनदों से आपूर्तित है दक्षिण-दक्षिणपूर्व दिशा में स्थित है, तथा उसके दक्षिण-पश्चिम में **लुनक** (10 किमी.) स्थित है। सभी संभवतया स्रोत घाटियों में स्थित हैं तथा लगभग 4,700 मी. तक नीचे उतरते हैं।

इस क्षेत्र का एक और विशाल हिमनद एवरेस्ट से लगभग 45 किमी. दक्षिण-पश्चिम स्थित 'U' आकार वाला **तोलम बाउ** (19 किमी.) हिमनद है।

मध्य नेपाल

छो ओयू तथा धौलागिरि के मध्य की पर्वतमालाओं को मध्य नेपाल हिमालय के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र की ऊंची पहाड़ियों में हिमनदों के कई समूह हैं जिनमें से अधिकांश ऊंचे शिखरों के आसपास स्थित हैं, जैसा कि मानचित्र में दिखाया गया है। यह हिमनद गोसाईंथान, मन्सालू, अन्नपूर्णा, तथा धौलागिरि पर्वतों के आसपास ही सीमित हैं लेकिन इनके विषय में उपलब्ध जानकारी कम है।

गोसाईंथान पर्वत (चीनी में जिक्साहांग्मा) में 13.5 किमी. लंबा एक हिमनद **येपोकांगड़ा**, पाया जाता है।

मन्सालू क्षेत्र में हिमनदों की संख्या कम है, और अधिकांश 8 किमी. से भी कम लंबे हैं : **लिडण्डा** तथा **छुलिंग हिमनद** ही 11 किमी. लंबे हैं तथा दोनों ही मुख्य शिखर के दक्षिणी-पूर्वी पार्श्व की ओर हैं।

केवल **दक्षिणी अन्नपूर्णा हिमनद** को छोड़कर अन्नपूर्णा हिमालय में भी कोई उल्लेखनीय हिमनद नहीं है।

इसी प्रकार धौलागिरि हिमालय में भी कोई उल्लेखनीय हिमनद नहीं है। **मायोन्दी हिमनद** ही जैसा कि मानचित्र में दिखाया गया है केवल एकमात्र उल्लेखनीय हिमनद है जो संभवतया 12 किमी. लंबा है तथा शिखर के उत्तर की ओर से प्रवाहित होता हुआ दक्षिण की ओर 'U' मोड़ लेता है।

कुमाऊं-गढ़वाल क्षेत्र

हिमालय का वह भाग जो पश्चिमी नेपाल के कुछ भाग में करनैली घाटी से सीमा के पार उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जनपद तक फैला हुआ है, जिसको हम यहां अपने उद्देश्य के लिए कुमाऊं-गढ़वाल भूआकृतिक क्षेत्र में सम्मिलित करते हैं। इस क्षेत्र के कुछ ऊंचे पर्वतों में कई हिमनद स्थित हैं जो समूहों में संबंधित पर्वतों के नाम से जाने जाते हैं। इस क्षेत्र के कुछ पर्वत-शिखरों की ऊंचाई 7,000 मी. तक है परंतु हिमनद 3,600 मी. तक नीचे चले आते हैं।

लगभग 15 किमी. लंबा एक हिमनद, गुरला मान्धाता शिखर (चीनी में कुआ-ला-मान-ता-ता शान) जो नेपाल-कुमाऊं संधि के ठीक उत्तर में तिब्बत में है, स्वीडिश अन्वेषणकर्ता स्वेन हेडिन ने अपने मानचित्र में दिखाया है। इसके थोड़ा-सा पूर्व में एक शिखर पर एक छोटा-सा हिमनद भी दर्शाया गया है। कुबी-गांगरी में चार छोटे हिमनद भी दर्शाएं गए हैं, जिनमें से सबसे बड़े को त्सांगपो नदी का स्रोत माना जाता है। इसकी आपूर्ति तीन कणहिम क्षेत्रों से होती है तथा इसमें दो पृष्ठीय हिमोढ़ भी हैं।

उत्तर-पूर्वी कुमाऊं के त्रिशूल-नन्दा देवी क्षेत्र में, कई छोटे छोटे हिमनद हैं। इनमें सबसे अधिक परिचित पिण्डारी हिमनद है जो पहुंचने की सुविधा के कारण पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है। यह एक बहुत छोटा-सा लगभग 5 किमी. लंबा दक्षिण-पश्चिम

दिशा स्थित एक अनुप्रस्थ हिमनद है जो 3,516 मी. (1966) की ऊंचाई पर समाप्त हो जाता है। यह एक अनुप्रस्थ प्रकृति का हिमनद है जिसकी आपूर्ति दो हिम प्रवाहों से होती है जो एक-दूसरे से पिछले 130 वर्षों में लगभग 3 किमी. दूर हो गए हैं जो एक कीर्तिमान-सा प्रतीत होता है।

अनुप्रस्थ **पोटिंग हिमनद** जो केवल 3.5 किमी. ही लंबा है आकार के अनुसार नगण्य है परंतु कुमाऊं क्षेत्र की सर्वाधिक सुंदर दृश्यावली से घिरा होने के कारण वर्णन योग्य है। हिमनद, नन्दाकोट शिखर की ढलानों पर स्थित कणहिम क्षेत्र से बना है। इसका प्रोथ 3,650 मी. (1957) की ऊंचाई पर है।

नन्दादेवी एम्फिथिएटर के आंतरिक भाग में स्थित हिमनद अधिक चर्चित नहीं हैं, परंतु कुछेक काफी बड़े हैं तथा पिण्डारी की अपेक्षा अधिक भव्य भी हैं। **मिलम हिमनद** जो कुमाऊं-गढ़वाल क्षेत्र का दूसरा सबसे बड़ा हिमनद है, 20 किमी. लंबा तथा अनुदैर्घ्य प्रकार का है। यह नौ सहायक हिमनदों के मिलने से बना है, और वस्तुतया गौरीगंगा नदी की पूरी घाटी को घेरे हुए है। इसके प्रोथ की ऊंचाई लगभग 3,390 मी. (1962) है। वर्षों से इसका दीर्घकालीन अपसरण 1.5 किमी. दूर स्थित मिलम गांव तक कई अंतस्थ हिमोढ़ के ढेरों से स्पष्ट होता है। अपसरण की कई अवधियां तथा अपेक्षाकृत शांत अंतराल का ज्ञान अंतस्थ हिमोढ़ों की क्रमिक भित्तियों की उपस्थिति से लक्षणित है। बुग्दियार के निकट स्थित अंतस्थ हिमोढ़ों से यह संकेत मिलता है कि संभवतया प्लायस्टोसीन काल में यह हिमनद मूलतया 32 किमी. तक विस्तारित होकर इस गांव तक था।

रिलम घाटी में स्थित **शन्कल्प हिमनद** दो सहायक हिमनदों काला बिलन्द (10 किमी.) और यांगशान (9 किमी.) के मिलने से निर्मित हुआ है, परंतु स्वयं हिमनद मात्र 4 किमी. लंबा है। इसका प्रोथ समुद्र तल से 4,300 मी. (1951) की ऊंचाई पर स्थित था। पालिशदार तथा रेखिल शैल सतहें निकटवर्ती खड़ी चट्टानों पर दृष्टिगत होती हैं। इस शताब्दी के प्रारंभ से ही संभवतया हिमनद ने शनैः शनैः अपसरण प्रारंभ कर दिया था।

गढ़वाल के कामेत-बद्रीनाथ क्षेत्र में सबसे बड़ा हिमनद **गंगोत्री** है, जो पवित्र गंगा का उद्गम स्थल भी है। वस्तुतया यह घाटी हिमनदों का एक तंत्र है, जिसका मुख्य भाग 30 किमी. लंबा है। इस अनुदैर्घ्य प्रकृति के हिमनद की हिम आपूर्ति पांच सहायक हिमनदों से होती है, जिनमें से दो सबसे बड़े (24 किमी. व 22 किमी.) लंबे हैं। इसका प्रोथ 3,880 मी. (1967) की ऊंचाई पर स्थित है, जो पिछले कुछ वर्षों में अपसरित हुआ है।

इसके उत्तर में **माना हिमनद** स्थित है, जो 18 किमी. लंबा है तथा 6,500 मी. की ऊंचाई से 4,700 मी. की ऊंचाई तक नीचे उतरता है। माना हिमनद अनुप्रस्थ प्रकार का हिमनद है। पिछले कुछ वर्षों में यह लगभग 600 मी. तक अपसरित हुआ

है, लेकिन संभवतया इसकी सक्रियता भूतकाल में काफी अधिक रही है क्योंकि माना हिमनद के दाईं ओर की ढलानें घिसकर चिकनी हो चुकी हैं तथा यहां पर समानांतर धारियों के अस्पष्ट चिह्न मिलते हैं।

अरवा नदी, बद्रीनाथ से लगभग 15 किमी. की दूरी पर सरस्वती नदी से मिलती है। इस क्षेत्र में कई हिमनद हैं, जिनमें सबसे बड़ा 18 किमी. लंबा **भागीरथ-खड़क** तथा दूसरा **सतोपंच हिमनद** 16 किमी. लंबा है। ये दोनों ही हिमनद एक-दूसरे से 600 मी. की दूरी पर समाप्त होते हैं। दोनों पिछले कुछ वर्षों में ही अपसरित हुए प्रतीत होते हैं, सतोपंच का अपसरण 30 वर्षों में 900 मी. हुआ। दोनों ही हिमनद अनुदैर्घ्य प्रकृति के हैं तथा छोटे सहायक हिमनदों से आपूर्तित हैं।

कामेत गिरिपिंड में भी कई हिमनद हैं जो धौलीगंगा नदी की छोटी सहायिकाओं द्वारा अपवाहित हैं। इनमें सबसे बड़ा अनुदैर्घ्य **रैकाने हिमनद**, 9 किमी. लंबा है, जो कामेत पर्वत शिखर से पूर्व की ओर से नीचे उतरता है। इसकी हिम आपूर्ति कामेत से उद्गमित दूसरे हिमनद से होती है। इसी समान छोटे छोटे हिमनद बद्रीनाथ के पश्चिम स्थित धौलाधार गिरि शृंखला के पूर्वी छोर की ढलानों को आच्छादित किए हुए हैं।

पीर पांजाल पर्वत शृंखला

पीर पांजाल पर्वत शृंखला के पूर्वी छोर स्थित हिमाचल प्रदेश के लाहौल स्पिती क्षेत्र में हिमनद इतने अधिक संख्या में नहीं हैं, जितने कि कुमाऊं-गढ़वाल क्षेत्र में हैं। सामान्य रूप से सबसे बड़े हिमनदों के प्रोथ यहां 3,600 मी. या 4,200 मी. की ऊंचाई पर समाप्त हो जाते हैं। यहां के अभिलेखित तीन हिमनद अनुप्रस्थ प्रकार के और मध्यम लंबाई के हैं। इनमें सबसे लंबा **सोनापानी हिमनद** चंद्राघाटी में स्थित है तथा 15 किमी. लंबा है तथा इसका प्रोथ 3,856 मी. (1957) की ऊंचाई पर स्थित हिम के एक खड़े कगार से नना है। यह रोहतांग दर्रे से लगभग 4,000 मी. नीचे दृष्टिगत होता है। दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्रवाहित इस हिमनद का एक रोचक लक्षण, हिम की खड़े कगार के ठीक नीचे स्थित एक विशाल झील द्रोणी है जो 2.5 किमी. लंबी तथा लगभग 1.5 किमी. चौड़ी है। यह एक प्राचीन अंतस्थ हिमोढ़ के हिमनद प्रवाह में अवरोध होने से बनी है, लेकिन पानी हिमोढ़ की रोक को पार करके प्रवाहित हो गया और पंक, महीन बालू, गुटिका तथा बजरी से परिपूर्ण अत्यधिक छिन्न-भिन्न मैदान छोड़ गया। झील से मुक्त होने के पश्चात सोनापानी स्रोत द्वारा तीन और हिमोढ़ काटे गए हैं।

अनुप्रस्थ **बारा शिगड़ी हिमनद** उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित होकर चन्द्रा नदी में मिलता है, तथा इसे भिन्न भिन्न लंबाइयों 10 किमी., 15 किमी. तथा 20 किमी. में अभिलेखित किया गया है। इसके प्रोथ की ऊंचाई 4,080 मी. (1957) है। यह हिमनद वर्तमान की अपेक्षा कहीं अधिक दूर तक विस्तारित था जैसा कि इसके अंतस्थ हिमोढ़ से प्रतीत होता है, वर्ष 1860-1893 की अवधि में अपने आगे बढ़ने की गति से इसने चन्द्रा

नदी को हिमोढ़ से भरकर एक झील के रूप में परिणत कर दिया था लेकिन तब से यह धीरे धीरे अपसरित हो रहा है। स्थानीय भाषा में अपने नाम के अनुरूप यह गोलाश्मों से आच्छादित है तथा इसका निचला भाग मलबे से इस प्रकार ढका है कि दूर दूर तक हिम दिखाई ही नहीं देता है।

एक तीसरा **गंगत्सुंग हिमनद** है जो मात्र 6 किमी. लंबा है तथा 4,350 मी. की ऊंचाई पर (1963) समाप्त होता है। हिमोढ़ तंत्र इसके कम-से-कम दो बार आगे बढ़ने के संकेत देता है, परंतु आज संपूर्ण हिमनद अपसरण तथा विरलन से प्रभावित है।

लाहौल क्षेत्र में और भी हिमनद हैं। गुंडला शिखर से उद्गमित हिमनद 9 किमी. या इससे अधिक लंबे हैं और क्षेत्र के दूसरे हिमनदों से ऊंचाई में कम हैं। दक्षिण कश्मीर में कोलाहोई शिखर के निकटवर्ती क्षेत्र में कुछेक छोटे हिमनद दृष्टिगत होते हैं। नुनकुन गिरिपिंड में सबसे बड़ा **गंगरी हिमनद** है जो 13 किमी. लंबा है। इसकी दो शाखाएं 5,200 मी. की ऊंचाई पर मिलती हैं और फिर अव्यवस्थित रूप में 1,500 मी. की ऊंचाई तक नीचे उतर आती हैं।

कश्मीर की पश्चिमी सीमा पर स्थित नंगा पर्वत गिरिपिंड के हिमनद तीव्र गति वाले हैं क्योंकि वे खड़े चट्टानी कगारों वाले क्षेत्र से उद्गमित हैं तथा वे जल्दी नीचे उतर आते हैं। अनेक हिमनद छोटे केवल 6-8 किमी. लंबे तथा कुछेक 10 किमी. या उससे अधिक लंबे हैं—यथा **बुंझी** जो नंगा पर्वत के पूर्व में और बहुशाखीय **ताशान** इसके दक्षिण में स्थित हैं। हिमरेखा 5,000 मी. की ऊंचाई पर स्थित है और कई हिमनद 4,000-4,500 मी. की ऊंचाई पर अपेक्षाकृत चपटी तलहटी की घाटियों में समाप्त हो जाते हैं, जबकि बड़े हिमनद 2,800 मी. की निम्नतम ऊंचाई तक नीचे उतर आते हैं (उदाहरणार्थ **चुंगफार हिमनद**)। सबसे लंबा हिमनद 20 किमी. से कुछ ऊपर ही है। 15 किमी. लंबा, उत्तर की ओर विन्यस्त **राखियोट हिमनद,** अपने बड़े हिमक्षेत्र सहित, 3,160 मी. (1954) की ऊंचाई पर समाप्त हो जाता है। इस क्षेत्र के अन्य हिमनदों के समान ही यह भी धीरे धीरे अपसरित हो रहा है।

कराकोरम पर्वतमाला के हिमनद

ध्रुवीय तथा उपध्रुवीय क्षेत्रों के बाहर कुछ सबसे बड़े हिमनद कराकोरम पर्वतमाला में दृष्टिगत हैं। ये दो प्रमुख समूहों में दृष्टिगत हैं—यथा पूर्वी अथवा बाल्तिस्तान-लद्दाख समूह, दूसरा पश्चिमी हुन्जा-नागर समूह। पूर्वी समूह के हिमनद मुख्यतया बार्लदोह, नुब्रा, सक्सगाम, श्योक, यार्कांड तथा लुंग्मा छह नदियों की घाटियों में ही सीमित हैं। इनमें कुछ प्रमुख— बियाको, बाल्टोरो, सियाचिन तथा रिमो आदि हिमनद हैं। पश्चिमी समूह में हिमनद अधिकांशतया हुन्जा और शिंगशाल नदियों तथा उनकी सहायक नदियों की घाटियों तक सीमित हैं। इनमें कुछ— हिसपार, बहुरा, कुर्दोपिन तथा विर्जेराब आदि प्रमुख हिमनद हैं। इन विशाल हिमनदों का वर्णन अगले पृष्ठों में किया गया है (मानचित्र-VI)।

बाल्दोह घाटी स्थित यह अनुदैर्घ्य प्रकार का **बियाफो हिमनद** 59 किमी. लंबा है तथा ध्रुवीय क्षेत्र के बाहर स्थित यह सबसे लंबा हिमनद है। इसका प्रोथ 3,160 मी. (1953) की ऊंचाई पर स्थित है और यह दक्षिण-पूर्व दिशा से 4,965 मी. की ऊंचाई से एक विशाल द्रोणी (हिम द्रोणी) जिसका क्षेत्रफल 65 वर्ग किमी. है, से नीचे उतरता है। यह द्रोणी केवल मुज्ताघ पर्वतमाला स्थित बियाफो की ही नहीं वरन हिस्पार, तथा अन्य हिमनदों की हिम की आपूर्ति करती है। हिमनद का शीर्ष लगभग 4 किमी. चौड़ा है, जो प्रोथ से लगभग 10 किमी. ऊपर तंग होकर केवल 1.6 किमी. ही रह जाता है। दक्षिण दिशा में इसकी लगभग 10 शाखाएं हैं जबकि उत्तर दिशा में केवल एक ही शाखा है। यह हिमनद समय समय पर अपसरित होता है तथा फिर आगे बढ़ता है।

पश्चिम की ओर प्रवाहित **बालटोरो हिमनद** भी इसी घाटी में स्थित है तथा अनुदैर्घ्य प्रकार का हिमनद है, अपनी 58 किमी. लंबाई के कारण (बतूरा सहित) यह विश्व का पांचवां सबसे लंबा हिमनद है, इसका प्रोथ 3,530 मी. (1958) की ऊंचाई पर स्थित है। अपनी संपूर्ण लंबाई में इस हिमनद के दोनों ही पार्श्वों मे अनेक छोटे छोटे सहायक हिमनद मिलते हैं। विशाल **गॉडविन ऑस्टिन हिमनद** के 2 शिखर को तीन ओर से आच्छादित करते हुए प्रोथ से 30 किमी. पूर्व इसमें मिलता है। इसके मुख्य शरीर तथा घाटी भित्तियों में कोई भी स्पष्ट अपक्षरण घाटी दिखाई नहीं देती है। इसका प्रोथ रुका हुआ या स्थायी प्रतीत होता है और उसमें आवर्ती संचलन के कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। हिम की मोटाई 120 मी. है।

बालदोह घाटी का तीसरा हिमनद, **पुनमा हिमनद** है, जिसका इसके ऊपरी भाग में अपना एक जटिल शाखा तंत्र है। यह एक संयुक्त हिमनद है जिसका मुख्य भाग अनुप्रस्थ है तथा सहायक हिमनद अनुदैर्घ्य प्रकार के हैं। इसका मुख्य भाग दक्षिण की ओर प्रवाहित 27 किमी. लंबा है तथा इसके अंत की अनुमानित ऊंचाई 3,625 मी. (1929) है। इस हिमनद की बहुत कम जानकारी ही उपलब्ध है।

नुब्रा घाटी को आच्छादित करते हुए अनुदैर्घ्य प्रकृति **सियाचिन हिमनद** 75 किमी. लंबा है। इसे ध्रुवीय और उपध्रुवीय क्षेत्रों के बाहर स्थित विश्व का सबसे बड़ा हिमनद ोने का गौरव प्राप्त है—इसके बाद द्वितीय स्थान पर उत्तर-पश्चिम पामीर स्थित **फेडशेन्को हिमनद** 74 किमी. लंबा है। यह 450 वर्ग किमी. क्षेत्र को आच्छादित करता है। कणहिम रेखा लगभग 5,500 मी.-6,000 मी. पर तथा इसका प्रोथ 3,705 मी. (1958) की ऊंचाई पर स्थित है। सियाचिन दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित होता है तथा यह माना जाता है कि यह हिमनद आगे बढ़ा है, हालांकि इसकी वास्तविक माप वांछित है। पहले 40 किमी. लंबाई तक कोई भी बड़ा सहायक हिमनद इसमें नहीं मिलता है। परंतु लगभग 10 किमी. पहले एक बड़े हिमनद का प्रोथ सियाचिन के मुख्य प्रोथ से 6.5 किमी. दूर पर दृष्टिगत होता है। पश्चिम की ओर लोलोफंद तथा पूर्व की ओर स्थित **तिरम शहर** (24 किमी. लंबा) सियाचिन के दो अन्य सहायक हिमनद हैं जो इसकी

समाप्ति के 40 किमी. पहले इसमें मिलते हैं। इसके बाद शीर्ष गाशेरब्रम शिखर से दक्षिण-पश्चिम दिशा में निकली हुई पर्वतमाला के कारण दो भागों में विभाजित हो गया है। किसी काल में सियाचिन पूरी नूब्रा घाटी को श्योक संधि तक आच्छादित किए हुए था, ऐसा घाटी में सब ओर से दृष्टिगत चिकनी तथा धारीदार चिह्नों वाली शैलों की उपस्थिति से प्रमाणित होता है। मुख्य हिमनद के अपसरित होने के कारण अपसरित होते सहायक हिमनदों की शाखाएं नूब्रा घाटी में लटककर रह गई हैं और तब से वे और भी अपसरित हो गए हैं और उनके हिमोढ़ों से लदे जल ने संकरे पार्श्विक कगार काट दिए हैं।

इस घाटी में स्थित अनुदैर्घ्य **मामोत्सांग हिमनद** जो दक्षिण की ओर दृष्टिगत होता है 16 किमी. लंबा है तथा इसका प्रोथ 4,435 मी. (1958) की ऊंचाई पर स्थित है। कई अनुप्रस्थ हिमस्रोत मुख्य स्रोत से मिलते हैं। इसके प्रोथ का संचलन बहुत कम है और कोई भी हिमोढ़ इसमें दृष्टिगत नहीं है। इस समूह में कई और भी हिमनद हैं जिनमें से एक 10 किमी. लंबा है। इस क्षेत्र में अपवर्तित घाटियां सामान्य हैं। मामोत्सांग के ठीक उत्तर का क्षेत्र एक विशाल हिम सरोवर, जो कि बियाफो हिमनद के शीर्ष स्थित सरोवर के समान, परंतु आकार में उससे कम है, से आच्छादित है।

श्योक घाटी में मुख्य **रिमो हिमनद** की दो शाखाएं स्थित हैं, दोनों ही शाखाएं अनुदैर्घ्य प्रकृति की हैं, तथा तीसरी शाखा **यारकंद रिमो,** पल्याण (सैडल) तथा मिश्रित प्रकार की है। मुख्य या मध्य रिमो की लंबाई 40 किमी. है, तथा दक्षिणी हिमनद 24 किमी. लंबाई का है। दोनों ही पूर्व की ओर प्रवाहित हैं। ये दोनों हिमनद एक-दूसरे से समकोण पर उभयनिष्ठ प्रोथ से लगभग तीन किमी. ऊपर मिलते हैं। यह प्रोथ लगभग 5,000 मी. (1935) की ऊंचाई पर स्थित है तथा अपनी लगभग 3 किमी. की चौड़ाई के कारण घाटी को एक किनारे से दूसरे किनारे तक आच्छादित किए हुए है। इसकी संधि रेखा मध्यम हिमोढ़ के कारण बिल्कुल स्पष्ट है, जबकि प्रोथ के पूर्व की ओर एक विशाल अंतस्थ हिमोढ़ दृष्टिगत होता है जो हिमनद की मंथर गति से चिरकालीन अपसरण की ओर इंगित करता है। उभयनिष्ठ प्रोथ से ठीक 15 किमी. की दूरी पर इसमें उत्तरी शाखा मिलती है, वह है 20 किमी. लंबा **यारकंद रिमो**—क्योंकि यह इस नदी के शीर्ष पर 5,212 मी. की ऊंचाई पर स्थित है इसलिए इसे यह नाम दिया गया है।

श्योक घाटी के अन्य हिमनदों में से **चांग कुमदन, किशिक कुमदन** तथा **आक्ताश** का वर्णन किया जा सकता है। ये सभी अनुप्रस्थ प्रकार के हैं। ये क्रमशः 21 किमी., 11 किमी तथा तथा 8 किमी. लंबे हैं और इनके प्रोथ क्रमशः 4,715 मी., 4,635 मी. तथा 4,575 मी. (1958) की ऊंचाई पर स्थित हैं। इनके संचलन सर्वाधिक हैं। श्योक घाटी में 1924 में चांग कुमदन हिमनद के पीछे एक विशिष्ट झील बन गई थी, यह लगभग 65 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तारित थी तथा इसकी अधिकतम गहराई 122 मी. तक थी, बाद में हिम बांध के टूट जाने से घाटी में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

वर्तमान में शक्सगाम घाटी (जो कभी एक विशाल हिमनद के कारण भर गई थी) में स्थित कई हिमनदों में से दो **गाशेरब्रम** और **क्यागार** हिमनद 21 कि. मी. लंबे तथा अनुप्रस्थ प्रकार के हैं; जो उत्तर की ओर प्रवाहित हैं। पहले हिमनद का प्रोथ लगभग 4,345 मी. की ऊंचाई पर, जबकि दूसरे का और अधिक ऊंचाई, 4,775 मी. (1935) पर स्थित है। **उरडोक हिमनद,** जो दोनों ही से नीचे है, लगभग 23 किमी. लंबा है तथा इसका प्रोथ गाशेरब्रम (1935) की ही ऊंचाई पर स्थित है। ये सारे हिमनद अपने शीर्ष पर कई शाखाओं में विभाजित हो गए हैं। इनके किनारों पर भली-भांति स्पष्ट रूप से पार्श्विक हिमोढ़ दृष्टिगत होते हैं तथा क्यागार हिमनद में अंतःहिमनदीय हिमोढ़ को हिम की एक परत आच्छादित किए हुए है।

अनुदैर्घ्य द्रोणी प्रकार का **हिस्पार हिमनद,** जो हुन्जा नदी की एक सहायक नदी का स्थान घेरे हुए है, 62 किमी. लंबा है और ध्रुवीय क्षेत्रों के बाहर का तीसरा सबसे लंबा हिमनद है। फिर भी हिस्पार व **बियाफो हिमनद** मिलकर 122 किमी. का सबसे लंबा हिम मार्ग बनाते हैं। हिस्पार पश्चिम की ओर प्रवाहित है तथा लगभग 2,125 मी. नीचे हल्के तथा सामान्य प्रवणता से होता हुआ, अपने प्रोथ से जो 3,000 मी. (1930) की ऊंचाई पर स्थित है, से मिलता है। इसके शीर्ष स्थित द्रोणी 5 किमी. चौड़ी है जो हिस्पार दर्रे से होती हुई बियाफो हिमनद से मिलती है। यह विस्तृत द्रोणी एक हिम सरोवर, कणहिम का एक विशाल संग्रह है जो संभवतया खुर्दोपिन तथा विर्जेराब हिमनदों की हिम की आपूर्ति करता है। हिस्पार के उत्तर की ओर एक सुस्पष्ट अपक्षरण घाटी स्थित है। अनेक अनुप्रस्थ सहायक हिमनद मुज्ताघ—कराकोरम पर्वतमाला की हिमरेखा से नीचे स्थित झिरी में गिरते हैं। उत्तरी सहायक हिमनद के सुदूर पश्चिम भाग में स्थित **कुन्यांग या लाक हिमनद** की लंबाई 24 किमी. है। दक्षिण की ओर स्थित सहायक हिमनद काफी छोटे हैं। अपने अभिलेखित इतिहास में, छुट-पुट परिवर्तनों कों छोड़कर सामान्यतया यह हिमनद स्थिर ही रहा है।

पश्चिम कराकोरम के दक्षिण तथा सिंधु नदी के उत्तर के बीच में स्थित राकापोशी—हारामोश क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण हिमनद हैं। इनमें से सबसे लंबा अनुदैर्घ्य हिमनद 50 किमी. लंबा **छोगो लुंग्मा हिमनद** राकापोशी पर्वतमाला में स्थित है। यह ध्रुवीय क्षेत्र के बाहर स्थित छठा सबसे बड़ा हिमनद है। पूर्व की ओर प्रवाहित यह शीगर नदी की सहायक नदी बारशा की जलापूर्ति का स्रोत है। छोगो लुंग्मा हिमनद 2,075 मी. (1954) की ऊंचाई पर समाप्त होता है, जो हिमालय में सबसे कम अभिलेखित ऊंचाई है। यह तीन खंडों में विभाजित किया जा सकता है—निम्न या निचला भाग प्रोथ से प्रथम मोड़ 15 किमी. तक की पूरी सतह मलबे से भरी हुई है, भली प्रकार विकसित पार्श्वीय तथा मध्य हिमोढ़ एवं एक अल्प विकसित अंतस्थ हिमोढ़ तथा प्रचुर दरार युक्त मध्य भाग 22 किमी. दूर तक चलकर एक द्रोणी से मिलता है जिसमें पांच बड़े सहायक हिमनद भी मिलते हैं। इसका ऊपरी भाग 13 किमी. लंबा एक खंड

है। वह भी अत्यधिक विदरित तथा हिम-स्खलनों (एवेलांश) से प्रभावित है। हिमनद में कई बार अग्रगति तथा अपसरण हुए हैं परंतु यह कभी भी अराण्डू ग्राम के आगे नहीं बढ़ा है।

विस्तृत हिस्पार के पश्चिम में राकापोशी पर्वतमाला में ही हुन्जा नदी के दक्षिण में कई छोटे छोटे हिमनद हैं। ये सभी उत्तर की ओर प्रवाहित तथा अनुप्रस्थ प्रकार के हिमनद हैं। **येन्गुस्ता (येन्गुत्स) हिमनद** दो शाखाओं से मिलकर बना है, जो लगभग 11 किमी. लंबा है और इसमें एक ही प्रोथ है जो लगभग 3,250 मी. (1939) की ऊंचाई पर स्थित है। यह हिमनद 1902-1903 के मध्य 3 किमी. आगे बढ़ा है। **होपर हिमनद** का प्रोथ 2,300 मी. (1925) की ऊंचाई पर स्थित है तथा इसकी 21 किमी. की लंबाई में कई सहायक हिमनद इसमें मिलते हैं जिनमें से **बारपू हिमनद** प्रमुख है। **सुमायर हिमनद** अपेक्षाकृत बहुत छोटा है जिसके आयाम ज्ञात नहीं हैं। **मिनापिंन हिमनद** राकापोशी पर्वतमाला के उत्तर-पूर्वी पार्श्व के कणहिम क्षेत्र से उद्गमित होकर हुन्जा नदी में गिरता है। इसकी लंबाई 16 किमी. है। इसका प्रोथ 2,200 मी. (1961) की ऊंचाई पर स्थित है तथा इसके निकट एक हिम प्रपात भी स्थित है; यह आवर्तित रूप में आगे बढ़ता है व अपसरण करके अपने पीछे हिमनदित सतहें तथा हिमोढ़ छोड़ जाता ह। अनुप्रस्थ **हसनाबाद हिमनद** 20 किमी. लंबा है। यह हुन्जा नदी के दक्षिण में स्थित तथा दक्षिण की ओर प्रवाहित है। यह दो शाखाओं से मिलकर बना है। इसका प्रोथ एक ही है जो 2,225 मी. (1954) की ऊंचाई पर स्थित है। इसके बारे में प्रसिद्ध है कि विश्व के समस्त हिमनदों में से इसमें सर्वाधिक उतार-चढ़ाव आए हैं। वर्ष 1954 तक हसनाबाद हिमनद विलुप्त हो गया और सहायक हिमनदों—**मुत्सहुल** और **चिसपार हिमनदों** में अपसरण के पश्चात विभाजित हो गया है। इसके पूर्व वृत्तांत में इसकी अग्रगामी गति का ही पता चलता है। इन कुछेक हिमनदों का अत्यधिक नीचे स्थित होना एक हिममय सर्क से भारी हिमस्खलन निचली हिमरेखा और इसके निचले भाग स्थित घाटियों के संकरेपन के कारण है।

हामरोश पर्वतमाला में 10 किमी. लंबा **मानी हिमनद** तथा 12 किमी. लंबा **कुत्तिया हिमनद** स्थित हैं। मानी अनुदैर्घ्य प्रकार का पर्वतमाला के उत्तर में स्थित हिमनद है। पिछले कुछ दशकों में पहले तो इसमें अग्रगामी गति तथा बाद में अपसरण अभिलेखित किया गया है। कुत्तिया हिमनद का जन्म मार्च, 1953 में हुआ जब इसी नाम की घाटी के शीर्ष स्थित तीन हिमनदों ने अग्रगामी होने के बाद अचानक मिलकर एक हिमनद बना लिया। इसने घाटी में अग्रगामी गति बनाए रखी तथा मई के अंत तक यह स्टाक घाटी में पहुंच गया जिसकी कुत्तिया एक सहायक घाटी है। यह अग्रगामी गति संभवतया विशाल हिम-स्खलन के कारण हो सकती है।

एक और वर्णन करने योग्य अनुदैर्घ्य प्रकार का हिमनद पश्चिमी समूह स्थित **बतूरा हिमनद** है जो सीधे ही हुन्जा नदी में गिरता है। यह 58 किमी. लंबा है तथा तीन

भागों में 3,000 मी. नीचे गिरता है, और 2,460 मी. (1925) की ऊंचाई पर स्थित अपने प्रोथ तक आया है। यह दो प्रमुख स्रोतों से मिलकर बना है जो प्रोथ से लगभग 35 किमी. ऊपर आपस में मिलते हैं। संभवतया उपध्रुवीय क्षेत्र के बाहर यह बालटोरों के साथ मिलकर विश्व का पांचवां सबसे बड़ा हिमनद है। इसका दक्षिणी या लंबा भाग कणहिमों के तीन स्रोतों से मिलकर बना है। हिमनद के दाहिने किनारे पर 6,000 मी. ऊंची एक विशाल पर्वतमाला लगभग 32 किमी. तक एक विशाल दीवार की तरह स्थित है। इस पर्वत भित्ति में बाहर प्रक्षेपित कटक अथवा वप्र (बंट्रेस) हैं, जिनके मध्य में विभिन्न आकारों के लगभग 20 हिमनद हैं जो सुदूर हिमप्रपात बनकर विशाल बतूरा हिमनद में मिल जाते हैं। इसके बाईं ओर की पर्वतमालाएं इतनी मुख्य नहीं हैं तथा केवल चार नगण्य सहायक हिमनद इसकी हिम आपूर्ति करते हैं। एक लंबी अपक्षरण घाटी बाईं ओर से दोनों शाखाओं के संधिस्थल तक विस्तारित है जो 35 किमी. दूर स्थित प्रोथ तक फैली है।

हुन्जा नदी में अपवाहित होने वाले दो और हिमनद हैं, **पासू** तथा **ससैनी** (या **गुलकिन**) हिमनद। दोनों ही अनुदैर्घ्य प्रकार के हिमनद हैं। पासू की लंबाई 25 किमी. तथा ससैनी की लगभग 18 किमी. है। दोनों के प्रोथ की ऊंचाई क्रमशः 2,550 मी. तथा 2,440 मी. (1925) है। दोनों ही भिन्न चरणों में गिरते हैं। ये दोनों बहुत ही कम काल का संचलन प्रदर्शित करते हैं तथा पार्श्वीय हिमोढ़ की मात्रा भी बहुत कम है।

अनुदैर्घ्य तथा अनुप्रस्थ श्रेणियों का मिलाजुला 47 किमी. लंबा शिंगशाल घाटी स्थित **खुंर्दोपला हिमनद** 3,230 मी. (1925) की ऊंचाई पर स्थित अपने प्रोथ तक पहुंचने के लिए 2,750 मी. नीचे उतरा है। इसकी हिम आपूर्ति संभवतया एक विशाल हिम सरोवर द्वारा ही की जा रही है जो बियाफो हिमनद की भी आपूर्तिकर्ता है। यह एक जटिल संयुक्त हिमनद है जिसमें दो बड़ी शीर्ष द्रोणियां तथा कई सहायक हिमनद हैं। इसमें दो मध्य हिमोढ़ तथा उत्तरी किनारे के साथ साथ एक अपक्षरण घाटी है जो छोटे छोटे सुंदर सरोवरों से भरी है। यह हिमनद ही शिंगशाल घाटी में समय समय पर आने वाली बाढ़ के लिए उत्तरदायी है। वर्षों में प्रोथ बहुत ही कम परिवर्तित हुआ है।

इसी घाटी में स्थित तथा उपरोक्त हिमनद के उत्तर में स्थित **विर्जेराब हिमनद** एक अनुप्रस्थ प्रकार का हिमनद है। यह 40 किमी. लंबा तथा 3,450 मी. (1925) पर स्थित प्रोथ तक आने के लिए 1,463 मी. नीचे उतरता है। यह हिमनद इस कारण असाधारण है कि इसका कोई भा भाग स्थायी हिमरेखा से ऊपर नहीं है, इसलिए इसका अपना कोई कणहिम क्षेत्र नहीं है और यह पूर्णतया हिमस्खलन द्वारा ही आपूर्तित है। यह सोचना जरा कठिन है कि यह हिमनद इन परिस्थितियों में किस प्रकार अपनी इस विशाल लंबाई को बनाए हुए है। यह हिमनद लंबाई तथा आयतन में सिकुड़ रहा है और अंतिम 16 किमी. का भाग लगभग मरणासन्न स्थिति में है जो एक निश्चित दीर्घकालीन अपसरण की ओर इंगित करता है। दोनों हिमनद खुर्दोपिन तथा विर्जेराब उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित हैं।

शिंगशाल घाटी को अप्रवाहित करने वाले कई और हिमनद भी हैं। ये सभी हिमनद अनुप्रस्थ प्रकार के हैं। उत्तर की ओर प्रवाहित **याज्गील हिमनद** 31 किमी. लंबा है तथा इसमें कई ऊपरी शाखाएं हैं। इसका प्रोथ 3,190 मी. (1925) की ऊंचाई पर स्थित है तथा इसकी नीचे की ओर गिरावट बहुत ही सामान्य है परंतु दो हिम प्रपातों के कारण बाधित है। अपक्षरण घाटियां मुख्य घाटी के किनारे किनारे दोनों ओर विस्तरित होती हैं। हिमनद आगे बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। लगभग इसी लंबाई (32 किमी.) का एक और हिमनद **मोम्बिल याज** भी इसी घाटी में है, जिसका प्रोथ 2,900 मी. (1925) पर है। **मालानगुट्टी याज हिमनद**, जो 23 किमी. लंबा है, हिमनद के नदी में प्रक्षेपित होने का एक प्रारूपिक उदाहरण है। इसका प्रोथ 2,950 मी. (1925) की ऊंचाई पर स्थित है और पिछले वर्षों में यह लगभग स्थिर ही रहा है। इस घाटी के अन्य दो **हिमनद घुटालजी याज** तथा **लुपथार याज**, लगभग 13 किमी. लंबे हैं, तथा इनके प्रोथ क्रमशः 3,350 मी. और 3,050 मी. (1925) पर स्थित हैं। शिंगशाल घाटी के समस्त हिमनद काफी कम ऊंचाई—2,950 मी. से 3,350 मी. पर समाप्त होते हैं और सभी का प्रवाह उत्तर दिशा की ओर है।

उत्तरी कश्मीर के खुंजेराब-गुजेराब क्षेत्र में 4 हिमनद हैं, ये सभी अनुप्रस्थ प्रकार के हैं तथा जो अभिलेखित किए गए हैं वे हैं—**पारपिक हिमनद** (14 किमी. लंबा), **कुकसेल हिमनद** (7 किमी. की लंबा), **उत्तरी मैदुर** (10 किमी. लंबा), तथा **दक्षिणी मैदुर** (3 किमी. लंबा)। इनके प्रोथ क्रमशः 4,360 मी., 4,570 मी., 4,550 मी. तथा 4,270 मी. की ऊंचाई (1925) पर स्थित हैं। सभी की ऊंचाई 4,000 मी. से अधिक है। इन सभी की प्रवणता सीधी खड़ी है तथा हिमोढ़ मलबा बहुत ही कम है। अपक्षरण घाटियां हैं परंतु वे सुस्पष्ट नहीं हैं। पारपिक अपने खड़े मुहाने के साथ 1925 में आगे बढ़ रहा था।

हिंदूकुश क्षेत्र

हिंदूकुश पर्वतमाला के मानचित्र में अनेक हिमनद दर्शाए गए हैं परंतु हिमनद अवलोकन के विवरण बहुत कम हैं। हालांकि कई पर्वतारोहण अभियानों ने इन पर्वतों पर चढ़ाई की है परंतु उन्होंने शायद ही हिमनद विज्ञान संबंधी आंकड़े एकत्र किए हैं। हिंदूकुश क्षेत्र में हिमरेखा पर्वतमाला के विभिन्न भागों में परिवर्तनशील है। पश्चिमी हिंदूकुश में हिमरेखा माध्य समुद्र तल से 4,000-4,500 मी. ऊपर है। कुह-इ-बाबा के सर्वोच्च शिखर के उत्तर की ओर हिमरेखा 4,900 मी.-5,100 मी. तक ऊपर उठी है। काफिरिस्तान (नूरिस्तान) के दक्षिणी छोर पर यह हिमरेखा 4,500 मी. तथा उत्तर की ओर 4,800 मी. पर है। चित्राल के दक्षिण में यह हिमरेखा पिछली शताब्दी के अंत तक 4,800 मी. पर थी। स्वात घाटी के पूर्व में हिमरेखा नीचे अर्थात 4,300 मी. पर थी। हिंदूकुश पर्वतमाला के एक भाग हिंदूराज में हिमनद विवर्ध 3,500-3,600 मी. की ऊंचाई पर था जो कराकोरम से जहां पर तापक्रम ऊंचा तथा वर्षा कम थी, से ऊंचाई में

कहीं कम था। चित्राल क्षेत्र के समस्त हिमनद अपसरण की एक सामान्य प्रकृति को दर्शाते हैं। चित्राल की खड़ी ढलानों वाले पर्वतशिखरों पर बर्फ व हिम का जमाव कम है। कुछ अन्वेषकों ने पाया कि रोशगुल घाटी, जो हिंदूकुश से चित्राल में प्रवेश करती है इस शताब्दी के तीसरे दशक तक हिमनद द्वारा अवरुद्ध थी।

ऑक्सस और यारखुन नदियों से घिरी हुई पर्वतमालाओं में अनेक हिमनदों को मानचित्र में प्रदर्शित किया गया है। उनमें से सुदूर उत्तर की ओर स्थित **दारा-इ-क्वाला-इ-पनजी** एक 11 किमी. लंबा हिमनद है जो राहजोम शिखर (6,535 मी.) के उत्तर की ओर स्थित है। इसके निकट स्थित **अनोशाह हिमनद** संभवतया 20 किमी. लंबा है और यह भी अनुप्रस्थ रूप में उत्तर की ओर प्रवाहित है। आखिरत्साध शिखर (7,015 मी.) के निकट स्थित **कोटागाज हिमनद** है जो 11 किमी. लंबा तथा पूर्व की ओर प्रवाहित है तथा इसके शीर्ष पर विशाल हिमक्षेत्र स्थित है; यह 3,200 मी. (1939) की ऊंचाई पर स्थित है। हिमोढ़ों का 4,240 मी. की ऊंचाई पर प्राप्त होना यह इंगित करता है कि यह हिमनद आगे बढ़ रहा है।

सुदूर दक्षिण स्थित बड़े हिमनद सामान्यतया बहुशाखीय हैं तथा हमेशा यह संभव नहीं है कि मानचित्र में यह दर्शाया जाए कि वे अनुदैर्घ्य हैं या अनुप्रस्थ। लंगर शिखर (7,061 मी.) पर स्थित **हुशको** (या हुरुश्को कुह) हिमनद 13 किमी. लंबा है। यह 5,489 मी. से नीचे उतरता हुआ लगभग 3,500 मी. (1930) की ऊंचाई पर समाप्त होता है। यह हिमनद अपसरित हो रहा है तथा हिमोढ़ इसको लगभग 4,620 मी. की ऊंचाई तक आच्छादित किए हुए हैं। **निरोगी** (या **न्यूरोवेघ**) हिमनद मात्र 12 किमी. लंबा है तथा उत्तर-पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित है। **रोशगोल हिमनद** दक्षिण की ओर प्रवाहित एक 13 किमी. लंबा हिमनद है। यह लगभग 5,500 मी. की ऊंचाई से उद्गमित है तथा अनेक सहायक हिमनदों से आपूर्तित है। इसकी सतह आंशिक रूप से लगभग 5,030 मी. तक हिमोढ़ों से आच्छादित है। इसका विवर्ध निष्क्रिय है तथा इसमें कई छोटे छोटे सरोवर हैं।

इस क्षेत्र के सबसे बड़े हिमनद में से **एक अतराक हिमनद** है जो कुह-ए-मंदारास शिखर (6,631 मी.) की ऊंचाई से पहले 28 किमी. तक पूर्व दिशा में फिर दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रवाहित होता है। दो बड़े सहायक हिमनद, उत्तरी अतराक (उद्रेन) तथा दक्षिण अतराक मुख्य स्रोत में मिलते हैं।

ऊपरी तिरिच तथा **निम्न तिरिच हिमनद,** तिरिच मीर शिखर (7,706 मी.) से उद्गमित होते हैं जो हिंदूकुश पर्वतमाला का सर्वोच्च शिखर है। ये दोनों हिमनद उत्तरी ढलान से नीचे प्रवाहित होते हुए आपस में मिलकर पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होते हैं। इस हिमनद तंत्र की कुल लंबाई 20 किमी. है। 1935 में किए गए प्रेक्षणों के आधार पर यह हिमनद अपसरित हो रहा था। हिमोढ़ों ने दोनों हिमनदों की सतहों को ढका हुआ है। तिरिच मीर की दक्षिण ओर से आपूर्तित **उत्तरी बारूम** तथा **दक्षिणी बारूम (बार्म)**

हिमनद एक अनाम नदी के शीर्ष पर आपस में मिलते हैं।

ऊपरी व **निम्न गाजिकिस्तान हिमनद**, अरकारी घाटी में तिरिच मीर तंत्र के उत्तर-पश्चिमी भाग का निर्माण करते हैं तथा अपसरण के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। **छाउर हिमनद** मुनजन क्षेत्र के हिमनदों में से एक है। यह 10 किमी. लंबा है और इसका प्रोथ 4,500 मी. (1962) की ऊंचाई पर स्थित है।

कुह-ए-ख्राजे मोहम्मद पर्वतमाला जो उत्तर-मध्य हिंदूकुश में स्थित है, के वायवीय छायाचित्र से हिमनदन के काफी प्रमाण प्राप्त होते हैं। म्यूनिख विज्ञान संस्थान द्वारा 1963 में आयोजित एक अभियान द्वारा ज्ञात हुआ है कि यह हिमनद 4,150 मी. और 4,500 मी. की ऊंचाई के बीच समाप्त होता है। इस पर्वतमाला का सबसे बड़ा **राखुग हिमनद** 10 किमी. लंबा है। इस समूह के अन्य हिमनदों के विषय में अधिक जानकारी नहीं है।

हिंदूकुश पर्वतमाला के संभवतया सबसे बड़े हिमनद पूर्वी हिंदूराज पर्वतमाला में स्थित हैं। **चिग्नन्तर हिमनद**, दारकोट दर्रे के उत्तर-पूर्व स्थित एक ऊंचे पर्वत शिखर से पश्चिम की ओर 32 किमी. तक प्रवाहित होने के बाद 3,658 मी. (1959) की ऊंचाई पर समाप्त होता है। इसकी सतह को हिमोढ़ 4,600 मी. की ऊंचाई तक आच्छादित किए हुए हैं। हिमनद के कई सहायक हिमनद भी हैं। इनमें से सबसे लंबा 9 किमी. लंबा है। इसी क्षेत्र में और भी कई हिमनद हैं, जिनमें **छटीबाय** प्रमुख है—इसकी विवर्ध शाखाएं उत्तर में करूम्बार घाटी तक विस्तारित हैं और यह हिमनद पूर्व बाढ़ों के लिए उत्तरदायी है।

चित्र-गिलगित क्षेत्र में कई छोटे हिमनद हैं, जिनमें से कई 5,000 मी. ऊँचे शिखरों पर हैं। इनके बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

अतीत हिमनदन

प्रीकैम्ब्रियन हिमनदन

सबसे पहला अभिलेखित हिमनदन टिलाइट के रूप में प्रोटोरोजोइक-बिजावर समूह के ऊपरी भाग में देखा गया। यह मध्यप्रदेश के छतरपुर जनपद स्थित गंगऊ बांध के नीचे केन नदी के किनारों पर अनावृत है। एक मीटर से लेकर बालूकण माप के कोणीय और उपकोणीय शैल गोलाश्मों एवं उनके टुकड़े संरचनारहित, फेरूजिनस मृण्मय समूह में बेतरतीब ढंग से छितरे हुए दृष्टिगत होते हैं। अधिकांश गोलाश्म फलकदार (फेसेटेड) हैं तथा कुछेक की सतह पर धारियां (स्ट्रेशंस) भी हैं।

सोन घाटी के मिर्जापुर-सीधी क्षेत्र में एक और प्रीकैम्ब्रियन टिलाइट देखी गई है। इस संस्तर में मृण्यम आधार में रेखित तथा टूटे हुए गोलाश्म दृष्टिगत होते हैं। कुछेक संबद्ध संस्तर में अनुवर्षस्तरी (वार्व्स) के समान प्रतीत होते हैं।

गोंडवाना हिमनदन

भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लेशियोजीन संस्तरों की सर्वप्रथम पुष्टि महाराष्ट्र के चंद्रपुर जनपद में पेनगंगा नद्री के किनारे, वर्धा नदी में उसके संगम से मात्र एक किलोमीटर ऊपर तालचीर दृश्यांशों में हुई है। इस चबूतरा समान संरचना में काफी बड़ी सतह—चिकनी (पालिश्ड), खरोंची हुई (स्क्रेच्ड) तथा खांचेदार (ग्रूव्ड) है। तालचीर समूह की तली का शैल समूह एक गोलाश्म संस्तर है जिसका हिमनदीय उद्गम प्रमाणित नहीं है। तालचीर टिलाइट लवण शृंखला में भी स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। समान टिलाइट उपलब्ध होने के कारण कश्मीर हजारा के तनाकी गोलाश्म संस्तर, गढ़वाल की मंधाली शैलसमूह, तथा हिमाचल प्रदेश के शिमला के ब्लेनी शैलसमूह में तालचीर के समकालीन हैं। कश्मीर की एग्लोमेरेटिक स्लेट संरचना के आधार भाग में गोलाश्म संस्तर भी हिमनदीय उद्गम के माने जाते हैं। इस समान स्तरिकी स्थिति के गोलाश्म संस्तर सारे हिमालय तथा किश्तवाड़ से लेकर लद्दाख, और नेपाल तथा भूटान तक देखे गए हैं। इन गोलाश्म संस्तरों के इस विस्तृत भौगोलिक वितरण से यह स्पष्ट होता है कि हिमनद जो इनके निक्षेपण के प्रति उत्तरदायी थे महाद्वीपीय प्रकार के हिमनद थे।

प्लायो-प्लायस्टोसीन हिमनदन

प्लायो-प्लायस्टोसीन काल में विस्तृत हिमनदन उस समय हुआ जब चार हिमनदीय अग्रगामिताएं प्रारंभ हुईं। हिमनदन के पहले चरण में टटरोट समूह (ऊपरी शिवालिक का आधार, ऊपरी प्लायोसीन) का निक्षेपण प्रारंभ हुआ। इसके बाद क्रमशः सोर्ना हिमनदन, पोटवार हिमनदन तथा अंत का सबसे कमजोर चरण—पोटवार क्षेत्र में ही (वेदिका 4) था। पहले तीन चरणों का प्रतिनिधित्व संबंधित समूहों में उपस्थित गोलाश्म संस्तर करते हैं।

तीन भली-भांति सुस्पष्ट अंतस्थ हिमोढ़ जो पश्चिमी हिमालय स्थित अनुदैर्घ्य हिमनदों के भाग हैं तीन तदनुरूपी हिमनदीय अग्रगामिता को इंगित करते हैं। दो सर्क स्तर, तीन घाटी तल स्तर, अंतस्थ हमोढ़ के ऊपर स्थित घाटी मुख की कमी आदि तथा ऊपरी स्तर की सर्कों से हिमनदों का नीचे उतरना आदि प्रमुख विशेषताएं हैं। एन. अहमद ने इन तीन हिमनदीय अग्रगामिताओं का निम्न रूप में नामांकन किया है :

हिमनदीय अग्रगामिता	चरण	ऊंचाई (मध्य सागर तल से)
तृतीय अग्रगामिता	शेषनाग-मिलम चरण	3,650 मी.
द्वितीय अग्रगामिता	अरू-मारतोली चरण	3,050 मी.
प्रथम अग्रगामिता	पहलगाम चरण	2,750 मी.

पोटवार मैदान में विभिन्न आयामों के विशाल शैलपिंड धंसे हुए पाए गए हैं, जिनमें से कुछ 12 मी. साइज के भी हैं। कभी कभी यह विस्थापित पिंड सिक्ट को

आच्छादित किए हुए बजरी संस्तर में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते हैं। यह नाइसीय शैलों के खंड तथा गोलाश्म हजारा तथा वश्मीर की पहाड़ियों में दृष्टिगत होते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये सब हिमनदीय-हिम द्वारा प्रवाहित करके पोटवार में एकत्र किए गए, जो उस समय एक विशाल सरोवर था, जिसका एक निकास संभवतया कालाबाग के निकट था। इसकी एक विशिष्टता यह है कि यह विशाल शिलाखंड व गोलाश्म निश्चित रेखाओं के अनुरूप संरेखित हैं, जो इन हिमनदों के प्रवाह मार्गों का परिचायक है।

4
सिंधु-गंगा का मैदान

भूमिका

उपमहाद्वीप का तीसरा प्राकृतिक विभाजन सिंधु-गंगा का मैदान है, जो हिमालय क्षेत्र को प्रायद्वीपीय क्षेत्र से अलग करता है और जो असंपीडित अवसादों के विशाल विस्तार से आच्छादित है। ये बहुत दिनों तक भूवैज्ञानिकों की दृष्टि से उपेक्षित रहे; क्योंकि भूवैज्ञानिकों का सारा ध्यान ठोस शैलों पर ही केंद्रित रहा था। हाल ही के कुछ वर्षों में चतुर्थ कल्पी निक्षेपों की इस मोटी परत,जो मैदानों का निर्माण करती है,उसकी किस्म तथा उसके नीचे स्थित आधारतल से उसका संबंध, उनकी विवर्तनिकी आदि की विस्तृत जानकारी के लिए इस क्षेत्र में हाइड्रोकार्बन के पूर्वेक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वहां, गभीर भेदन तथा आधुनिक भूभौतिकी तकनीकों का उपयोग किया गया। थार मरुस्थल के बालुकामय विस्तार ने भी हाल ही के कुछ वर्षों में काफी ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि मरुस्थल के आगे बढ़ने की विनाशकारी प्रवृत्ति को रोकने के लिए तथा लाभदायक आर्थिक सक्रियता की वृद्धि हेतु उसके कुछ भागों का भूमि उद्धरण करना आवश्यक है।

सिंधु-गंगा का मैदान न केवल सिंधु तथा गंगा सरिता तंत्रों की विशाल घाटियों को आच्छादित करते हैं वरन ब्रह्मपुत्र के मैदान को भी अपने में समाहित करते हैं। इसमें राजस्थान का मरुस्थल तथा सिंध का भाग भी सम्मिलित है। इन विशाल मैदानों का क्षेत्रफल 7,77,000 वर्ग किमी. से भी अधिक है। ये मैदान उत्तर-पूर्वी भारत की ब्रह्मपुत्र घाटी से लेकर बांग्लादेश तथा पश्चिम बंगाल के भागों, उत्तरी बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब और पाकिस्तान के पंजाब तथा सिंध प्रांतों तक फैले हुए हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में इन मैदानों की चौड़ाई मात्र 70-85 किमी. ही है, परंतु उनकी अधिकतम चौड़ाई बंगाल में 400 किमी., उत्तरी भारत में 150-300 किमी. है, परंतु पश्चिमी भारत तथा पाकिस्तान के निकटवर्ती भागों में ये विस्तारित होकर 500 किमी. तक चौड़े हैं। भूकंपीय गभीरता मापनों के संगणनों द्वारा जलोढ़क की अधिकतम मोटाई आधार शैल तक लगभग 6 किमी. है। ये विशाल मैदान बंगाल तथा सिंध के तटीय

भागों में समुद्रतल से ऊपर उठते हुए पंजाब-राजस्थान के मैदानों में 200-300 मी. की अधिकतम ऊंचाई प्राप्त करते हैं।

सिंधु-गंगा अवनमन

सामान्य

सिंधु-गंगा जलोढ़क का विशाल विस्तार एक घाटी में समाहित है जो उत्तर तथा पश्चिम में उत्तुंग हिमालय तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय शील्ड के विशाल पुंज से सीमाबद्ध है। इसके उद्भव के संबंध में प्रारंभिक दृष्टिकोण के अनुसार यहां एक प्राचीन सागर था जो इसमें मिलने वाली अनेक नदियों द्वारा लाए पदार्थों के निक्षेपण से भर गया है। 1900 में सी. एस. मिडिलमिस ने यह सुझाया कि यह एक अवनमन पट्टी थी जिसमें पर्वतमालाओं के ऊंचा होने के साथ साथ मैदान अवनतित होते गए। एक प्रसिद्ध स्विस भूवैज्ञानिक एडुआर्ड सुएस ने इसे हिमालय का अग्रगभीर नाम दिया। बाद में 1912 में सर एस. जी. बर्राड ने भूगतिज पर्यवेक्षणों के आधार पर इस अवधारणा को और आगे बढ़ाया, जिनके अनुसार सिंधु-गंगा गर्त एक विशाल भूपृष्ठीय विदर या रिफ्ट थी जो संभवतया 30 किमी. तक गहरी और 3,200 किमी. की लंबाई तक विकसित थी जो बाद में जलोढ़क से भर गई। उन्होंने पुनः प्रस्तावित किया कि यह विभ्रंशन एक प्राथमिक घटना है जिसने हिमालय का उत्तर की ओर संपीडन किया। आर. डी. ओल्डम ने 1917 में इस दृष्टिकोण का बहुत जोरदार खंडन किया। उन्होंने उपलब्ध भूगतिज तथा भूवैज्ञानिक आंकड़ों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि इसकी तलहटी प्रायद्वीप के उत्तरी छोर से ऊपर की ओर समान रूप से इसकी उत्तरी सीमा (पर्वतमालाओं से 15-50 किमी.) के निकट अधिक-से-अधिक 5,000 से 6,000 मी० की गहराई तक प्रवाहित हुई। अतः यह न तो एक रिफ्ट है और न ही कोई दरार।

हालांकि ओल्डम (1917) द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार अवसादों की मोटाई में एक सामान्य वृद्धि है तथा इसको भूभौतिकी सर्वेक्षणों एवं गहरे वेधन द्वारा सत्यापित किया जा चुका है, अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आधारतल एक समान नहीं है तथा उसकी स्थलाकृति असमतल होने के कारण अवसादी निक्षेपों की मोटाई भी अत्यधिक परिवर्तनीय है। आधारतल की ऊर्ध्वावलि तथा कई अंतर्हित कटकें भी ज्ञात की गई हैं। भूकंपीय एवं गुरुत्व अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि सिंधु-गंगा मैदान के नीचे भूपृष्ठ की मोटाई 28-45 किमी. है, जिसमें 3 किमी. ऊपर की अवसादीय परत भी सम्मिलित है।

सिंधु-गंगा गर्त प्लायो-प्लायस्टोसीन काल में गर्त के उत्तरी भाग के 5 किमी. नीचे अवतलन होने तथा दक्षिण की ओर बहुत कम धंसने के कारण अवसमित हो गई हैं। गर्त में अवतलन की यह प्रक्रिया काफी सक्रिय होने के कारण अत्यधिक द्रुत गति से

ऊपर उठने की प्रक्रिया भी ठीक उत्तर में सक्रिय थी। इस अवधि में ही प्लायस्टोसीन ·ागरीय संस्तर 1,500 मी. तक उत्थित हुए जिसके परिणामस्वरूप हिमालय शृंखला की सिंधु, ब्रह्मपुत्र तथा कुछ अन्य नदियों में गहरे कटाव उत्पन्न हो गए। हिमालय व तिब्बत के पठार की औसत ऊंचाई 5,000 मी. तथा कहीं कहीं 8,000 मी. से भी ऊपर हैं। इससे यह प्रकट होता है कि ऊर्ध्वाधर संचलन 200 किमी. से भी कम स्थान में हुआ और यह 7.5 किमी. से अधिक और कहीं कहीं 15 किमी. से भी अधिक था।

रामचन्द्र राव (1973) के अनुसार सिंधु-गंगा गर्त को पूर्व से पश्चिम की ओर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :

1. असम में ब्रह्मपुत्र द्रोणी
2. पश्चिम बंगाल, बांग्लादेश में बंगाल (गंगा-ब्रह्मपुत्र) द्रोणी
3. उत्तरप्रदेश और बिहार में गंगा द्रोणी
4. पंजाब में पंजाब द्रोणी तथा
5. पाकिस्तान में सिंधु द्रोणी

असम की ब्रह्मपुत्र द्रोणी

यह द्रोणी जलोढ़क मैदान से बनी है जिसमें होकर मिशमी पर्वत से उद्गमित ब्रह्मपुत्र नदी पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : ऊपरी असम शेल्फ जो नागा पहाड़ियों तथा अरुणाचल हिमालय गिरिपादों के बीच स्थित है, तथा मिकिर-शिलांग पहाड़ियों तथा भूटान हिमालय गिरिपादों के मध्य स्थित उत्तरी शिलांग शेल्फ। समान रूप से सिंधु-गंगा मैदान का आधार उत्तर दिशा की ओर खड़े रूप में नत है, परंतु जैसा कि गुरुत्व आंकड़े इंगित करते हैं मिकिर पहाड़ियों की ओर इनकी नति कम है। यह विश्वास किया जाता है कि यह अवनमन तेजपुर के उत्तर-पूर्व की ओर 3,000 मी. से भी अधिक गहरा है। ऊपरी असम शेल्फ के पूर्वी भाग में, जहां हाइड्रोकार्बन के लिए गहरे वेधन किए गए हैं, कुछ कुओं में 3,600-3,800 मी. की गहराई पर ग्रेनाइटीय आधार शैलें मिली हैं। ब्रह्मपुत्र जलोढ़क के नीचे टिपम श्रेणी (मायोसीन), बरेल समूह (ऑलिगोसीन) तथा दिहंग शैल समूह (प्लायस्टोसीन) की शैलें मिली हैं। दिहंग संरचना के नीचे किसी भी बड़ी असंगति का प्रमाण नहीं मिला है, हालांकि दिहंग व टिपम के नीचे कुछ स्थानों पर छोटी छोटी असंगतियां अवश्य ज्ञात हुई हैं। बरेल व टिपम दोनों संरचनाएं तेल एवं गैस धारक संरचनाएं हैं। ये हल्के रूप में वलयित तथा जटिल रूप से भ्रंशित हैं।

बंगाल द्रोणी

यह द्रोणी पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश के अधिकांश क्षेत्र को आच्छादित करती है। इसकी पूर्वी सीमा नागा-लुशाई पार्वतिकी पट्टी द्वारा, तथा पश्चिमी सीमा प्रायद्वीपीय

शील्ड जो आर्कियन आधार जटिलसंघ आर्कियन बेसमेंट काम्पलेक्स का बना है और जिसमें गोंडवाना अवसादों के कुछ टुकड़े हैं, से सीमाबद्ध है। इस द्रोणी की जलापूर्ति गंगा-ब्रह्मपुत्र तंत्र से होती है और इसमें गंगा डेल्टा भी सम्मिलित है। इसकी दक्षिणी सीमा अज्ञात है, लेकिन यह बंगाल की खाड़ी में काफी दूर पर खुलती हुई प्रतीत होती है। हाइड्रोकार्बन की संभाव्यता हेतु बंगाल की खाड़ी में किए गए गहरे वेधन व भू-भौतिकी सर्वेक्षणों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जलोढ़क के नीचे टर्शियरी व क्रिटेशस अवसादों का एक मोटा अनुक्रम बेसाल्टीय लावाओं के आधार पर ऊपर स्थित है, जिसकी आयु संभवतया राजमहल ट्रैप की आयु के समान है। प्लायोसीन तथा मायोसीन अवसादों के मध्य एक सुस्पष्ट असंगति दृष्टिगत होती है। यह द्रोणी पूर्व की ओर और अधिक गहरी हो गई है। यह गहराई आर्कियन शील्ड क्षेत्र में 900 मी. तक पश्चिम की ओर तथा लगभग 11,000 मी. तक पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी भाग में है। द्रोणी संरूपण से यह स्पष्ट होता है कि द्रोणी के पश्चिमी किनारे पर लुप्त आधार कटकों का एक अनुक्रम उपस्थित है। ये कटकें ही संभवतया आधार को बनाने वाले बेसाल्ट के प्रवाह मुख रही होंगी। इन कटकों के पूर्व में द्रोणी के किनारे पर एनएशलॉन भ्रंश तथा कगार हैं। पूर्व में दक्षिण-पूर्व की ओर अपनी समदिग्नत नति वाला पश्चिम बंगाल का स्थिर शेल्फ है। 5,000 मी. की गहराई पर एक हिंज क्षेत्र माना गया है जो कलकत्ता के उत्तर-पश्चिम से लेकर मैमनसिंह तक फैला हुआ है जहां पर आश्मिक संलक्षणियों में अचानक परिवर्तन होता है और पूर्व की ओर द्रोणी की गहराई अचानक बढ़ जाती है। पश्चिम में स्थिर शेल्फ का ईओसीन न्युमुलिटिक चूना-पत्थर का प्रतिस्थापन गहरे भाग में मृत्तिका तथा शैल के एक मोटे ढेर से होता है। इसी प्रकार स्थिर शेल्फ के बाल्कामय अवसाद अधोनति क्षेत्र में प्रमुख मृण्मय अवसादों में परिवर्तित हो गए हैं।

गंगा द्रोणी

अधस्तल भूविज्ञान—गंगा द्रोणी में जलोढ़क के नीचे हिमालय गिरिपद के कम सघन शिवालिक तथा प्राचीन टर्शियरी अवसाद हैं और इन अवसादों के नीचे विषमाविन्यासी रूप से अधिक सघन विन्ध्य महासमूह का प्राचीन समूह है। कुछ खंडों में गोंडवाना तथा क्रिटेशस काल के अवसाद भी हैं। यह अवसादीय अनुक्रम असंगत रूप से क्रिस्टलीय आधार शैल जो सतह से 2,000 मी. से 3,000 मी. नीचे है, पर स्थित है। प्राचीन शैलों की उपस्थिति का यह निष्कर्ष भू-भौतिकी भूकंपी, चुंबकीय तथा गुरुत्वी सर्वेक्षणों द्वारा—एवं तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा किए गए गहरे वेधन कार्यों से निकाला गया है। आधारतल की गहराई समान नहीं है। यह दक्षिणी क्षेत्र की अपेक्षा उत्तरी क्षेत्र में काफी गहरी है। गंगा द्रोणी की उत्तरी सीमा भौगोलिक रूप से वलयित अग्र शिवालिक पट्टी की दक्षिणी पर्वतमालाओं द्वारा रेखांकित है। द्रोणी की संरचनात्मक उत्तरी सीमा का निर्धारण करना कठिन है, क्योंकि हिमालय विवर्तनिक क्षेत्र की सीमा पर

स्थित होने के कारण सीनोजोइक वलयन गतिविधियों ने इसे काफी जटिल बना दिया है। दक्षिणी सीमा प्रायद्वीपीय क्षेत्र की कठोर शैलों से सीमाबद्ध है और ये शैलें अचानक ही इस क्षेत्र के किनारे पर आ गई हैं। प्रायद्वीप के उत्तरी भाग के प्रमुख भूवैज्ञानिक घटक तथा विवर्तनिक संरेखण गंगा द्रोणी में जलोढ़क के नीचे तक विस्तारित हैं।

गंगा द्रोणी का विवर्तनिक प्राधार गंगा द्रोणी एक अत्यधिक उच्च कोटि की ऋणात्मक भूपृष्ठ संरचना है, जो संभवतया विन्ध्य सिन्क्लेज का उत्तरी विस्तार ही है, और विस्तृत पैमाने पर भारतीय प्लेटफार्म के उत्तरी छोर पर स्थित क्षेत्रीय अवनमन का प्रतिनिधित्व करती है। सिन्क्लेज क्षेत्रीय आकार की एक ऋणात्मक या अवनमित संरचना है, जो महाद्वीपीय प्लेटफार्म पर धीमे भू-पृष्ठीय अवनमन के कारण बनते हैं और अपनी ऋणात्मक प्रकृति को भूवैज्ञानिक इतिहास में लंबे समय तक संजोए रखते हैं।

भूभौतिकी आंकड़ों के आधार पर, गंगा द्रोणी को पूर्व से पश्चिम की ओर निम्नलिखित विवर्तनिक इकाइयों में विभाजित किया गया है। (मानचित्र -VII)

1. मुंगेर-सहरसा कटक
2. पूर्वी उत्तरप्रदेश शेल्फ
3. गंडक अवनमन
4. फैजाबाद कटक
5. पश्चिमी उत्तरप्रदेश कटक
6. शारदा अवनमन, तथा
7. दिल्ली-हरिद्वार कटक

ये कटकें अंतर्हित संरचनाएं हैं जो प्रायद्वीपीय क्षेत्र में उद्गमित लक्षणों की उत्तर की ओर निरंतरता है। मुंगेर-सहरसा कटक गंगा द्रोणी की पूर्वी सीमा है, जबकि दिल्ली-हरिद्वार कटक उसके पश्चिमी छोर का निर्माण करती है।

मुंगेर-सहरसा कटक, छोटा नागपुर पठार का विस्तार है और संभवतया सतपुड़ा वलयित पट्टी के शैल संश्लिष्टों से निर्मित हुआ है। निओजीन अवसाद सीधे ही आधार तल पर हैं, परंतु कटक के ऊपर जलोढ़क की मोटाई 3,000 मी. से अधिक नहीं है। यह फैजाबाद कटक से लगभग 300 किमी. दूर है और पूर्वी उत्तरप्रदेश शेल्फ व गंडक अवनमन इसको अलग करते हैं। यह बुंदेलखंड गिरिपिंड का उत्तर-पश्चिम प्रक्षेपण है। निओजीन अवसाद सीधे ही इसको आच्छादित किए हैं। दिल्ली-हरिद्वार कटक उथली प्रकृति की है।

पूर्वी उत्तरप्रदेश शेल्फ दक्षिण की ओर सोन घाटी के विन्ध्य दृश्यांशों द्वारा सीमाबद्ध हैं। 400-800 मी. मोटी जलोढ़क निओजीन तथा विन्ध्य अवसादों के ऊपर फैली हैं जो सतपुड़ा संजाति के आधार तल के ऊपर हैं। उत्तर की ओर यह शेल्फ गंडक अवनमन में समाहित हो जाती है जहां पर यह असघन अवसाद आच्छादित शिवालिक शैलों के ऊपर 1,500 मी. तक है, जिसके नीचे अनिश्चित स्तरिकी अनुक्रम की शैलों का

असंगत अनुक्रम संभावित विन्ध्य शैलों सहित दृष्टिगत होता है।

पश्चिमी उत्तरप्रदेश शेल्फ अरावली शैलों के आधारतल से बनी है, उसके ऊपर मुरादाबाद भ्रंश के पूर्व तक विन्ध्य अवसाद हैं, जबकि उसके पश्चिम में निओजीन अवसाद दिल्ली आधारतल के ऊपर हैं। अन्य उत्तर-पूर्व—दक्षिण-पश्चिम दिशा में फैले हुए भ्रंश भी इस शेल्फ में हैं। यह शेल्फ उत्तर की ओर बढ़कर शारदा अवनमन में समाहित हो जाती है, जिसके ऊपर लगभग 6,000 मी. की मोटाई में विन्ध्य, मीसोजोइक—पेलिओजीन तथा निओजीन काल के अवसाद हैं।

पंजाब द्रोणी

शिवालिक पहाड़ियों की ही दिशा का अवगमन करते हुए पंजाब अवनमन की दिशा उत्तर-पश्चिम—दक्षिण-पूर्व, पूर्व-दक्षिण—पूर्व-पश्चिम—उत्तर-पश्चिम तथा लगभग पूर्व-पश्चिम है। पश्चिम की ओर यह आर्कियन शैलों से बनी पंजाब वेज से सीमित है जो या तो दृश्यांशों के रूप में दृष्टिगत है अथवा पाकिस्तान के लाहौर-सरगोधा क्षेत्र में जलोढ़क की सामान्य मोटाई के नीचे दबा हुआ है। जैसा कि भूकंपीय सर्वेक्षण तथा वेधन आदि से ज्ञात हुआ है, आधारतल की सतह मंद नति की है और इनकी गहराई गिरिपादों की ओर बढ़ती जाती है, तथा अधिकतम गहराई 4,800 मी. है जो प्लेटफार्म के दक्षिणी छोर के पास ऊपरी तथा मध्य शिवालिक के नीचे 700 मी. के लगभग है। दिल्ली से विस्तारित दो कटकें जलोढ़क के नीचे स्थित मानी जाती हैं—एक उत्तर-पश्चिम दिशा लेती हुई लाहौर की तरफ तथा दूसरी उत्तर दिशा लेती हुई देहरादून तक विस्तारित है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि दिल्ली-लाहौर कटक आधार उच्च की है, जो सिंधु द्रोणी के राजस्थान प्लेटफार्म को हिमालय द्रोणी के पंजाब प्लेटफार्म से अलग करती है। यह अरावली पर्वतमाला का विस्तार भी हो सकता है, परंतु उपलब्ध आंकड़े इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते हैं। विश्वास किया जाता है कि यह कटक लाहौर से पश्चिम-उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ती है और पाकिस्तान में सरगोधा—दक्षिण बजीरिस्तान कटक कहलाती है। यह सरगोधा उच्च कटक उस देश में पंजाब के मैदान की एक प्रमुख विवर्तनिक विशेषता है।

इस आधारतल उच्च के दक्षिण-पश्चिम में, पेलिओजोइक, मीसोजोइक तथा टर्शियरी काल के अवसाद राजस्थान की ओर जलोढ़क तथा बालुका आच्छादन के नीचे हैं जबकि उत्तर-पूर्व की ओर पंजाब के मैदानी जलोढ़क के नीचे, आधारतल के ऊपर शिवालिक शैलों से पुरानी शैलें नहीं मिलती हैं। राजस्थान क्षेत्र में सागरी अवसादन प्रारंभिक पेलिओजोइक काल से ही बड़े पैमाने पर हो रहा था, लेकिन पंजाब के मैदानी भाग में लगभग मायोसीन काल में, जब शिवालिक निक्षेपों का निक्षेपण धीरे धीरे धंसती हुई द्रोणी में आरंभ हुआ, सागरी अवसादन नहीं हुआ था।

अरावली पर्वतमाला का उत्तरी विस्तार क्रम दिल्ली के आगे एक अर्धस्तरीय

आधार कटक का निर्माण करता है, जिसका झुकाव उत्तर—उत्तर-पूर्व है, लेकिन यह देवबन्द पहुंचने के पहले ही समाप्त हो जाती है, तथा इसके स्थान पर इसी दिशा में झुकती हुई एक द्रोणिका दृष्टिगत होती है जो देहरादून के दक्षिण में पांच किलोमीटर से भी अधिक गहरी हो जाती है। वह दिल्ली-मुजफ्फरनगर कटक के नाम से जानी जाती है। क्रिस्टलीय आधार के समप्राय भूनिर्माण के पश्चात इस द्रोणिका में केवल शिवालिक अवसादों का ही निक्षेपण हुआ है।

सिंधु द्रोणी

सिंधु का मैदान इस पृथ्वी पर ज्ञात सबसे अधिक समरूप प्राकृतिक क्षेत्रों में से एक है। ये 5,30,000 वर्ग किमी. क्षेत्र को आच्छादित करते हैं, परंतु यह द्रोणी 9,00,000 वर्ग किमी. से भी अधिक क्षेत्र में विस्तारित है। उत्तरी मैदान क्षेत्र में असंपीडित अवसादों तथा जलोढ़क की गहराई 1.5 किमी. या अधिक है जबकि सिंधु में ऐसा माना जाता है कि यह गहराई 6,000 मी. तक है। टेथिस सागर के बंद होने तथा भूमि के सागर से उभरने के बाद ही मीसोजोइक तथा टर्शियरी अवसादों की विशाल मोटाई के ऊपर जलोढ़क का जमाव प्रारंभ हो गया। यह जलोढ़क पूर्व की ओर राजस्थान प्लेटफार्म तथा उत्तर की ओर सरगोधा-वजीरिस्तान कटक की ओर पतली हो जाती है। खैरपुर-जकोबाबाद-सिवी कटक तथा मरी-जैसलमेर चाप संबंध प्राकृतिक गैस क्षेत्रों के सुपरिचित उदाहरण हैं। यह क्षेत्र सिंधु घाटी के अत्यधिक विशाल संरचनात्मक उच्चता वाले क्षेत्र में स्थित है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि विन्ध्य सागर तट-रेखा हिंदूकुश-हिमालय क्षेत्र तक विस्तारित है।

यद्यपि यह विशाल सिंधु-गंगा मैदान का भाग नहीं माना जाता है, परंतु काम्बे द्रोणी, संलग्न सिंधु द्रोणी का ही भाग है और पश्चिमी तटीय मैदानों का विस्तार है। यह खम्भात की खाड़ी के उत्तर में स्थित जलोढ़कों से निर्मित है तथा इसका विस्तार खाड़ी के जल के नीचे डूबा हुआ है। यह क्षेत्र पश्चिम की ओर कच्छ तथा काठियावाड़ पठारों, उत्तर में लूणी घाटी तथा पूर्व में अरावली एवं सतपुड़ा पर्वतमालाओं से सीमाबद्ध है, दक्षिण की ओर यह क्षेत्र खुला हुआ है। इससे लगभग 85,000 वर्ग किमी. क्षेत्र आच्छादित है।

काम्बे द्रोणी एक अंतक्रेटानिक द्रोणी है और संभवतया प्रारंभिक ईओसीन काल में ट्रैप आधार के भ्रंशित होने से निर्मित एक द्रोणिका है। द्रोणी के विभिन्न भागों में जलोढ़क की मोटाई 3,000 से 4,500 मी. तक है। इस जलोढ़क के नीचे संपूर्ण द्रोणी में मायोसीन शैलें समान रूप से दृष्टिगत होती हैं, परंतु आधार के मध्य में इनके नीचे ईओसीन अवसादों की एक काफी मोटी परत दृष्टिगत होती है। उत्तर में यह द्रोणी, कच्छ मीसोजोइक तथा बाद में जैसलमेर-बाड़मेर द्रोणी से मिल जाती है, जो विशाल सिंधु भू-अभिनति का शेल्फ क्षेत्र है। द्रोणी के सबसे गहरे भाग में अवसादों की कुल मोटाई

लगभग 5, 000 मी. तक है। ऐसा माना जाता है कि एक भ्रंश, जो भारत के पश्चिमी तट के समानांतर चलता है, काम्बे द्रोणी में विस्तारित है। यह भ्रंश प्रक्षेत्र नर्मदा नदी से विस्तारित भ्रंश द्वारा दो भागों में विभाजित है। हाइड्रोकार्बन की उपस्थिति ने इस द्रोणी को महत्वपूर्ण बना दिया है। ईओसीन तथा आलिगोसीन बालुकाएं इस द्रोणी के महत्वपूर्ण तेल धारक संस्तर हैं।

थार मरुस्थल

सामान्य

पंजाब के सूखे मैदान थार या विशाल भारतीय मरुस्थल के सूखे मैदान से अति सूक्ष्म रूप में मिलते हैं जो पश्चिमी राजस्थान तथा पाकिस्तान, पंजाब व सिंधु के निकटवर्ती भागों को भी आच्छादित किए हुए हैं। यह मरुस्थल लगभग 650 किमी. लंबा तथा 250-350 किमी. चौड़ा है, तथा 2,00,000 वर्ग किमी. के क्षेत्र को घेरे हुए है। इसका लगभग दो तिहाई भाग राजस्थान में अरावली शृंखला के पश्चिम में स्थित है। केवल अरावली अवरोध के कारण ही यह संभव है अन्यथा मध्य भारत का काफी विशाल क्षेत्र मरुस्थल ही होता। यह सतलुज तथा पाकिस्तान की सिंधु घाटी में बवालनगर तथा पूर्व नारा नहर तक विस्तारित है। एक छोटा सूखा मैदान झेलम तथा सिंधु नदियों और लवण पर्वतमाला द्वारा बनाए गए त्रिभुज के मध्य में पाकिस्तान (पंजाब) में स्थित है, यह थार मरुस्थल कहलाता है।

विस्तृत थार मरुस्थल का उत्तरी भाग ऊपोष्ण क्षेत्र बालुका मरुस्थल के रूप में वर्गीकृत किया गया है, तथा इसका दक्षिणी भाग ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र में स्थित है। मरुस्थल एक तरंगित मैदान बनाता है, जिसकी औसत ऊंचाई 325 मी. है, लेकिन यह ऊंचाई भारत-पाकिस्तान सीमा के निकट कम होकर मात्र 150 मी. रह जाती है। यह मैदान सिंधु घाटी और कच्छ के रण की लवण मृदा (सोलनचक) की ओर और नीचा हो जाता है। छोटी सूखी सरिताएं इस मरुस्थल को पार करती हैं। इसका पश्चिमी भाग सिंधु घाटी के गिरिपद अवनमन में और इसका पूर्वी भाग भारतीय पठार के अपरदित खंड में स्थित है। पूर्वी भाग एकांतरित रूप से वाथूढ़ बालुका कटकों एवं पुरा आधार शैल दृश्यांशों का एक जटिल क्रम है जिसके साथ साथ सपाट भूमि (स्वेल) में अनेकानेक अवनमन हैं। कभी कभी इन अवनमनों के असंपीडित अवसादों में जिप्सम के लैस प्राप्त होते हैं।

थार मरुस्थल का यह विस्तृत भूप्रदेश दो भागों का बना है : (1) विशिष्ट मरुस्थल—जो मरुस्थली कहलाता है और (2) अर्ध-मरुस्थल जिसे बागड़ कहते हैं जिसमें कहीं कहीं बालूविहीन भूमि स्टेपीज के समान वनस्पतियों से आच्छादित है।

मरुस्थली समुद्र तल से 200-250 मी. ऊंचा बालू का एक विशाल विस्तार है जिसमें बालू टिब्बे हैं। इस परित्यक्त भूमि में एक भी नदी प्रवाहित नहीं होती है। बागड़ एक सपाट सतह वाला मैदान है जिसके कुछ भागों में लवण पूरित प्लाया अवनमन हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'सार' कहते हैं।

थार का पूर्वी भाग जो अरावली पर्वतमाला के पश्चिम में गिरिपद का निर्माण करता है एक अर्ध शुष्क मैदान है जो राजस्थान में बागड़ के नाम से जाना जाता है। यह अरावली से उद्गमित अनेक छोटे छोटे स्रोतों से अपवाहित है तथा इसमें कुछ बालू पहाड़ियां भी हैं। इसके विशाल उपजाऊ क्षेत्र, जिन्हें 'रोही' कहा जाता है, में खेती होती है। लूणी नदी के दक्षिण में सिबाना, जालौर तथा जसवंतपुर का पहाड़ी भूप्रदेश बालू के नीचे दबा हुआ है। इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि भूदृश्य का यह भाग नदीय प्रकृति का है और अतीत की शक्तिशाली नदियों ने उसे संवारा था परंतु बाद में वायवीय अपरदन ने इसे रूपांतरित कर दिया। लूणी नदी के उत्तर का भूप्रदेश 'थाली' या बालुका मैदान कहलाता है, इसमें अचल या स्थायी बालू टिब्बे हैं। इसके पश्चिम में विराट बलुई व्यर्थभूमि या मरुस्थली है। केवल मरुस्थली भाग तथा उसके पाकिस्तानी विस्तार को ही 'वास्तविक मरुस्थल' कहा जा सकता है, क्योंकि इस शुष्क मैदान का अधिकांश भाग भूमिगत जल तथा नहरों से पानी उपलब्ध होने पर घास के मैदान तथा फसलें भी पैदा करता है। सामान्यतया मरुस्थली का पूर्वी भाग शैलमय तथा पश्चिमी मरुस्थली पूर्ण रूप से स्थानांतरी टिब्बों जिन्हें स्थानीय भाषा में 'ध्रियन' कहते हैं की बालू से आच्छादित है।

चतुर्थ कल्पी निक्षेप सिंधु नदी के प्राचीन जलोढ़क तथा वायूढ़ (वायु द्वारा वाहित) बालू द्वारा परिलक्षित हैं। वायूढ़ बालू पश्चिमी राजस्थान के लगभग 90 प्रतिशत भाग को आच्छादित किए हुए है। मरुस्थल के उच्चावच में तीन मुख्य वायवीय आवृतियां स्पष्ट रूप से पहचानी गई हैं : 1. अनुप्रस्थ कटक, 2. बरकान (जो बारखन या बार्चेन भी कहलाती हैं) बालुकाएं, तथा 3. पैराबोलीय (या समान झुकाव वाले) टिब्बे जो वायु की दिशा के लंबवत विस्तारित हैं। ये कटकें 10-15 मी. तक फैली, 150-200 मी. चौड़ी तथा 5-10 किमी. लंबी हैं। बरकान चापाकार पृथक बालू टिब्बे हैं जो वायु की दिशा के अनुप्रस्थ विन्यस्त हैं। बरकान 100-200 मी. लंबे, 20 मी. तक ऊंचे तथा एक शृंखला में या समूह के रूप में होते हैं। बरकान बालुकाएं राजस्थान में सापेक्ष रूप में छोटे क्षेत्र में दृष्टिगत होती हैं, जबकि थार के पाकिस्तान वाले भाग में जहां की जलवायु अधिक शुष्क है, ये कहीं अधिक बड़े क्षेत्र में विस्तारित हैं।

सुदूर उत्तर में बीकानेर तथा ओसियन (जोधपुर के उत्तर में) क्षेत्र में उत्पत्तिमूलक रूप से संबंधित पैराबोलीय टिब्बों की समान झुकाव वाली कटकें हैं, जिनके 'U' समान टिब्बों का अवतल भाग वायु के प्रवाह की ओर रहता है। मरुस्थल उत्तर-पूर्व किनारे पर

एक विशाल दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम—उत्तर-उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित एकल बालू कटकें प्रचुर हैं; ये 8-10 मी. ऊंची तथा 200-225 मी. तक चौड़ी हैं। कई बालू टिब्बे वायु के साथ चलायमान हैं लेकिन उनका संचलन बहुत धीमा है, लेकिन मरुस्थल के कुछ भागों में ये स्थिर हो गए हैं।

थार मरुस्थल के पश्चिमी भाग की वायूढ़ बालुकाएं प्राचीन सिंधु घाटी के पश्चिमी तथा दक्षिण-पश्चिम भागों से प्रवाहित हैं। वायूढ़ कटकें इस प्रवाह दिशा को इंगित करती हैं तथा वायु भी इस दिशा में प्रवाहित होती है। थार के उत्तरी भाग में, जहां मानसून के समय पंजाब की नदियों का जल बालू तक पहुंचता है, दुमट मैदान, जो प्रायः खारे होते हैं, बालुकाओं के मध्य सीचित अवनमनों में दृष्टिगोचर होते हैं। थार की बालुकाएं अभी भी पूर्वाभिमुख चल रही हैं तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश एवं उत्तर-पश्चिमी मध्यप्रदेश के क्षेत्रों का अतिक्रमण कर रही हैं जो कभी बहुत उपजाऊ थे, लेकिन अब आगे बढ़ती बालू से क्षेपित हैं। प्राचीन जलोढ़ मैदानों के मरुस्थलीकरण का, थार मरुस्थल एक उदारहण है।

थार के बालू टिब्बे

थार मरुस्थल के सर्वाधिक सामान्य बालू टिब्बे U आकार की पैराबोलीक (परावलीय) संरचनाएं हैं जो एक समान झुकाव व समान आकार की हैं तथा तीव्र ग्रीष्म के प्रारंभ की दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी हवाओं के समक्ष अनुप्रस्थ रूप से दृष्टिगत होती हैं। इस प्रकार टिब्बा समूह के अनुप्रस्थ भाग का सामान्य संरेखण मोटे तौर पर उत्तर-पश्चिम—दक्षिण-पूर्व है तथा इस समूह के शृंग दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-पूर्व कटक की दिशा में व्यवस्थित हैं। इन टिब्बों की औसत ऊंचाई जयपुर व सीकर जनपदों में लगभग 8 मी. से बाड़मेर जनपद में 31 मी. तक है। ये टिब्बे अपने औसत अनुदैर्घ्य घटक में लगभग 38 से 76 मी. तक हैं तथा उनके बीच का अंतराल 1.5 से 6 टिब्बा प्रति किलोमीटर है। यहां पर कुछेक अपेक्षाकृत सरल अनुदैर्घ्य टिब्बे (सीफ), जिन्हें स्थानीय भाषा में भीट कहते हैं, वायु की दिशा में पंक्तिबद्ध हैं तथा अपेक्षाकृत कम चापाकार टिब्बे (बरकान) हैं। इन सीफ मालाओं के बीच अनेक अवनमन हैं जो स्थानीय भाषा में दन्ड या धन्द कहलाते हैं। धन्द, लवण सरोवर या खाली गड्ढे हैं जो लगभग तीन मीटर तक गहरे, आकार में दीर्घवृत्ताकार अनुदैर्घ्य बालू टिब्बों की कटकों के साथ संरेखित हैं। मरुस्थल के पश्चिमी भाग में ये सैकड़ों की संख्या में खैरपुर, बहाबलपुर, जोधपुर तथा बीकानेर क्षेत्रों में दृष्टिगत होते हैं। कुछ धन्द में कोई भी निकास मार्ग नहीं होता है और वे केवल विशाल वाष्पन पात्र बन जाते हैं जिनकी लवणता बाढ़ के बाद बढ़ जाती है।

एक अन्य प्रकार के विस्तृत टिब्बे स्थलाकृतिक अथवा अवरोध टिब्बा कहलाते हैं, ये उस स्थिति में निर्मित होते हैं जब बालू के प्रवाह की गति में किसी अवरोध, कोई पहाड़ी अथवा इंसेलबेर्ग के आ जाने से कमी हो जाती है। इस प्रकार के टिब्बे काफी विशाल

आकार के होते हैं तथा कुछ तो लंबाई व चौड़ाई में कई किमी. तक बड़े होते हैं।

अपक्षीण बालू या रक्ताभ टिब्बे नई बालू से बढ़े हुए जिनमें गाद तथा मृत्तिका घटक अधिक होते हैं, के कारण अलग दृष्टिगत होते हैं। ये राजस्थान में 18 प्रतिशत तथा गुजरात में 33 प्रतिशत हैं। इसके अतिरिक्त थार के अंतःस्थलीय भाग में विस्तृत रूप से कैली कंकड़युक्त बालू भी पाई जाती है। यह बालू कैल्शियम कार्बोनेट ग्रंथिकाओं द्वारा संयोजित है। यह हल्के रंग की बालू है तथा इसमें कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCo_3$) का अंश अधिक ऊंचा लगभग 50-60 प्रतिशत तक है जबकि इसकी तुलना में थार में स्थित अधिकांश बालू टिब्बों में यह मात्र 27 प्रतिशत ही है।

थार मरुस्थल की आयु

प्रारंभिक दृष्टिकोण के अनुसार यह मरुस्थल अभिनव उत्पत्ति और निश्चित रूप से होलोसीन आयु का है। यह मनुष्य द्वारा प्रेरित मरुस्थलीकरण तथा पश्च हिमनदन जलवायु निर्जलीकरण का परिणाम है। यह इस विशाल भारतीय मरुस्थल के केवल एक छोटे-से भाग के संबंध में तो ठीक हो सकता है। उदाहरण के लिए—इस बात के प्रमाण हैं कि कच्छ के उत्तर तथा पंजाब के दक्षिण का क्षेत्र देश का एक उपजाऊ तथा वनाच्छादित भाग था, जिसमें सिकन्दर महान के आक्रमण अर्थात चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तक घनी आबादी वाले नगर स्थित थे। होलोसीन काल में मरुस्थल के क्षेत्र का विस्तार होता रहा; अभी तक भी यह बालू दिल्ली-आगरा पट्टी की ओर विस्तारित हो रही है। हालांकि अब इस बात के भी पुष्ट प्रमाण प्राप्त हो रहे हैं कि थार का अधिकांश भाग काफी प्राचीन, अर्थात संभवतया उत्तर प्लायस्टोसीन काल का हो। आज का संपूर्ण शुष्क मैदान परमो-कार्बोनीफेरस काल से प्लायस्टोसीन काल तक सागर के गर्भ में रहा है। यह किसी समय ऊपरी टर्शियरी काल में ऊपर उठा है।

इस मरुस्थल के राजस्थान के अनेक भागों में पुरावशेल के प्रमाण दृष्टिगत होते हैं। कुछ टिब्बे अत्यधिक अपरदन प्रदर्शित करते हैं तथा जल द्वारा निर्मित गहरे खंडों से विच्छेदित हैं। क्योंकि यहां पर वर्षा छुट-पुट होती है। यह क्रिया काफी लंबे समय तक इन लक्षणों को बनाने के लिए चलती रही होगी। मरुस्थल का कुछ भाग एक लंबी अवधि से स्थायी बना हुआ है, जैसा कि गुजरात में दृष्टिगत है। यहां पर टिब्बों में कैल्सीकरण, गहरी नालियां तथा सुस्पष्ट अपक्षप स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ टिब्बों पर सूक्ष्म आश्मीय औजार भी प्रचुरता से प्राप्त हुए हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये टिब्बे मीसोलिथिक काल के हैं, जब इस क्षेत्र में पूर्व-मानव निवास करता था।

लवण झीलें

थार मरुस्थल के पूर्वी छोर पर कई लवण झीलें तथा सपाट भाग दृष्टिगत होते हैं। इनमें से दो अत्यधिक प्रसिद्ध हैं : सांभर झील तथा डिडवाना झील, दोनों ही साधारण नमक व

अन्य लवणों के व्यापारिक स्रोत हैं। सांभर झील बॉलसन, एक शब्द जो एक विस्तृत पहाड़ियों द्वारा घिरा हुआ सपाट अवनमन है जिसमें अभिकेंद्री या आंतरिक अपवाह होता है, का एक उदाहरण है। जो छोटी झीलें प्लाया हैं चपटी तलहटी, अनअपवाहित, मरुस्थलीय द्रोणियां हैं जिनमें वर्षा का पानी एकत्र होता है और घुलनशील लवणों को छोड़कर शीघ्रता से वाष्पीकृत हो जाता है। इस क्षेत्र की डिडवाना झील, कुचामान झील, सरगोल झील, खातू झील, प्लाया झीलें हैं।

सांभर लवण झील, राजस्थान के जयपुर तथा नागौर जनपदों की सीमाओं को काटती है तथा अरावली भूप्रदेश में 360 मी. से अधिक की ऊंचाई पर स्थित है। यह झील लगभग 30 किमी. लंबी तथा 3-8 किमी. चौड़ी है और वर्षा ऋतु में पूरी भरी होने पर इसका क्षेत्रफल लगभग 225 वर्ग किमी. हो जाता है और ग्रीष्म महीनों में सिकुड़कर काफी कम हो जाता है। यह एक अत्यधिक छिछला अवनमन है जिसमें सामान्यतया पानी 50 सेंमी. से अधिक गहरा नहीं होता, लेकिन इस क्षेत्र की कुछेक झीलों में पानी की गहराई 2 मी. तक भी अभिलेखित की गई है। इसकी तलहटी की आयु का निर्धारण आज से लगभग 10,000 वर्ष पूर्व किया गया है। पश्चिम-उत्तर-पश्चिम-पूर्व—दक्षिण-पूर्व दिशा वाली यह द्रोणी वायूढ़ बालू से घिरी है लेकिन इसके पश्चिम की ओर शिस्ट व नाइस की छोटी छोटी पहाड़ियां दृष्टिगत होती हैं।

कुचामान झील, सांभर झील से 10 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित है। कुचामान एक छोटी-सी झील है तथा इसका क्षेत्रफल कठिनाई से 12 वर्ग किमी. है। डिडवाना झील सांभर से लगभग 35 किमी. और उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यह केवल 5.5 किमी. लंबी तथा 2.5 किमी. चौड़ी है और इसका क्षेत्रफल 13.5 वर्ग किमी. है। यह मरुस्थलीय बालू में स्थित है जिसके नीचे ग्रेनाइटीय आधार है। प्लाया अत्यधिक छिछली है और यह ग्रीष्म ऋतु में पूर्णतया सूख जाती है जबकि सांभर आंशिक रूप से हर ऋतु में जल से भरी रहती है।

डिडवाना के दक्षिण-पश्चिम में, लगभग 25 किमी. दूर खातू लवण झील स्थित है। यह एक बहुत छोटी प्लाया है। इस क्षेत्र की अन्य छोटी छोटी झीलें सुजानगढ़ तथा डेगाना के निकट हैं।

अन्य प्रकार के लवणयुक्त द्रोणी या फ्लैट्स की उत्पत्ति सक्रिय अथवा छोड़े हुए स्रोत प्रवाहमार्गों के भर जाने या मलबे से पट जाने के कारण हुई है। इसका उदाहरण बाड़मेर जनपद के पूर्वी भाग में लूणी के उत्तर में विस्तृत मैदान है जो पचपेडरा लवण द्रोणी के नाम से प्रसिद्ध है। यह चपटा अवनमन संभवतया लूणी के प्राचीन संस्तर का एक भाग है, जहां पर लूणी अनुप्रवाह की ओर अचानक मुड़ जाती है। यहां पर इस प्राचीन नदी तल के स्पष्ट चिह्न दृष्टिगत होते हैं। पचपेडरा द्रोणी लगभग 100 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैली हुई है।

बीकानेर क्षेत्र में कई अवनमन या 'सर' टिब्बों द्वारा घिरे हुए दृष्टिगत होते हैं

जिनमें लवण की पपड़ियां दिखाई देती हैं। इनमें से बीकानेर नगर से लगभग 70 किमी. उत्तर-पूर्व में स्थित लूणकरणसर ताल नमक का एक नियमित उत्पादक है। यह एक दीर्घवृत्तीय अवनमन है, जिसका क्षेत्रफल लगभग 3.5 वर्ग किमी. है, जो ग्रीष्म ऋतु में पूर्णतया सूख जाता है लेकिन वर्षा के पश्चात लवण जल बन जाता है जिसके वाष्पीकरण से साधारण नमक प्राप्त किया जाता है।

इन झीलों में नमक की उत्पत्ति काफी लंबे समय से विवाद का विषय रही है। इनकी लवणता की व्याख्या करने के लिए चार प्रमुख सिद्धांत बताए गए हैं—1. लवण नीचे के स्वास्थाने संस्तरों या लवण जल स्रोतों से आता है, 2. निकटवर्ती शैलों के निक्षालन से लवण की प्राप्ति होती है, 3.लवण, कच्छ के रण से वायु द्वारा वाहित होकर आता है, तथा 4. ये सरोवर पश्चगामी सागर के अवशिष्ट हैं। अभिनव वेधन तथा भू-रासायनिक अनुसंधानों ने यह प्रमाणित किया है कि संभवतया उपरोक्त प्रथम तथा द्वितीय घटकों ने सम्मिलित रूप से इन झीलों को लवणता प्रदान की है। बीकानेर क्षेत्र में वेधनकार्यों ने यह स्पष्ट किया है कि बालू आच्छादन के नीचे हेलाइट तथा पोटाश के मोटे संस्तर विद्यमान हैं। इस क्षेत्र के अन्य भागों में जिप्संम संस्तर विस्तृत रूप से विद्यमान है। साधारण नमक के अतिरिक्त इन सरोवरों के जल में पोटाश तथा विभिन्न तत्वों के बाइकार्बोनेट, कार्बोनेट तथा सल्फेट अंतर्विष्ट हैं। इनमें से बहुतों के आसपास की मिट्टी में कुछ लवणों के साथ जिप्सम के क्रिस्टल भी प्राप्त होते हैं।

विलुप्त सरस्वती नदी

अभिनव भूवैज्ञानिक इतिहास की अवधि में अनेक नदियों ने अपने मार्ग परिवर्तित किए हैं तो कुछ पूर्णतया विलुप्त हो चुकी हैं। इसके कई भिन्न भिन्न कारण हो सकते हैं। सरिता के लुप्त होने के उत्तरदायी कारणों में से एक प्रमुख कारण अतीत के उस नदी प्रवाह मार्ग क्षेत्र का निर्जलीकरण है। एक ऐसी ही सरिता जो वर्तमान मरुस्थली के मरुस्थलीकरण से प्रभावित हुई, वह है ऋग्वेद की पौराणिक सरस्वती नदी जिसके संबंध में हिंदुओं की मान्यता है कि यह उन तीनों नदियों में से एक है जिसने यमुना तथा गंगा से मिलकर त्रिवेणी को बनाया—यह त्रिसंपर्क प्रयाग (इलाहाबाद) के निकट है। ऋग्वेद के एक स्तोत्र में सरस्वती का ठीक स्थान पूर्व में यमुना तथा पश्चिम में सतलुज नदी के मध्य में स्थापित किया गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सरस्वती नदी वैदिक काल में सिंधु नदी से भी बड़ी व विशाल नदी थी, लेकिन और बढ़ते हुए मरुस्थल ने उसे समाप्त कर दिया और उसके पश्चात वह विलुप्त हो गई। अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने इस नदी के मूल प्रवाह मार्ग को खोजने के प्रयास करके अनेक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। प्रसिद्ध अनुसंधानकर्ता एवं अन्वेषक सर ऑरेल स्टाइन ने अपने परिणामों को 1942 में प्रकाशित किया। सरस्वती नदी की विशाल उत्तराधिकारी घग्घर तथा उसकी सहायक नदियां शिवालिक शैलों से उद्गमित होकर, अम्बाला जनपद को पार करते ही अपनी

बहुवर्षी होने की होने की प्रवृत्ति खो देती हैं, इसके लगभग 80 किमी. नीचे सरस्वती अपने चौड़े बालुकामय प्रवाह मार्ग में मानसून के महीनों में कुछ समय के लिए प्रवाहित होती है। बीकानेर क्षेत्र में इसका शुष्क प्रवाह मार्ग 150 किमी. से अधिक दूरी तक कहीं भी 3 किमी. से कम चौड़ा नहीं है, और कुछ भागों में तो यह चौड़ाई 6.5 किमी. से भी अधिक है, यद्यपि जल की मात्रा लगभग नगण्य है। इसका पथ कटक के रूप में सतत बालू टिब्बों से घिरा हुआ है परंतु ये वास्तविक रूप में सरिता तट की रचना नहीं करते हैं। प्रवाह मार्ग में दृढ़ दोमट मृदा सामान्य दृष्टिगत होती है। पाकिस्तान में बहाबलपुर सीमा के निकट यह नदी थार मरुस्थल की बालू में पूर्णतया विलुप्त हो जाती है। पाकिस्तानी भूप्रदेश में इसे हाकरा नाम से जाना जाता है।

हाल में यमुना, सतलुज तथा सरस्वती नदियों के पुरा प्रवाह मार्गों को खोजने के प्रयास वैज्ञानिकों के एक समूह ने अहमदाबाद में किए हैं। उनके अनुसार अतीत में कुछ समय तक सतलुज नदी मूल रूप से घग्घर नदी की एक सहायक नदी थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि राजस्थान के गंगानगर जनपद में हनुमानगढ़ के पूर्व में दृष्टिगत एक शुष्क प्रवाह मार्ग सतलुज का ही प्राचीन प्रवाह मार्ग है। सतलुज के प्राचीन प्रवाह मार्ग के पश्चिम में स्थित अवनमन तथा पूर्व की ओर उसके अनुरूप उभार ने संभवतया सतलुज नदी को अपने वर्तमान प्रवाह मार्ग में प्रवाहित होने के लिए बाध्य किया होगा। घग्घर के पुराने तल से यह ज्ञात होता है कि इसकी प्रकृति सीधी रेखाओं में प्रवाहित होने की थी जो तीक्ष्ण कोणों द्वारा एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, तथा संभवतया इसी कारण से इसे वर्तमान प्रवाह मार्ग में प्रवाहित होने के लिए सामान्य विवर्तनिक संचलन की आवश्यकता हुई होगी और घग्घर के सूखने का यही कारण रहा होगा। वर्तमान सरस्वती नदी अधिकांशतया प्राचीन प्रवाह मार्ग में ही प्रवाहित होती है तथा पटियाला से 50 किमी. दक्षिण में शतरौन के निटक घग्घर के प्राचीन प्रवाह मार्ग में ही मिल जाती है। संभवतया घग्घर नदी, नारा नदी में प्रवाहित होकर सिंधु नदी में मिले बिना ही कच्छ की खाड़ी में मिल जाती है। पाकिस्तान में नारा नदी प्रवाह मार्ग में अब सख्खर नहरों में से एक नहर प्रवाहित हो रही है, परंतु, इसके कच्छ के रण में गिरने के पूर्व खाड़ी मुख से 100 किमी. ऊपर की ओर तक प्राचीन नारा नदी का प्रवाह मार्ग देखा जा सकता है।

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सरस्वती या घग्घर नदी ने हरियाणा-पंजाब सीमा पार जाखल से दक्षिण-दक्षिण पश्चिम का प्रारंभिक प्रवाह मार्ग अपनाया और हनुमानगढ़ की ओर मुड़े बिना पश्चिमी राजस्थान में प्रवाहित हुई और फिर बिना वर्तमान पाकिस्तान में प्रवाहित हुए—पचपेडरा और वहां से यह लूणी के वर्तमान प्रवाह मार्ग को अपनाकर कच्छ के रण में मिल गई। मरुस्थल के कुछ खंडों में पुरा प्रवाह मार्ग के परित्यक्त तथा दबे हुए चिह्न अभी भी देखे जा सकते हैं। मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ होते ही सरस्वती नदी का पथ परिवर्तन जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है, पश्चिम दिशा की

ओर हो गया, और इसके अनुवर्ती प्रवाह मार्ग भी बनते चले गए। पचपेडरा से लूणी एक तीव्र दाहिना मोड़ लेकर दक्षिण की ओर मुड़ती है परंतु किसी प्राकृतिक रोक या विवर्तनिक संरचना के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इससे इस विचार को बल मिलता है कि लूणी वास्तव में एक प्राचीन नदी, संभवतया सरस्वती की मात्र एक सहायक नदी रही होगी।

घग्घर या यमुना नदी में पुराने समय में और विभिन्न समयावधियों में एक काफी बड़ी नदी प्रवाहित होती थी और संभवतया यही मूल यमुना थी। अपने वर्तमान प्रवाह मार्ग को अपनाने के पहले संभवतया इस नदी ने तीन बार अपना प्रवाह मार्ग परिवर्तित किया है। ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दि में घग्घर ही एक मात्र नदी रही है।

थाल मरुस्थल

थाल मरुस्थल सिंधु तथा झेलम-चिनाब नदियों के बीच दोआब का निर्माण करता है; लवण पर्वतमाला इसकी उत्तरी सीमा है। थाल को 'सिंधु नदी का मरुस्थल' भी कहा जाता है। इसका उत्तरी सिरा 80-90 किमी. चौड़ा है परंतु दक्षिणी सिरा पतला होते हुए मात्र 20 किमी. चौड़ा ही रह जाता है, इसकी लंबाई उत्तर से दक्षिण तक लगभग 250 किमी. है तथा इसका क्षेत्रफल लगभग 18,000 वर्ग किमी. है। यह अधिकांशतया नीरस मरुस्थल है, जिसके मध्य भाग में, चलायमान बालू टिब्बे हैं लेकिन दक्षिणी भाग में अनेक नखलिस्तान हैं। पश्चिमी थाल बालू पहाड़ियों तथा अर्ध स्थायी टिब्बों से कटा हुआ है। यहां के छितरे हुए निवासी बालू पहाड़ियों के बीच के अनुदैर्ध्य अवनमनों या पट्टियों के बीच काफी लंबे समय से खेती करते आ रहे हैं। इस मरुस्थल के बड़े बड़े भागों में सिंचाई-नहर बनाकर खेती करने के प्रयास चल रहे हैं।

5

प्रायद्वीपेतर नदियां

भूमिका

यद्यपि मैदानों की प्रमुख नदियां हिमालय से ही उद्गमित हैं, परंतु वे सभी सिंधु-गंगा मैदानों की प्रमुख महत्वपूर्ण भूआकृतिक लक्षणों का निर्माण करती हैं। वास्तव में इन्हीं सरिता तंत्रों ने इन मैदानों को जैसे आज हैं वैसा बनाया है; क्योंकि इनकी अत्यधिक उपजाऊ भूमि सघन कृषि का आधार है, और यही मैदान इतिहास की महान सभ्यताओं का केंद्र रहे हैं।

यह एक अद्‌भुत तथ्य है कि भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग की बड़ी नदियां लगभग एक ही स्थान से उद्गमित हुई हैं, वस्तुतया ये एक-दूसरे से दसेक किलोमीटर के अंतर से तथा सभी जल विभाजिकाओं द्वारा पृथकृत हैं। तिब्बत के पवित्र मानसरोवर कुंड के पूर्व में स्थित कैलाश पर्वतमाला के हिमनद पूर्व की ओर प्रवाहित ब्रह्मपुत्र का जलस्रोत हैं। सिंधु नदी भी इसी पर्वतमाला से मानसरोवर (त्सो मफम या त्सो मवंग तिब्बती में तथा चीनी में मयम यूम को) उत्तर-पश्चिम से उद्गमित है तथा वहीं से उत्तर-पश्चिमी मार्ग ग्रहण कर लेता है जो त्सांगपो, जैसा कि तिब्बती में ब्रह्मपुत्र को कहा जाता है, और चीन वासियों ने जिसका पुनः नामकरण यारलुंग त्सांग बो जियांग किया है, के पूरी तौर से विपरीत दिशा में स्थित है। राकास झील (तिब्बती में लेंगाक त्सो तथा चीनी में लांगा को) जो मानसरोवर के पश्चिम में है तथा सतलुज नदी का स्रोत है, भी पश्चिमी मार्ग पर प्रवाहित है। भागीरथी और अलकनन्दा जो अपनी सहायक नदियों के साथ और नीचे उतरकर गंगा में मिल जाती हैं, का उद्गम स्रोत विशाल हिमालय की हिमाच्छादित पर्वतमालाओं में ही मानसरोवर से मात्र 100 किमी. दूर है।

कुछ हिमालयी सरिताएं पूर्ववर्ती नदियों (एंटिसीडेंट) के विशिष्ट उदाहरण हैं, अर्थात ऐसे स्रोत, जो अपनी घाटियों को गहरा करते हुए मूल प्रवाह मार्ग व दिशा को बनाए रखते हैं, जबकि पर्वतों के ऊपर उठने की प्रक्रिया प्रगति पर थी, और इस प्रकार वे उभरती हुई भूआकृति में स्थायी रूप से स्थापित हो गईं। ये नदियां, जो विवर्तनिक प्रक्रियाओं द्वारा हिमालय को ऊंचा उठाने से पहले की हैं और वास्तव में प्राचीन हैं,

इन्होंने पर्वतमालाओं में अपने प्रवाह मार्गों को इस प्रकार उत्कीर्ण किया है कि उनके पर्वत शिखर उद्गम स्तर से कहीं उठे हुए दृष्टिगत होते हैं। गहरी घाटियां या खड़े कगारों वाले गार्ज जो पर्वतमालाओं में काटे या उत्कीर्ण किए गए हैं, शीर्षोन्मुख अपरदन का परिणाम नहीं हैं जैसा कि प्रायद्वीपीय नदियों में दृष्टिगत होता है। बड़ी या छोटी हिमालयी नदियों के ये पूर्ववर्ती गार्ज विश्व के सबसे गहरे कटाव हैं। इनकी तुलना में स्विस आल्पस के गार्ज लगभग नगण्य हैं।

सिंधु, सतलुज तथा ब्रह्मपुत्र अपनी दिशा में तीक्ष्ण परिवर्तन करने के पूर्व पहली दो पश्चिम की ओर तथा तीसरी पूर्व की ओर लंबी दूरी तक प्रवाहित होती हैं और फिर ऊंची पर्वतमालाओं में गहरे संकरे दर्रे उत्कीर्ण करने के बाद मैदानों में उतर आती हैं। इनमें से कुछ गार्ज में गहरे चीरे के समान गैर 'V' आकार वाली घाटियों की पेंदी में दृष्टिगत होती हैं और इससे यह स्पष्ट होता है कि प्लायस्टोसीन तथा होलोसीन काल में इनके पुनर्युवन की गति काफी अधिक थी। उदाहरण के लिए सिंधु नदी ने मैदान में उतरने के पूर्व 5,000 मी. गहरी चट्टानों को पहले ऊर्ध्वाधर गार्ज और उसके बाद सीढ़ियों के एक क्रम के रूप में काटा है। सिंधु नदी सागर तल से 1,300 मी. की औसत ऊंचाई पर नंगा पर्वत, जो प्रवाह मार्ग से कुछेक किमी. दूर अपनी 8,125 मी. की ऊंचाई पर स्थित है, के उत्तर की ओर से प्रवाहित होती है। दोनों की ऊंचाई में यह अत्यधिक अंतर नदी की पूर्ववर्ती प्रकृति के कारण है तथा अभिनव काल में इसे उत्थान की प्रक्रियाओं से भी संपूरकता प्राप्त हुई है। हुन्जा नदी जो सिंधु की एक सहायक नदी है, 1,800 मी. के तल पर प्रवाहित होती है तथा मात्र चार किमी. दूर राका पोशी शिखर की ऊंचाई 7,788 मी. है। सतलुज नदी ऊंची जस्कार पर्वतमाला में शिपकी के निकट 1,800-2,000 मी. ऊंचे लंबवत संकीर्ण दर्रे द्वारा उत्कीर्ण एक अनुप्रस्थ गॉर्ज से प्रवेश करती है। कुमाऊं-नेपाल सीमा स्थित काली नदी मात्र 1,500 मी. की चाई पर नन्दादेवी (7,817 मी.) तथा अपी (7,132 मी.) शिखरों के मध्य पर्वतमाला का भेदन करती हुई प्रवाहित होती है। नेपाल की कई नदियों ने पर्वतमाला की नति दिशा के अनुरूप ही अपनी घाटियां काटी हैं। काली गंडक नदी, मात्र 1,200 मी. की ऊंचाई पर दाना के निकट मात्र 55 किमी. की दूरी पर स्थित धौलागिरि (8,172 मी.) तथा अन्नपूर्णा (8,078 मी.) पर्वत शिखरों के बीच प्रवाहित है। पूर्वी नेपाल में अरुण नदी का तल मात्र 1,800 मी. की ऊंचाई पर है, जबकि उत्तर क्षेत्र में एवरेस्ट पर्वत मकालू शिखर (8,848-8,481 मी.) तथा कंचनजंघा (8,598 मी.) की ऊंचाई से भव्यता प्रदान कर रहा है।

अधिकांश हिमालय क्षेत्र की नदियों के प्रवाह मार्ग नति दिशा तथा पर्वतमालाओं की संरचना द्वारा नियंत्रित हैं, केवल वही क्षेत्र अपवाद हैं जहां पर नदियों ने अपने पूर्ववर्ती चरण में पर्वतों को गहराई तक काट दिया है। उदाहरण के लिए सिंधु नदी उच्च हिमालय क्षेत्र में उत्तर-पश्चिम दिशा में नति दिशा संरेखित घाटी में प्रवाहित है, एवं

गिलगित के निकट यह उन दो पर्वतमालाओं, जो इसके ऊपर उठने के पूर्व प्राकृतिक संकीर्ण दर्रे बनाती हैं, से दक्षिण की ओर घूम जाती हैं। दूसरी ओर त्सांगपो भी उसी क्षेत्र से उद्गमित होकर, पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होती है और कहीं कम ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र से प्रवाहित होकर संधि रेखा क्षेत्र स्थित अवनमन का अनुसरण करती है। नामचे बारवा शिखर के निकट अचानक दक्षिण की ओर इसका दिशा परिवर्तन पूर्वी अक्षसंधि द्वारा ठीक उसी प्रकार नियंत्रित है, जिस प्रकार पश्चिम अक्षसंधि द्वारा सिंधु नदी नियंत्रित है। गढ़वाल से अरुणाचल हिमालय क्षेत्र की नदियां हिमनद आच्छादित पर्वतमालाओं की ढलानों का उपयोग करते हुए दक्षिण की ओर नीचे आती हैं तथा वे पर्वतों की पूर्व-पश्चिम की सामान्य नति दिशा को ग्रहण करते हुए सहायक नदियों से मिलती हैं। दोनों ही दशाओं में दिशाओं का नियंत्रण, विभिन्न प्रकार की ढलानों तथा प्रमुख संरचनाओं, जिनमें कभी कभी भ्रंश भी सहायक हैं, द्वारा ही किया जाता है। एक बार पर्वतीय क्षेत्र से मैदान में आ जाने के बाद यह दिशा नियंत्रण मैदानों की भूआकारिकी द्वारा किया जाता है।

गंगा सरिता तंत्र

उत्तरप्रदेश के उत्तराखंड मंडल में देवप्रयाग के निकट अलकनन्दा व भागीरथी मिलकर गंगा नदी को जन्म देती हैं। अलकनन्दा में पिंडर, मंदाकिनी, धौलीगंगा तथा बिशनगंगा तथा भागीरथी में भेलिंग नदियां मिलती हैं। ये सभी नदियां टेहरी-गढ़वाल पर्वतमाला स्थित ऊंचे हिमनदों तथा हिमावरित शिखरों से उद्गमित हैं। पर्वतमालाओं में अपने प्रवाहों के समय इन सबने आश्चर्यजनक अत्यधिक गहरे गार्ज को अपने कटे हुए विसर्प द्वारा उत्कीर्ण किया है। श्रीकांता एवं बंदरपूंछ शिखरों के मध्य तथा श्रीकांता से 6 किमी. पश्चिम तथा बंदरपूंछ से 13 किमी. पूर्व, अत्यधिक सीधा खड़ा बहुधा ऊर्ध्व भागीरथी गार्ज इनसे 4,000 मी. नीचे स्थित है। गंगा, हरिद्वार में मैदानी क्षेत्र में अवतरित होती है। अपनी प्रमुख सहायक नदी यमुना के साथ मिलकर एक विस्तृत जलोढ़क क्षेत्र, दोआब, अर्थात दो नदियों की बीच स्थित भूप्रदेश, की रचना करती है।

यमुना का अपना भी एक स्रोत हिमालय में स्थित है : वह है गढ़वाल के बंदरपूंछ शिखर पर भागीरथी के उद्गम स्थल के निकट स्थित यमुनोत्री हिमनदी। नागटिब्बा, मसूरी तथा शिवालिक पर्वतमालाओं को काटते हुए यह हिमाचल प्रदेश के पाओन्टा के और ऊपर मैदानी क्षेत्र में निकलती है। उच्च पर्वतीय क्षेत्र में इसकी बहिप्रवाही नदी टोंस, जो स्वयं भी बंदरपूंछ हिमनद से उद्गमित है, पर्वतीय क्षेत्र को छोड़ने से पूर्व यमुना में कलसी के ठीक नीचे मिलती है। हिमालय यात्रा की अवधि में दोनों नदियों ने अपनी खड़ी प्रवणता को बनाए रखा है। यमुना दक्षिण दिशा की ओर मैदानों में मथुरा तक प्रवाहित होती है, जहां से यह दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर मुड़कर पवित्र प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा में मिल जाती है। अपने उद्गम स्थल से गंगा में अपने विलय तक यमुना कुल लगभग

1,400 किमी. की यात्रा करती है। मैदानी क्षेत्र में यमुना एक मंथर गति से प्रवाहित जलस्रोत है।

यमुना वस्तुतया सिंधु सरिता तंत्र का ही एक भाग है। उत्तर प्लायस्टोसीन तथा प्रारंभिक होलोसीन की कालावधि में यह बीकानेर के उत्तर स्थित सूरतगढ़ के आसपास ही कहीं सरस्वती नदी से मिलकर घग्घर नदी,(पाकिस्तान में हाकरा नदी) के नाम से प्रवाहित होकर सिंधु नदी में मिल जाती है, या एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सीधे ही कच्छ की खाड़ी में गिरती है। प्राचीन यमुना नदी अरावली अक्ष के पास हुई विवर्तनिक विक्षुब्धता के कारण स्वतंत्र नदी न रहकर अंतिम रूप से गंगा की एक सहायक नदी बन गई है।

गंगा नदी की हिमालय से उद्गमित कई अन्य सहायक नदियों में घाघरा, गंडक एवं कोसी तथा कई अन्य छोटी छोटी नदियां हैं और वे भी जो प्रायद्वीपीय उच्च भूमि से प्रवाहित हैं जिनमें हैं—चम्बल, बेतवा एवं केन यमुना में मिलती हैं, और सोन नदी सीधे गंगा में मिलती है, लेकिन मैदानी क्षेत्रों में इन नदियों का मार्ग बहुत छोटा है। मैदानों में इन नदियों का प्रवाह मार्ग अत्यधिक सपाट हो जाने के कारण इनके किनारों पर द्रुमाकृतिक अपवाह नहीं होता है।

घाघरा नदी जो पश्चिमी नेपाल में करनैली नदी के नाम से विख्यात है, गंगा के मैदानों में अपने प्रवाह मार्गों के कारण अलग पहचानी जाती है। यह गुरला मान्धाता पर्वत शिखर जो तिब्बत में मानसरोवर के दक्षिण में स्थित है, के निकट से उद्गमित होती है। यह पहले दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित होती है और फिर दक्षिण-दक्षिण पश्चिम दिशा में उच्च हिमालय के संकरे दर्रों के एक अनुक्रम को पार करती है। अपने दक्षिण-पूर्वी मार्ग में यह एक विशिष्ट द्रोणिका से गुजरती है जिसके एक ओर गुरला मान्धाता (7,728 मी.) तथा दूसरी ओर अपी (7,132 मी.) स्थित हैं। घाघरा बिहार में छपरा जनपद के पास गंगा में मिलती है।

काली नदी भी बृहत हिमालय के पीछे स्थित उत्तुंग हिमनदों के हिम से उद्गमित होती है। यह पर्वतमालाओं से गुजरते हुए नेपाल व कुमाऊं के मध्य सीमा का निर्धारण करती है तथा उनमें विशाल खड्डों को उत्कीर्ण करती है। हालांकि उत्तरी भाग में इसके नदी स्तर की ऊंचाई समुद्र तल से लगभग 3,000 मी. है, अपी पर्वत शिखर पूर्व की ओर इसके ठीक सामने स्थित है। काली नदी के ऊंची हिमालय पर्वतमालाओं में कई संभरक हैं। जब यह टनकपुर के निकट मैदानी क्षेत्र में पहुंचती है तो यह शारदा (या चौका) नदी कहलाती है। उत्तरप्रदेश के सीतापुर बाराबंकी-बहराइच जनपदों के त्रिसंगम पर यह घाघरा में मिल जाती है।

गंडक नदी, जो बिहार के वैशाली जनपद स्थित हाजीपुर में घाघरा नदी के मुहाने से कुछ किलोमीटर नीचे की ओर गंगा में मिलती है, की भी अधिकांश सहायक नदियां नेपाल हिमालय में स्थित हैं। इनमें काली गंडक, बूढ़ी गंडक तथा त्रिशूली नदियां हैं। पर्वतमालाओं के अक्ष के निकट इनके नदी संस्तर की ऊंचाई मात्र 1,500-2,000 मी. है

जबकि निकटवर्ती पर्वत शिखरों की ऊंचाई 8,000 मी. तक है। उदाहरण के लिए काली गंडक की तलहटी की ऊंचाई 1,500 मी. है लेकिन धौलगिरि गिरिपिंड जो मात्र 6.5 किमी. दूर स्थित है, की ऊंचाई अत्यधिक रूप से 8,172 मी. है।

अरुण नदी हिमालय से उद्गमित तथा गंगा में कोसी नदी के नाम से मैदानों में मिलने वाली एक और अति महत्वपूर्ण नदी है। ऊंची पर्वत शृंखलाओं में अरुण नदी की कई शाखाएं हैं जिनकी जलापूर्ति गौरीशंकर-एवरेस्ट-मकालू-कंचनजंघा समूह के पर्वत शिखरों में स्थित हिमनदों से होती है। ऊपरी क्षेत्रों में इन सभी की दिशा हिमालय की दिशा के अनुप्रस्थ है और बड़ी बड़ी पर्वतमालाओं में अपना मार्ग बनाने के प्रयास में विशाल गार्ज की रचना करती है। इस स्रोत का सुदूरवर्ती भाग तिब्बत में शिशा पांग्मा शिखर (8,013 मी.) तक है। इस शिखर के उत्तर से अरुण पूर्व की ओर, और फिर एवरेस्ट-मकालू गिरिपिंड से उत्तर-पूर्व की ओर तथा यहां से यह दक्षिण की ओर झुकती हुई, संकरे मार्गों को उत्कीर्ण करती हुई, प्रवाहित होती है तथा उनसे केवल 25 किमी. पूर्व कंचनजंघा (8,598 मी.) के निकट दृष्टिगत होती है। इस खंड में इसका नदी तल मात्र 1,800 मी. ऊंचा है।

चम्बल नदी, मध्यप्रदेश के महू के पश्चिम स्थित उच्च भूमि से उद्गमित है तथा उत्तर-पश्चिमी प्रवाह मार्ग को लेती हुई अंत में उत्तरप्रदेश के इटावा जनपद में यमुना नदी में मिल जाती है। गांधी सागर जलाशय के निर्माण हेतु मन्दसौर के उत्तर में इसे बांध बनाकर रोका गया है। इससे कई छोटी बहिप्रवाही शाखाएं समाप्त हो गई हैं जो पूर्वी राजस्थान की उच्च भूमि तथा मध्य भारत पठार क्षेत्र से प्रवाहित थीं।

बेतवा नदी दक्षिण भोपाल पठार से उद्गमित होने के पश्चात उत्तरप्रदेश के हमीरपुर जनपद में यमुना से मिलती है। भानरेर पर्वतमाला से उद्गमित कई सहायक नदियों से मिलकर **केन नदी** बनती है। बेतवा नदी के मुहाने से लगभग 60 किमी. अनुप्रवाह में केन नदी यमुना में मिल जाती है। ये दोनों ही नदियां मुख्यतया विन्ध्य अवसादी तथा बुंदेलखंड ग्रेनाइट भूप्रदेश से होकर प्रवाहित होती हैं।

सोन नदी नर्मदा नदी के उद्गम स्थान से कुछ ही दूर स्थित पेंड्रा पठार से उद्गमित होती है। उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होने के पश्चात यह सारसी में समकोण पर घूमकर मध्यप्रदेश के जबलपुर, शहडोल तथा सतना जनपदों की सीमाओं के मिलन-स्थल से उत्तर-पूर्व दिशा ग्रहण कर लेती है। अंततः यह बिहार में डेहरी के पास गंगा में विलीन हो जाती है। अपनी इस यात्रा के अधिकांश भाग में यह नदी विन्ध्य के पठार के ऊपर ही प्रवाहित होती है।

यमुना के विपरीत गंगा एक गुंफित नदी है, जिसमें अनेक प्रवाह मार्ग तथा बालू रोधिकाएं हैं। दूसरी ओर यमुना खड़े कगार वाले तटों के मध्य प्रवाहित है जिसके तट तीव्र अवनालिका अपरदन से प्रभावित हैं, और चम्बल के साथ मिलकर यमुना नदी ने कुख्यात खड्डों को निर्मित किया है जो एक विस्तृत उत्खात भूप्रदेश है। घाघरा (सरयू) नदी भी एक तलोच्चनी नदी है और लगातार अपने प्रवाह मार्ग की एक चौड़ी पट्टी में

घटती-बढ़ती रहती है। कोसी हाल ही के वर्षों में चिंताजनक गति से अपना पथ परिवर्तन कर रही है। इस शताब्दी के प्रारंभ में इसने मैदान में उतरने के पश्चात पश्चिम की ओर खिसकना प्रारंभ कर दिया और कई छोटे छोटे स्रोतों के प्रवाह मार्ग का अभिग्रहण कर लिया और रास्ते में पड़ने वाली भूमि को भयंकर हानि पहुंचाई।

गंगा बंगाल के निचले भाग में अनेक छोटे छोटे स्रोतों को उत्पन्न करके प्रणाल व्यूह बनाते हुए पद्मा के नाम से जानी जाती है। एक-दूसरे को आड़े-तिरछे काटते हुए प्रवाह मार्गों के जाल ने डेल्टा में अनेक द्वीप बनाए हैं। इस प्राकृतिक रचना ने अत्यधिक घने जंगलों से आच्छादित सुंदरबन के दलदलों को जन्म दिया है जहां पर पीट के निर्माण के लिए आदर्श परिस्थितियां मिलती हैं। गोंडवाना काल के कोयला संस्तरों की उत्पत्ति समान परिस्थितियों में हुई है। गंगा डेल्टा क्षेत्र में किए गए वेधन कार्यों से अनेक दबे हुए पीट संस्तर जिनके बीच बीच में बालू तथा मृत्तिका निक्षेप हैं, प्रकट हुए हैं। इस अनुक्रम से यह स्पष्ट होता है कि अवसादन तथा पादप विकास बार बार एकांतरित रूप से हुए जिसमें यथार्थ सतह समुद्र से कभी दूर नहीं रही। यह डेल्टा बहुआयामी उत्पत्ति का क्षेत्र रहा है। गंगा का जल पूर्व की ओर सरक गया है; इसका मूल प्रवाह भागीरथी-हुगली प्रवाह मार्ग था, लेकिन अब मुख्य धारा मेघना-पद्मा जलस्रोतों से प्रवाहित हो रही है।

हिमालय की हिमाच्छादित पर्वतमालाओं के मध्य स्थित पवित्र गोमुख स्थल से उद्गमित तथा गंगा सागर, जहां गंगा पारंपरिक रूप में बंगाल की खाड़ी में विलीन होती है, यह नदी लगभग 2,500 किमी. की यात्रा पूर्ण कर चुकी होती है।

गंगा डेल्टा का अग्रभाग अत्यधिक दंतुरित चाप के आकार का है जिसकी लंबाई मेघना नदी के मुहाने से लेकर बांग्लादेश में हुगली के मुहाने तक लगभग 400 किमी. है। बृहत गंगा-ब्रह्मपुत्र तंत्र द्वारा परिविहित विशाल अवसाद राशि के निक्षेपण के परिणामस्वरूप गंगा, बंगाल की खाड़ी में 40-50 किमी. तक आगे बढ़ गई है। अवसादों की मात्रा का अनुमान लगभग 40,000 अरब घनमीटर प्रतिवर्ष है, जो संपूर्ण बंगाल की खाड़ी क्षेत्र को प्रतिवर्ष 2 मिमी. की मोटाई तक आच्छादित करने के लिए काफी है। डेल्टा छोटी छोटी वितरिकाओं तथा द्वीपों के एक जाल का बना है जो लगभग 75,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को आच्छादित किए हुए है। इसका अधिकांश भाग सघन वनों रायल बंगाल टाइगर के वास स्थान प्रसिद्ध सुन्दरबन द्वारा आच्छादित है। डेल्टा का अधिकांश भूभाग दलदल है जो उच्च ज्वार के समय सागर जल से प्लावित रहता है।

ब्रह्मपुत्र नदी

यह नदी तिब्बत में त्सांगपो कहलाती है और चीनी मानचित्रों में इसे यारलुंग झांग्बो जियांग के नाम से दर्शाया गया है। यह कैलाश पर्वतमाला के हिमनदों से उद्गमित है, जो जलविभाजिका के दूसरी ओर स्थित पश्चिम की ओर प्रवाहित सिंधु नदी के उद्गम से

लगभग 150 किमी. दूर तथा सतलुज के उद्गम स्थल से 35 किमी. दूर है। यह नदी पूर्व की ओर 1,100 किमी. की यात्रा सिंधुत्सांगपो संधि रेखा क्षेत्र से निर्मित अवनमन में करती है। यह संधि क्षेत्र दक्षिण की ओर हिमालय पर्वतमालाओं से तथा उत्तर की ओर कैलाश पर्वतमाला तथा उसके पूर्वी विस्तार म्याकुंगथागला पर्वतमालाओं द्वारा सीमाबद्ध है। अत्यधिक ऊंचाई पर होने के बावजूद त्सांगपो नदी तिब्बत में मंथर गति से नाव्य सरिता के रूप में एक चौड़ी घाटी में प्रवाहित होती है। इसका तल ट्रेडम (तेलाडुओमू) में 3,525 मी. की ऊंचाई पर, शिगात्से में 3,300 मी. की ऊंचाई पर तथा नामचे बारवा के उत्तर में 2,450 मी. की ऊंचाई पर है जहां से यह एक फंदे के आकार में दक्षिण की ओर घूम जाती है; परंतु जब यह असम घाटी के शीर्ष पर दृष्टिगत होती है तो सादिया में इसकी ऊंचाई तेजी से घटकर मात्र 135 मी. ही रह जाती है। इस यात्रा में त्सांगपो नदी में मुख्यतया उत्तर की ओर से कई सहायक नदियां मिलती हैं। इनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध स्रोत ल्हासा के पास का **ग्या छू** है जो त्सांगपो के बाईं ओर चुशूल (क्यूक्स्यू) में मिलता है। उत्तर की ओर से उद्गमित अन्य सहायिकाओं में **रागा झांम्बो** भी एक है जो पश्चिमी न्यानक्वेंगटांग के हिम से जलपूरित है और पूर्व की ओर त्सांगपो के समानांतर प्रवाहित है, परंतु यह जल विभाजिका के उत्तरी ओर स्थित है और **ग्यामडा छू** पिड्जोलिंग (पुंगोलिंग) में त्सांगपो में त्सेलहाड्जाग पर मिलती है और यहां पर यह 3 किमी. से अधिक चौड़ी है। हिमालय से उद्गमित होकर दक्षिण की ओर त्सांगपो में मिलने वाला एकमात्र महत्वपूर्ण स्रोत **न्यांग** है जो ग्यान्त्से (ग्यांग्जे) की व्यापार चौकी शिगात्से (किज्गाजे) पर स्थित है।

तिब्बत से होकर अपनी यात्रा के अंतिम चरण में ब्रह्मपुत्र नामचे बारवा शिखर के चारों ओर एक चक्कर लगाकर दक्षिण-पश्चिम की ओर तथा फिर दक्षिण की ओर अनेक लगातार क्षिप्रिकाओं के क्रम द्वारा पूर्वी हिमालय को काटकर दिहंग या सियांग गार्ज में प्रवाहित होती है और सादिया के निकट ऊपरी असम घाटी के डिब्रूगढ़ मैदानों में दृष्टिगत होती है। दिहंग गार्ज कहीं कहीं केवल 90 मी. ही चौड़ा है लेकिन नामचे बारवा (7,757 मी.) से 5,485 मी. नीचे है। सादिया से इसका मार्ग पश्चिमोन्मुखी होकर संकरी असम घाटी से प्रवाहित होती हुई दक्षिणावर्ती होकर बांग्लादेश में प्रवेश करती है। मैदान की लंबी यात्रा में अनेक छोटी सहायक नदियां शक्तिशाली ब्रह्मपुत्र नदी में विलीन हो जाती हैं। **लोहित** तथा **दिबांग** (या सिकांग) और कई छोटी सरिताएं पूर्वी हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र से उद्गमित होकर सादिया के निकट इसमें मिल जाती हैं तथा मानचित्र में उल्टे डेल्टा के आकार में दृष्टिगत होती हैं। हिमालय के उत्तरी भाग से भी अनेक सरिताएं ब्रह्मपुत्र में मिलती हैं। उनमें से कुछ मुख्य हैं—सुबनसिरी, कामेंग, मानस-मोरा मानस, गंगाधर, रैदा, धारला तथा तीस्ता। मानस-मोरा मानस अपवाह का एक बहुत जटिल तंत्र बनाती है, तथा अपने निचले भागों में दलदली भूमि का निर्माण करती है। असम घाटी में बहुत-सी सरिताएं ब्रह्मपुत्र में दक्षिण की ओर से भी मिलती हैं। इनमें बूढ़ी दिहंग, धनसिरी तथा कालांग प्रमुख हैं।

असम के अधिकांश भाग में ब्रह्मपुत्र का प्रवाह मार्ग गुंफित है और इन जलमार्गों तथा बालुई शोल सतत रूप से पथ परिवर्तन करते रहे हैं। अपनी सहायक नदियों द्वारा लाई गई बृहत जल राशि तथा गाद के कारण प्रतिवर्ष मानसून में इस नदी में भयावह बाढ़ आती है। बाढ़ द्वारा उत्पन्न तबाही तथा दुर्दशा के कारण ही ब्रह्मपुत्र को 'दुख की नदी' कहा जाता है।

ब्रह्मपुत्र गारो पहाड़ियों के पास दक्षिण दिशा में मुड़कर धुबरी के निकट बांग्लादेश में प्रवेश करती है और बांग्लादेश में गोआलुडों के पास गंगा में मिलकर अपनी 2,900 किमी. की यात्रा पूर्ण करती है, जहां से गंगा-ब्रह्मपुत्र मिलकर पद्मा नदी के नाम से जानी जाती हैं। अनुप्रवाह दिशा में लगभग 100 किमी. और नीचे पद्मा मेघना नदी का संगम होता है, जो असम के पर्वतीय क्षेत्र से उद्गमित होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। बंगाल के मैदानों से प्रवाहित होने के मार्ग में ब्रह्मपुत्र एक तलोच्चनी नदी है तथा इसका अंतर्ग्रंथन तंत्र है। यह लगातार अपना पथ परिवर्तन करती रहती है, तथा असम में कम प्रवणता होने के बाद भी इसकी अपरदन क्षमता अत्यधिक है। हाल ही के वर्षों में असम के मैदानों में इसका दक्षिण की ओर पथ परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस प्रक्रिया में इस नदी ने कामरूप जनपद के पलाशबाड़ी कस्बे को पूरी तरह से समाप्त कर दिया है तथा यह अब डिब्रूगढ़ तथा गोपालपाड़ा नगरों की ओर अग्रसर हो रही है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पथ परिवर्तन बांग्लादेश में हुआ है। जैसा कि 1785 में प्रकाशित रैनेल के मानचित्र में दर्शाया गया है, उस समय ब्रह्मपुत्र मैमनसिंह जनपद से होकर दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रवाहित होती थी जहांवह सुरमा नदी से मिलकर सीधे ही मेघना नदी में मिल जाती थी।

ब्रह्मपुत्र एक बहुत ही तरुणा नदी है और असम में इसका वर्तमान संरूपण असम घाटी में केवल चतुर्थ महाकल्प में विकसित हुआ है। अत्यधिक भूकंपीय क्षेत्र से प्रवाहित होने के कारण इसकी आकारिकी भूकंपजनित विवर्तनिक एवं भौगोलिक विक्षुब्धताओं से प्रभावित होती है। इस नदी का ऊपरी असम स्थित मजूली द्वीप देश में सबसे बड़ा द्वीप है, जो 90 किमी. लंबा तथा 20 किमी. अधिकतम चौड़ाई का है।

सिंधु नदी तंत्र

सिंधु नदी विश्व की बड़ी नदियों में से एक है जिसके नाम पर इस देश को नाम मिला है। सिंधु घाटी, अपनी अत्यधिक उपजाऊ भूमि व मैदान के कारण विश्व की प्राचीनतम सभ्यता—हड़प्पा का केंद्रबिंदु रही है। अपनी मुख्य सहायक नदियों—सतलुज, चिनाब, झेलम तथा रावी—से मिलकर यह पांच मुख्य नदियों का एक तंत्र बनाती है जिसके नाम पर पंजाब राज्य का नाम पड़ा है (पंज = पांच, आब = पानी)। सतलुज ही केवल एक ऐसी नदी है जो सीधे ही सिंधु नदी में मिलती है। झेलम तथा रावी आपस में चिनाब के साथ मिलती हैं जो बाद में सतलुज में मिल जाती हैं। यहां कुछ और भी नदियां हैं,

जिनमें कुछ काफी बड़ी हैं और इन्हीं पांच प्रमुख नदियों में मिलती हैं। पंजाब के मैदानों में इनमें से कई नदियों, विशेष रूप से सिंधु नदी ने कई स्थानों पर दो अथवा अधिक प्रवाह मार्ग बनाए हैं जिनके परिणामस्वरूप बड़े बड़े द्वीप तथा रोधिकाएं बन गई हैं। ये सरिताएं अधिक मात्रा में जल तथा अवसाद अपने साथ लाती हैं जिनसे कि दोआब (नदियों के मध्य की भूमि) बनते हैं जो अत्यंत उत्पादक तथा उपजाऊ कृषि भूमि है। पंजाब को ठीक ही भारत का अन्न-भंडार कहा जाता है।

पंजाब के प्रमुख दोआब हैं, व्यास तथा सतलुज के मध्य बिस्ट दोआब, व्यास एवं रावी के मध्य बारी दोआब, रावी व चिनाब के मध्य रेचना दोआब, चिनाब तथा झेलम के मध्य छज (या जेछ) दोआब तथा सिंधु तथा झेलम के मध्य स्थित थाल दोआब, जो कि एक बड़ा त्रिभुजाकार क्षेत्र या दोआब है तथा सिंध सागर दोआब भी कहलाता है। एक विशाल शुष्क मैदान होने के कारण इसे थाल मरुस्थल या सिंधु का मरुस्थल भी कहा जाता है।

सिंधु नदी का जन्म पश्चिम तिब्बत की कैलाश पर्वतमाला के हिमनदों से हुआ है, और वहां से यह लगभग 4,500 मी. की ऊंचाई पर उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है। भारत में प्रवेश के पश्चात भी यह लद्दाख तथा जस्कार पर्वतमालाओं के बीच भी लगभग 4,000 मी. की ऊंचाई पर इसी दिशा में प्रवाहित होती है। स्कार्दू से लगभग 50 किमी. पहले लगभग 2,700 मी. की ऊंचाई पर इसमें श्योक नदी मिलती है। स्कार्दू से 40 किमी. अनुप्रवाह दिशा की ओर लगभग 2,200 मी. की ऊंचाई पर सिंधु नदी 480 किमी. लंबी पूर्ववर्ती गार्ज में प्रवेश करती है। बुन्जी के उत्तर से यह दक्षिण की ओर एक तीखा मोड़ लेकर तरबला के निकट 400 किमी. ऊंचाई से मैदान में प्रवेश करती है। अपनी इस लंबी संकरे मार्ग वाली यात्रा में यह 4 मी. प्रति किमी. की औसत प्रवणता से 1,800 मी. नीचे गिरती है। तत्पश्चात दाहिनी ओर से अटक के निकट काबुल नदी इसमें मिलती है तथा पहले यह पोटवार के ऊंचे मैदान से प्रवाहित होकर बाद में लवण पर्वतमाला को पार करते हुए 2,900 किमी. लंबी यात्रा पूर्ण करके कराची के निकट अरब सागर में गिरने के पूर्व पंजाब व सिंधु के उपजाऊ मैदानों में प्रवाहित होती है।

श्योक, सिंधु नदी की एक महत्वपूर्ण सहायक नदी है, परंतु इसका लगभग सारा मार्ग उच्च हिमालय की गहरी खाइयों में होकर ही है, इसलिए यह अभिज्ञ है। यह कराकोरम पर्वतमाला के हिमनदों से उद्गमित होकर दक्षिण-पूर्व दिशा में लगभग 180 किमी. तक प्रवाहित होने के पश्चात एक केश-पिनाकार मोड़ लेकर उत्तर-पश्चिम दिशा में लगभग 300 किमी. तक सिंधु के समानांतर प्रवाहित होकर देवसाई पर्वत के उत्तर में किरिस के निकट सिंधु नदी में मिल जाती है। बाद के मार्ग में श्योक व सिंधु नदी लद्दाख पर्वतमाला द्वारा पृथक होती हैं। सियाचिन हिमनद से उद्गमित **नूब्रा नदी,** श्योक नदी की प्रधान सहायक नदी है। नूब्रा घाटी एक सपाट मैदान है जो केवल कुछेक किमी.

ही चौड़ा है, और दोनों ओर से ऊर्ध्वाधर खड़ी चट्टानों से सीमाबद्ध है, जो नदी से 1,200-1,500 मी. ऊंची है।

काबुल नदी, सिंधु नदी के दाहिने किनारे की एक और सहायक नदी है। यह उनाइ दर्रे के पास दक्षिण हिंदूकुश पर्वत से उद्गमित होकर खैबर दर्रे के उत्तर की ओर अफगानिस्तान-पाकिस्तान सीमा को पार करके अटक में सिंधु घाटी में मिल जाती है। पूर्वी अफगानिस्तान के जलालाबाद में काबुल नदी में, कुनार जो चित्राल क्षेत्र में यारखुन के नाम से जानी जाती है, मिल जाती है, यारखुन पूर्वी हिंदूकुश क्षेत्र के समस्त अपवाह को एकत्र करती है जहां वह तिरिचमीर शिखर के उत्तर-पश्चिम में है।

तिब्बती में लांगक्वेन के नाम से ज्ञात **सतलुज नदी** पश्चिमी तिब्बत स्थित मानसरोवर-राकास झीलों से उद्गमित है जो सिंधु नदी के उद्गम स्थल से 80 किमी. के भीतर स्थित है। यह भी तिब्बत-हिमाचल सीमा स्थित शिपकी दर्रे तक सिंधु नदी के समान ही उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है, फिर यह दक्षिण-पश्चिम दिशा ग्रहण करती है। तिब्बत के नरी खोरसान प्रांत में इसने कोलोरैडो के ग्रैंड कैनयान के समान ही घाटी में असंपीडित अवसादों में अभूतपूर्व कैनयान की रचना की है, तथा यहां इसका जलमार्ग 900 मी. गहरा है। यह भाखड़ा-नांगल बांध से अवरुद्ध गोविंद सागर झील के निर्माण के बाद पंजाब में रोपड़ के निकट मैदान में दृष्टिगत होती है। अपने प्रवाह मार्ग के इस भाग में सतलुज भी हिमालय के अनुदैर्ध्य दिशा में पूर्ववर्ती नदी के समान काटकर 1,525-3,570, मी. गहरी तथा 160 किमी. लंबे सीधे खड़े किनारों वाले गार्ज से होते हुए शिपकी तथा शिमला की उत्तर दिशा के बीच प्रवाहित होती है। शिपकी दर्रे पर नदी के प्रवाह की ऊंचाई लगभग 3,000 मी. है, जबकि 7 किमी. दूर स्थित लियो परगियाल पर्वत शिखर 6,791 मी. ऊंचा है। रामपुर घाटी में यह 1,200 मी. की ऊंचाई पर 18 किमी. दक्षिण दिशा में स्थित 5,234 मी. और 35 किमी. उत्तर स्थित लगभग 6,240 मी. ऊंचे पर्वत शिखरों के मध्य प्रवाहित होती है। लगभग 200 किमी. की यात्रा में भाखड़ा स्थल पर इसका स्तर केवल 850 मी. ही गिरा है। फिरोजपुर के निकट से फाजिल्का तक यह भारतीय तथा पाकिस्तानी पंजाब के बीच सीमारेखा बनाती है। पाकिस्तान के मिठनकोट से कुछेक किमी. पूर्व सतलुज सिंधु नदी में विलीन हो जाती है, लेकिन इससे 70 किमी. पहले यह चिनाब नदी के अपवाह को भी एकत्र कर लेती है। रोपड़ तथा मिठनकोट के बीच की लगभग 900 किमी. की दूरी में सतलुज एक अत्यंत सरल प्रवणता की स्थलाकृति वाले क्षेत्र से प्रवाहित होती है। इसकी कुल लंबाई लगभग 1,450 किमी. है। एक समय (लगभग दसवीं शताब्दी में) सतलुज मैदान में अपने प्रवाह मार्ग में पटियाला तथा बीकानेर से होकर प्रवाहित होती थी, और दक्षिण सिंधु में मिल जाती थी, परंतु अब यह मैदान को छोड़ पश्चिम की ओर मुड़कर व्यास में मिल जाती है।

व्यास नदी (संस्कृत में विपाशा) का उद्गम पीर पांजाल पर्वत शिखर के दक्षिणी

छोर पर रावी के उद्गम स्थल के निकट, रोहतांग दर्रे के पास होता है। लारजी में यह एक 900 मी. गहरे गार्ज में प्रवेश करती है जहां से यह पश्चिमोन्मुख होकर शिवालिक पहाड़ियों में प्रवाहित होती हुई पोंग के निकट मैदान में प्रवेश करती है और इसके बाद दक्षिण की ओर मुड़कर हरिके के निकट सतलुज में विलीन हो जाती है। यह बहुत छोटी मात्र 460 किमी. लंबी सरिता है, जो पूर्ण रूप से भारत में प्रवाहित है। व्यास नदी ऊर्जा उत्पादन व सिंचाई के लिए सुरंगों द्वारा सतलुज नदी से हिमाचल प्रदेश के मंडी जनपद में पान्डोन-बागी सुरंग (13 किमी.) तथा पूंग-स्लापर सुरंग (12 किमी.) से जोड़ी गई है। यह दोनों सुरंगें 12 किमी. लंबे खुले प्रवाह मार्ग द्वारा एक-दूसरे से अलग हैं।

चिनाब नदी (संस्कृत में असिकिनी) जस्कार पर्वतमाला के लाहौल-स्पिती भाग में बाड़ा लाचा दर्रे के निकट से उद्गमित होती है। दो छोटे स्रोत चंद्र तथा भागा दर्रे के दोनों ओर स्थित नदी शीर्ष स्रोत है। यह उत्तर-पश्चिम प्रवाह मार्ग अपनाती है और फिर किश्तवाड़ के पास दक्षिण की ओर एक तीखा मोड़ लेकर 290 किमी. लंबे विशाल गार्ज, जो कहीं कहीं 1,000 मी. तक गहरा है, में प्रवेश करके पश्चिम की ओर घूमकर जम्मू में रियासी के निकट मैदान में अवतिरत होती है। यहां से यह दक्षिण-पश्चिम दिशा में घूमकर पाकिस्तानी पंजाब के मैदान से होकर, लगभग 1,000 किमी. की दूरी तय करके पंजनद के निकट सतलुज में विलीन हो जाती है।

व्यास के हीं समान **रावी नदी** (संस्कृत में एरावती) भी पीर पांजाल पर्वतमाला की दक्षिणी ढलान से उद्गमित है, लेकिन मनाली के पश्चिम से से सतलुज तथा चिनाब के मध्य प्रवाहित होती है। पर्वतों के मध्य रावी का पथ बहुत छोटा है और यह माधोपुर के निकट मैदान में प्रवेश करती है। पंजाब के मैदान से प्रवाहित होते हुए कुल 700 किमी. की यात्रा करके यह पाकिस्तान पंजाब में रंगपुर के कुछ किमी. ऊपर चिनाब में मिल जाती है।

कश्मीर में बनिहाल दर्रे के पास पीर पांजाल पर्वतमाला में जन्म लेने वाली तथा 700 किमी. से अधिक लंबे मार्ग में प्रवाहित होने वाली **झेलम नदी** ट्रिमू (पाकिस्तान) में चिनाब में मिल जाती है। इसका प्रारंभिक प्रवाह दिशा उत्तर-पश्चिम में कश्मीर घाटी से होकर है। घाटी के शीर्ष पर स्थित बुलर झील से प्रवाहित होकर यह पश्चिम दिशा अपना लेती है। बारामूला के नीचे यह एक 100 मी. गहरा संकरा मार्ग, जिसकी दीवारें लगभग लंबवत हैं, बनाती है। मुजफ्फराबाद के निकट यह दक्षिण की ओर एक केश पिनाकार मोड़ लेती है तत्पश्चात 170 किमी. तक भारत-पाकिस्तान की सीमा बनाने के पश्चात मीरपुर के निकट यह पोटवार पठार पर दृष्टिगत होती है। दक्षिण की ओर लवण पर्वतमाला का चक्कर लगाकर यह उत्तरी पंजाब के मैदानों से प्रवाहित होने के बाद अंतिम रूप से चिनाब में मिल जाती है।

ये सभी नदियां मैदानों में ऐतिहासिक काल में भी अपने प्रवाहपथों का लगातार परिवर्तन करती रही हैं, इसके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। अनेक नगर जो कभी इन नदियों

के किनारे बसे थे, इन नदियों द्वारा इस प्रकार निगल लिए गए हैं कि उनका चिह्न भी मिल पाना लगभग असंभव है। झेलम, जैसा कि उसकी सहायक नदियों ने पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है, पहले दक्षिण-पूर्व दिशा में मूलरूप से चिनाब घाटी में वर्तमान प्रवाह मार्ग के विपरीत प्रवाहित होती थी, और इससे बिल्कुल विपरीत दिशा में मिलती है। चिनाब मुलतान के पूर्व में 1245 ईस्वी में प्रवाहित होती थी। व्यास उस समय इसके पुराने प्रवाह मार्ग से दिपालपुर में बहती थी, और झेलम, चिनाब तथा रावी मुलतान के उत्तर-पूर्व में मिलती थी, तथा ये सभी मुलतान से 45 किमी. दक्षिण में व्यास नदी में मिलती थीं। 18वीं शताब्दी की समाप्ति पर व्यास को सतलुज ने आत्मसात कर लिया। पहले, यह हरिके के निकट कपूरथला-फिरोजपुर के मध्य से प्रवाहित होती हुई चिनाब से पंजनद के ऊपर आधुनिक सतलुज के प्रवाहमार्ग के पश्चिम संरेखण के समानांतर प्रवाहित होती थी। इसके पुराने प्रवाह मार्ग को अभी सरलता से देखा जा सकता है। सतलुज एक समय में सीधे ही कच्छ के रण में गिरती थी। यह हाकरा नदी की एक सहायक नदी थी और पूर्वी नारा में प्रवाहित होती थी, परंतु इसने 1245 ईस्वी में उत्तरी दिशा को अपना लिया, और तब तक हाकरा नदी सूख चुकी थी। लगभग 1593 ईस्वी में सतलुज ने पुनः अपना प्रवाह मार्ग परिवर्तित किया। सन 1796 ईस्वी से नदी प्रवाह मार्ग में और भी कुछ परिवर्तन हुए हैं। अनेक स्थानों पर नदियों द्वारा छोड़े गए प्रवाह मार्ग आज भी भूपृष्ठ पर देखे जा सकते हैं।

सिंधु नदी एक सामान्य डेल्टा बनाती है जो लगभग चपटा है और जिसमें अनेक पुराने प्रवाह मार्ग हैं। यह तट के किनारे किनारे लगभग 200 किमी. तक विस्तारित है, और लगभग 7,800 वर्ग किमी. क्षेत्र को आच्छादित करता है। सघन वनाच्छादित गंगा नदीमुख की अपेक्षा कराची से लेकर नदी के मुहाने तक का एक बड़ा भाग दलदली व्यर्थ भूमि है जिसमें शायद ही कोई बड़ा वृक्ष उगता हो।

6

प्रायद्वीपीय पर्वतमालाएं

भूमिका

सामान्य

भारतीय भूविज्ञान के महत्वपूर्ण भाग को समुचित रूप से समझने के लिए प्रायद्वीप की आकारिकी तथा संरचना को समझना मुख्य रूप से इसलिए आवश्यक है कि यह उन शैलों से मिलकर निर्मित है जो मूल भूपृष्ठ तथा कुछेक प्राचीनतम अवसादों, जो अब कायांतरित हो चुके हैं, और इस पृथ्वी की सतह पर कभी बनाए गए थे, का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये अधिकतर नीची पहाड़ियों तथा पठारों से निर्मित हैं तथा इसके विशाल विस्तार को नदियों का एक जाल अपवाहित करता है। प्रायद्वीप की अधिकतर स्थलाकृति कच्छ की रण तथा निचले तटीय मैदानों को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ है।

तटीय मैदानों को छोड़कर प्रायद्वीपीय भाग को निम्नलिखित प्रमुख प्राकृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है :

1. मध्य उच्चभूमि
2. दक्षिण पठार
3. पूर्वी पठार
4. पूर्वी पहाड़ियां
5. पश्चिमी पहाड़ियां

मध्य उच्चभूमि

यह पर्वतीय प्रदेश का वह क्षेत्र है जो पश्चिम में अरावली पर्वतमाला तथा दक्षिण में सतपुड़ा पर्वतमाला द्वारा सीमांकित है जो विशाल मैदानी क्षेत्र को प्रायद्वीपीय पठारों से अलग करता है। अरावली पर्वतमाला दिल्ली से प्रारंभ होकर दक्षिण-पश्चिम दिशा में लगभग 700 किमी. की दूरी तक फैली है। अरावली के पूर्व में स्थित पूर्वी राजस्थान उच्चभूमि 250-500 मी. ऊंची, मुख्यतया प्राचीन क्रिस्टलीय शैलों से निर्मित है। मध्य

भारत पठार, वस्तुतया एक पठार है जिसकी शैलीय सतह मुख्यतया प्राचीन विन्ध्य अवसादों से ही निर्मित है जिसमें से चम्बल नदी ने एक गहरी व चौड़ी घाटी काटी है। बुंदेलखंड उच्चभूमि और भी पूर्व की ओर स्थित है, तथा प्राचीन अपरदित सतह, जो ग्रेनाइटीय तथा नाइसीय शैलों को काटकर बनी है, को प्रदर्शित करती है। मालवा पठार एक विशाल भूआकृतिक विशिष्टता है जो मुख्यतया लावा से ही निर्मित है ये उर्मिल पृष्ठ के चपटे शिखर वाले पहाड़ हैं जो विभिन्न नदियों मुख्यतया चम्बल, बेतवा तथा पारबती द्वारा विच्छेदित हैं। पठार के पूर्व में विन्ध्य स्कार्प भूमि, सपाट भूमि की एक शृंखला बनाती है, जो प्रमुखतया बलुआ पत्थर स्कार्प द्वारा एक-दूसरे से अलग हैं। विन्ध्य पर्वतमाला के पादक्षेत्र में नर्मदा घाटी स्थित है, जो विन्ध्य तथा सतपुड़ा शृंखलाओं के मध्य स्थित एक संरचनात्मक अवनमन है।

दक्षिण पठार

यह एक विशाल भूप्रदेश है जो प्रायद्वीप के अधिकांश भाग को, जो उत्तर में सतपुड़ा-मैकाला पर्वतमाला से प्रारंभ करके महाराष्ट्र पठार से होकर दक्षिण में तेलंगाना तथा कर्नाटक पठार तक विस्तारित है। सह्याद्री इसकी पश्चिमी सीमा है। महाराष्ट्र के पठार का अधिकांश भाग डेक्कन ट्रैप से आच्छादित है, जबकि आर्कियन क्रिस्टलीय शैलें शेष दक्षिण को घेरे हुए हैं। अधिकांश बड़ी प्रायद्वीपीय सरिताएं सह्याद्री पर्वतमाला से उद्गमित होने के बाद दक्षिण की पहाड़ियों में से ही प्रवाहित होती हैं।

पूर्वी पठार

इस क्षेत्र की स्थलाकृति दक्षिण की अपेक्षा कहीं अधिक विविधतापूर्ण है। इस क्षेत्र के प्रमुख पठार बघेलखंड तथा छोटा नागपुर हैं। इसमें महानदी द्रोणी तथा दंडकारण्य एवं अत्यधिक विच्छेदित गढजात की पहाड़ियां भी सम्मिलित हैं। बघेलखंड पठार के उत्तर की ओर सोन नदी तथा इसके दक्षिण में बलुआ पत्थर की अपनतिक पहाड़ियां तथा अभिनतिक घाटियां हैं, जो संभवतया अरावली के समान किसी प्राचीन पर्वत के अवशेष प्रतीत होती हैं। छोटा नागपुर पठार में तीन प्रमुख स्तर हैं जिनमें से ग्रेनाइट-नाइसीय शैलों वाला रांची पठार सबसे बड़ा है। छोटा नागपुर पठार के पश्चिम में दामोदर नदी प्रवाहित होती है जो महत्वपूर्ण गोंडवाना कोयला द्रोणियों को अपवाहित करती है। छोटा नागपुर के दक्षिण स्थित गढजात की पहाड़ियां खोंडालाइट तथा प्रोटेरोजोइक अवसादों से निर्मित हैं। सिमलिपाल गिरिपिंड प्रीकैम्ब्रियन शैलों द्वारा निर्मित एक विशिष्ट संरचना है जिसने 1,000 मी. की ऊंचाई प्राप्त की है। महानदी द्रोणी एक नीचा क्षेत्र है जो छत्तीसगढ़ शैलों से निर्मित है, जो दंडकारण्य तक विस्तारित है।

पूर्वी तथा पश्चिमी पहाड़ियां

इन पर्वतमालाओं में पूर्वी घाट तथा पश्चिमी घाट की पहाड़ियां सम्मिलित हैं जो निश्चित

रूप से तटीय पर्वतमालाएं हैं। महानदी तथा गोदावरी नदियों के मध्य स्थित पूर्वी घाट पर्वतों की एक लगभग अटूट शृंखला है, परंतु अपने दक्षिणी भाग में वे अलग अलग पहाड़ियों के रूप में दृष्टिगत होती हैं। पश्चिमी घाट या सह्याद्री पर्वतमाला अपेक्षाकृत एक अधिक नियमित शृंखला है। इनका उत्तरी भाग डेक्कन लावा से निर्मित है तथा ये पश्चिम तटीय मैदानों पर एक सीधी खड़ी दीवार से समान दृष्टिगत होते हैं परंतु इनके पूर्वी छोर पर सीढ़ी के समान रचनाएं दिखाई देती हैं। सह्याद्री के दक्षिणी भाग की स्थलाकृति अधिक विच्छेदित है, और यह ग्रेनाइट तथा नाइस के पिंडों के अपरदन को इंगित करती है। दक्षिण की समस्त विशाल नदियों का उद्गम स्थान सह्याद्री पर्वतमाला ही है।

संरचना

भारत का प्रायद्वीपीय खंड एक प्राचीन स्थायी शील्ड है जिसमें अपनी उत्पत्ति के समय आर्कियन काल से अब तक बहुत ही कम संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। इस शील्ड के आधारभूत ढांचे को रूप देने वाली चार प्रमुख क्षेत्रीय प्रवृत्तियां पहचानी गई हैं, जिन्हें एम. एस. कृष्णन (1953) ने निम्नवत अलग किया है :

1. राजस्थान की उत्तर-पूर्व—दक्षिण-पश्चिम झुकाव जो कि गुजरात में विस्तारित है, की एक शाखा खंभात (काम्बे) की खाड़ी से होती हुई लक्षद्वीप द्वीपसमूह तक तथा दूसरी आंध्रप्रदेश व कर्नाटक में विस्तारित है।
2. आंध्रप्रदेश का उत्तर उत्तर-पूर्व—दक्षिण-पश्चिम धारवाड़ झुकाव जो संभवतया अरावली झुकाव का दक्षिणी विस्तार रहा हो। धारवाड़ीय प्रभाव उत्तर पूर्वी आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु के सुदूर दक्षिण जनपद तथा उड़ीसा के पूर्वी घाटों की उत्तर-पश्चिम दिशा स्थित पश्चभूमि तक विस्तारित है।
3. उत्तर-पूर्व—दक्षिण-पश्चिम दिशा के पश्चिमी घाट, उत्तर-पूर्वी उड़ीसा से लेकर कृष्णा नदी तक फैले हुए हैं। उत्तरी भाग एक चौड़े प्रक्षेत्र में फैला है जिसके पश्चिमी भाग का झुकाव उत्तर-उत्तर-पूर्व—दक्षिण-पश्चिम है जैसा कि लौह अयस्क (कैरा) समूह तथा केओन्झार-बोनाइ-सिंहभूम क्षेत्र की लौह अयस्क पर्वतमालाएं प्रारूपित करती हैं। कड़प्पा द्रोणी की सीमा पर नेल्लौर क्षेत्र में यह झुकाव एक अवग्रहाकार (सिग्मॉयडल) वक्र है जो पूर्व की ओर हल्का-सा उत्तल है तथा जो अंत में मद्रास के निकट दक्षिण-पश्चिम दिशा ग्रहण करके कोयम्बतूर तथा नीलगिरि पहाड़ियों में पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम दिशा प्राप्त करती है। यह पट्टी धारवाड़ीय दिशा को काटकर दक्षिण में धारवाड़ दिशा पर अध्यारोपित है, तथा संभवतया उत्तर-पूर्व स्थित असम पठार तक सतत है।
4. पूर्व-उत्तर-पूर्व—पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम दिशा में विन्यस्त सतपुड़ा क्रम

> नर्मदा-सोन अपवाह क्षेत्र से प्रारंभ होकर उत्तरी बिहार तथा असम पठार के पश्चिमी भाग तक लगातार दृष्टिगत होता है। इसकी एक दक्षिणावर्ती शाखा मध्य भारत के नागपुर-छिंदवाड़ा-बालाघाट क्षेत्र में और सुदूर पूर्व में गंगपुर तथा सिंहभूम तक विस्तारित है। इनके मध्य का क्षेत्र समान झुकाव वाली ग्रेनाइट तथा नाइस से पूरित है। इसका पश्चिमी सिरा अरावली झुकाव में मिल गया प्रतीत होता है।

हालांकि डेक्कन एक स्थायी पिंड है, यह भी काफी विवर्तनिक अव्यवस्तताओं से समय समय पर प्रभावित हुआ है, यथा : गोंडवाना द्रोणी में भ्रंश, नर्मदा-सोन विभ्रंश, राजस्थान का प्रमुख सीमा भ्रंश तथा पश्चिमी तटीय भ्रंश आदि।

भारतीय शील्ड मूलरूप में गोंडवाना अवसादों, डेक्कन ट्रैप तथा तटीय मीसोजोइक-टर्शियरी निक्षेपों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की नाइस, शिस्ट, ग्रेनाइट, पुरा अजीवाश्मीय अवसाद तथा ज्वालामुखीय शैलों से निर्मित है। आर्कियन शैलें इस शील्ड क्षेत्र के लगभग तीन चौथाई भाग को घेरे हुए हैं।

संरचनात्मक प्रवृत्तियों तथा अश्मस्तरिकी विकास के आधार पर एस. एम. नकवी आदि ने प्रस्तावित किया (1974) कि आर्कियन-प्रारंभिक प्रोटेरोजोइक शैलों को छह क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है : 1. दक्षिण कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल का चार्नोकाइट क्षेत्र; 2. डेक्कन ट्रैप के नीचे का कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, दक्षिणी मध्य भारत, तथा महाराष्ट्र का धारवाड़ क्षेत्र; 3. राजस्थान का अरावली क्षेत्र; 4. मध्यप्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र; 5. बिहार का गंगपुर लौह अयस्क क्षेत्र, तथा; 6. पूर्वी घाट का चार्नोकाइट-खोंडालाइट क्षेत्र, उड़ीसा, तटीय आंध्रप्रदेश तथा दक्षिण-पूर्वी मध्यप्रदेश।

ये छह भूवैज्ञानिक क्षेत्र छह महाद्वीपीय केंद्रकों, जो वर्तमान भारतीय शील्ड के विकास की प्रारंभिक अवस्था में विकसित हुए, के समनुरूपी हैं। इन्हें तीन भूमि पिंडों में युग्मित किया जा सकता है : यथा 1. धारवाड़ आद्य महाद्वीप, 2. अरावली आद्य महाद्वीप, 3. सिंहभूम आद्य महाद्वीप, ये नर्मदा-सोन तथा नर्मदा गोदावरी विभ्रंशों द्वारा एक-दूसरे से पृथक हैं। पुराचुंबकीय आंकड़े यह प्रस्तावित करते हैं कि ये तीनों आद्य महाद्वीप विन्ध्य अवसादन के प्रारंभ होने के काफी पहले मध्य प्रोटेरोजोइक में एक-दूसरे से जुड़े थे। तब से ये एक महाद्वीप के समान व्यवहार कर रहे थे क्योंकि इनके खंडज अवसाद तथा मध्य प्रोटेरोजोइक और बाद के बेसाल्ट में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं था। महाद्वीप केंद्रक गभीरस्थ संरेखणों के साथ साथ एक-दूसरे में समाहित प्रतीत होते थे। धारवाड़, अरावली तथा सिंहभूम आद्य महाद्वीप वाई (Y) आकार के नर्मदा-सोन-गोदावरी संरेखण के साथ साथ समाहित होती हैं जो महानदी संरेखण के साथ समाहित है जो बाद में दो महाद्वीपीय केंद्रकों के बीच के सिंहभूम आद्य महाद्वीप की विभ्रंश घाटियां बनीं।

प्रमुख पर्वतमालाएं

अरावली पर्वतमाला

विश्व की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक, अरावली पर्वतमाला प्राचीनतम भूअभिनतियों में से एक के स्थल को भी इंगित करती है। यह एक विशाल जल विभाजिका है जो गंगा सरिता तंत्र को सिंधु सरिता तंत्र से पृथक करती है। यह पूर्वी राजस्थान को पश्चिमी राजस्थान के मैदानों से अलग करने वाले अवरोध का भी कार्य करती है। यह दिल्ली से उत्तर-पूर्वी-दक्षिण-पश्चिम दिशा में राजस्थान से होती हुई उत्तरी गुजरात तक लगभग 700 किमी. में फैली है। इस पर्वतमाला के कुछ भाग तो 1,000 मी. से भी ऊंचे हैं, परंतु सामान्य ऊंचाई मात्र 400-600 मी. तक ही है। संभवतया अरावली एक हार्स्ट है, जिसमें दो भ्रंशित क्षेत्र इसके दोनों किनारों पर स्थित हैं, जो विन्ध्य काल में जलमग्न रहे हैं। इस शृंखला की भित्तियां क्वार्टजाइट संगुटिकाओं तथा मिट से निर्मित हैं। जबकि फिलाइट के अपरदन से होकर घाटी का निर्माण हुआ है। अरावली के उत्तर-पूर्वी तथा दक्षिण-पश्चिमी खंड दोनों ही ओर पंखे के समान खुले हैं। इनमें से पहले में अलवर तथा तोरावटी की पहाड़ियां सम्मिलित हैं तथा दूसरे में मेवाड़ की पहाड़ियां हैं। उत्तर-पूर्वी पंखे में कठोर अलवर क्वार्टजाइट चपटी घाटी वाली एकनतिक कटक का निर्माण करते हैं, जबकि अजबगढ़ फिलाइट ने काटकर घाटियां बनाई हैं। इस पंखे का हैंडिल अलवर क्वार्टजाइट की संकरी कटकों से बना है जिनमें कई स्थानों पर रुकावटें या वायु अंतराल हैं। दक्षिणी पंखा अरावली क्वार्टजाइट की वलयित पहाड़ियों का बना है जिसमें नरम अजबगढ़ शिस्ट की गहरी घाटियां एकांतरित हैं जिससे घाटी व कटक प्रकार की स्थलाकृति विकसित हुई है। यह अजबगढ़ कैल्क शिस्ट के अत्यधिक विच्छेदित पठारों को अपने में समाहित किए हुए है। पर्वतमाला के मध्य में 600-900 मी. ऊंची एक अभिनतिक पहाड़ी है। इस शृंखला के दक्षिणी-पश्चिमी किनारे पर एक ग्रेनाइटीय बैथोलिथ है जो आबू पहाड़ी के नाम से जाना जाता है जो अरावली पर्वतमाला का उच्चतम भाग है; यह गुरु शिखर 1,722 मी. की प्रभावशाली ऊंचाई लिए हुए है।

अरावली समप्राय भूमि पूर्व-क्रिटेशस काल में बनी थी, लेकिन बाद में यह मध्य भाग में कुछ अनआवलित तथा विच्छेदित हो गई हालांकि पश्चिमी राजस्थान का काफी बड़ा भाग निम्न उच्चावच वाला एक समप्राय भूभाग ही है। संरचनात्मक रूप से अरावली तथा दिल्ली महासमूह की शैलों का एक सघन प्रवलित समभिनति है जिसमें परवर्ती वलय का क्रोड भाग लगभग 750 किमी. तक है और दिल्ली से ईदर तक इसकी दिशा उत्तर पूर्व-दक्षिण-पश्चिम है। इसकी दक्षिण-पूर्व की ओर वक्रित सीमा राजस्थान का बृहत सीमा भ्रंश है, जिसके कारण विन्ध्य महासमूह, अरावली महासमूह के प्रतिकूल है। कुछेक अपवादों को छोड़कर, विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण की पहाड़ियां, मात्र प्रमुखता या केवल

पुरांतःशायी हैं जबकि इनके आसपास के समस्त भाग इन क्षेत्रों द्वारा लंबे समय तक अनाच्छादन के कारण अदृश्य हो गए हैं। इनमें से कई पहाड़ियां तो दो विपरीत अपवाहों के मध्य मात्र कटक होकर रह गई हैं। यह वह स्थिति है जिसने सर्वप्रथम इनकी प्रवृत्ति को निर्धारित किया और फिर इनको पहाड़ियों के रूप में परिरक्षित किया।

अरावली से शायद ही कोई उल्लेखनीय नदी उद्गमित होती है। लूणी नदी तथा उसकी छोटी छोटी सहायक नदियां ही इससे उद्गमित होकर पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं। बनास तथा इसकी कुछ सहायिकाएं इस पर्वतमाला के पूर्वी ओर से प्रवाहित होती हैं।

विन्ध्य पर्वतमाला

गांगेय या विशाल मैदान के दक्षिण में शृंखलाओं की एक माला अचानक एक के ऊपर एक दैत्याकार सीढ़ियों के रूप में खड़ी हो गई है जिसकी प्रत्येक सीढ़ी लगभग सपाट पठार बनाती है। विन्ध्य महासमूह के सेमरी, कैमूर, रीवा तथा भाण्डेर समूह लगभग समतल कठोर, क्वार्टजाइटीय बलुआ पत्थर मुख्य उत्तराभिमुख अपरदन कगार बनाते हैं जो लगभग पूर्व-पश्चिम दिशा में संरेखित गहरे और लंबे गार्ज द्वारा विच्छेदित है। विराट विन्ध्य पर्वतमाला, कैमूर तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश की विन्ध्याचल की पहाड़ियां उत्तर-पूर्वी मध्यप्रदेश के भाण्डेर (मानटेर) पठार तथा प्रमुख स्कार्प जो सोन और नर्मदा घाटियों के एक तीव्र वक्र के रूप में 800-1,400 मी. की ऊंचाई पर है, से मिलकर बनी हैं। विन्ध्य पहाड़ियों की सामान्य ऊंचाई 300 से 650 मी. है। पर्वतमाला का पश्चिमी भाग मुख्यतया डेक्कन ट्रैप से ही निर्मित है। विन्ध्य शैलों की समप्राय स्थलाकृति बाद के लावा प्रवाहों में दब गई और अब वह उत्खनित होने की प्रक्रिया से गुजर रही है। विन्ध्य पर्वतमाला के अधिकांश स्रोत उत्तर की ओर प्रवाहित होते हैं, जिनमें से कुछ ने मोहक जल प्रपातों की रचना 150 मी. तक गहरे गार्ज के शीर्षों पर की है।

यमुना की कई सहायक नदियां—यथा चम्बल, बेतवा, धसान तथा केन—विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिणी कगार के निकट से अर्थात नर्मदा घाटी के 50 किमी. से कम ही दूरी पर उद्गमित होती हैं। सोन नदी तो अधिकांशतया कैमूर पहाड़ियों में ही प्रवाहित होती है।

सतपुड़ा पर्वतमाला

विन्ध्य उच्चभूमि के दक्षिण तथा उसके लगभग समानांतर, नर्मदा घाटी व ताप्ती नदी के संकरे मार्ग से सीमाबद्ध क्षेत्र में सतपुड़ा पर्वतमाला विकसित है, जो पश्चिम में राजपीपला पहाड़ी से प्रारंभ होकर, महादेव पहाड़ियों से होती हुई, मैकला पर्वतमाला तक विस्तारित है। अधिकांश पहाड़ियां, डेक्कन ट्रैप से बनी हैं तथा उनकी ऊंचाई 900 से 1,000 मी. तक है। इस पर्वतमाला के सर्वोच्च शिखर अष्टाम्बा डोंगर शिखर 1,325 मी.

तथा घूपगढ़ शिखर 1,350 मी. की ऊंचाई के हैं। डेक्कन लावा प्रवाह के पश्चात जैसा कि ट्रैप में 20° की नति से स्पष्ट होता है कि ये पहाड़ियां विवर्तनिक विक्षुब्धता से प्रभावित हुई हैं। महादेव पहाड़ियां अधिकांशतया गोंडवाना शैलों से बनी हैं जबकि मैकाला पहाड़ियां प्रमुखता से डेक्कन लावा जिनमें कुछ नाइसीय नवांतःशायी (इनलायर) हैं, से निर्मित हैं। मैकाला पर्वतमाला ही नर्मदा, सोन, महानदी तथा बाणगंगा नदियों का जलशीर्ष है।

600-900 मी. की सामान्य ऊंचाई पर उत्तर की ओर सतपुड़ा स्कार्प पठारों का एक क्रम बनाता है। सतपुड़ा के पश्चिमी भाग में स्थित खड़े कगारों वाला डेक्कन ट्रैप खंड, खंडवा-बुरहानपुर क्षेत्र में 360 मी. नीचे धंस जाने से बने विदर में संभवतया अतीत में कभी नर्मदा नदी प्रवाहित होती रही होगी जो आज ताप्ती नदी द्वारा आच्छादित है। ताप्ती ही महादेव पर्वतों से उद्गमित होने वाली एकमात्र मुख्य सरिता है।

सतपुड़ा पर्वतमाला के पूर्व में, छोटा नागपुर की पहाड़ियां बंगाल द्रोणी के किनारे राजमहल पहाड़ियों में समाहित हो जाती हैं। हजारीबाग पहाड़ियां नाइसीय छोटा नागपुर पठार से लगभग 1,000 मी. तक ऊंची हैं, लेकिन अधिक विस्तृत रांची पठार कुछ मोनैड्नाक्स के साथ लगभग 600 मी. ऊंचा है। राजमहल पहाड़ियां अधिकांशतया बेसाल्टीय हैं।

पश्चिमी घाट

सह्याद्री पर्वतमाला—एक अयथार्थ नाम क्योंकि यह पर्वतमाला न होकर एक स्कार्प का शिखर मात्र है जो 11° से 21° उत्तर देशांतर स्थित प्रायद्वीप के पश्चिमी तट के समानांतर लगभग अटूट शृंखला के रूप में स्थित है और सामान्यतया पश्चिमी घाट के नाम से जाना जाता है। घाट का उत्तरी भाग डेक्कन लावा की समतल परतों से मिलकर बना है, जिन्होंने अपरदन के पश्चात विशिष्ट टैपीय दृश्यावलि को बनाया है, जो विकट परंतु अत्यधिक विच्छेदित भित्ति के समान संकरे पश्चिम तटीय मैदान के ऊपर स्थित हैं, परंतु पूर्व में एक के बाद एक सीढ़ी के रूप में उतरी हैं। ये 1,200 मी. तक की ऊंचाई प्राप्त कर चुकी हैं लेकिन कुछ शिखरों ने काफी अधिक ऊंचाई भी प्राप्त की है; इनमें सबसे ऊंचा है इगतपुरी के निकट काल्सूबाई शिखर (1,646 मी.) तथा दूसरा नासिक से 90 किमी. उत्तर में स्थित सल्हार शिखर (1,567 मी.)। कगार एक सामान्य अपरदन विशिष्टता नहीं है, कुछ भूवैज्ञानिकों के अनुसार, वह उस विस्तृत प्रदेश में सोपानी (एनएशलान) गहरे भ्रंशों की स्थिति का संकेत मात्र है। उपग्रह छायाचित्रों द्वारा उत्तर-पश्चिम—दक्षिण-पश्चिम दिशा में घाटों की प्रवृत्ति के अनुरूप सघन भ्रंश दृष्टिगत हुए हैं। इस कगार के पश्चिम में स्थित निचली भूमि में एक 360 किमी. लंबा क्षेत्र है जो तट के लगभग समानांतर है और जिसमें 33 उष्ण जलस्रोत ज्ञात किए गए हैं और इनको भ्रंश की उपस्थिति का सूचक माना गया है। ऐसा माना गया है कि ये संरचनात्मक

विशिष्टताएं जो उत्तर से उत्तर-पश्चिम तक विस्तृत हैं भारत के उत्तर की ओर संचलन के कारण हैं जिसने उत्तराभिमुख संपीडन को जन्म दिया। उत्तर उत्तर-पूर्व की ओर झुके भ्रंश संभवतया वाम पार्श्विक अपरूपण द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं जो भारतीय प्लेट के वामावर्त घूमने के कारण हो सकते हैं।

मध्य सह्याद्री 16° उत्तर अक्षांश के थोड़ा-सा दक्षिण से प्रारंभ होकर नीलगिरि पहाड़ियों तक विस्तृत है। ग्रेनाइटीय नाइसों की बनी इसकी स्थलाकृति ऊबड़-खाबड़ है। पश्चिम की ओर प्रवाहित जलस्रोतों के शीर्शोन्मुख अपरदन के कारण पश्चिमी स्कार्प काफी विच्छेदित हैं। घाट के इस भाग की समान्य ऊंचाई 800-1,000 मी. तक है परंतु यहां सर्वोच्च शिखर वावुलमाला ने 2,339 मी. की उच्चता प्राप्त की है। नीलगिरि जो कठोर चार्नोकाइट से निर्मित है पश्चिमी घाट तथा पूर्वी घाट का संगम स्थल है। यह अचानक ही 2,000 मी. से अधिक ऊंचा हुआ, जो इसके दो सर्वोच्च शिखरों, डोडा बेट्टा (2,637 मी.) तथा माकुर्ती (2,554 मी.) से स्पष्ट है। नीलगिरि पहाड़ियों में अरीय अपवाह है।

घाटों का दक्षिणी भाग मुख्य सह्याद्री पर्वतमाला से पालघाट (गैप) द्वारा पृथकृत है, इसके और दक्षिण में अनेक क्रिस्टलीय शैलों वाले चपटे शिखर की पहाड़ियां स्थित हैं। दक्षिण सह्याद्री की पहाड़ियां तीन भिन्न भिन्न दिशाओं में विकिरित हैं। अनाइ मुडी (2,695 मी.) जो दक्षिण भारत में सर्वोच्च ऊंचाई पर है, में उत्तर में अन्नामलाई, उत्तर-पूर्व में पालनी, तथा दक्षिण में एलाइमलाई (इलायची पहाड़ियां) स्थित हैं। घाट भारत के दक्षिणी छोर पर कन्याकुमारी में समाप्त होते हैं।

पश्चिमी घाट प्रायद्वीप की सभी बड़ी प्रमुख नदियों तथा कई छोटी नदियों के जलशीर्ष होने के कारण विशिष्ट हैं। ये सब पूर्व की ओर प्रवाहित हैं, तथा प्रायद्वीपीय शील्ड में सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा करके अंत में अपना सब जल बंगाल की खाड़ी में गिराती हैं। सह्याद्री स्कार्प के पश्चिमी पार्श्व पर तीव्रगति से प्रवाहित स्रोतों ने अनेक दंतुरण बनाए हैं, ये स्रोत संकरे पश्चिम तटीय मैदान में थोड़ी दूर तक प्रवाहित होकर संकरे मुहानों तथा संकरी खाड़ियों (क्रीक) से होते हुए अरब सागर में अपना जल विसर्जित करते हैं। इनमें से कुछ सरिताओं पर मोहक जल प्रपात भी हैं।

पालघाट विदर

पश्चिमी घाट की लंबी शृंखला में मालाबार में पालघाट के निकट आए अचानक व्यवधान को पालघाट विदर कहते हैं। पर्वतमालाएं इस विदर के दोनों ओर अचानक रुक गई हैं। यह विदर 30 किमी. चौड़ा है और इसकी ऊंचाई 75-300 मी. तंक है। यह देश के इस भाग की भूआकृतिकी की एक ऐसी विलक्षण विशिष्टता है जिसने काफी लंबे समय तक भूवैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किए रखा है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में बहुत से स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए गए हैं। इस विदर के दोनों ही ओर

भ्रंशन का कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। एक दृष्टिकोण के अनुसार विपरीत दिशाओं में प्रवाहित स्रोतों के शीर्षोन्मुख अपरदन ने इस क्षेत्र में निम्न भूमि की रचना में योगदान दिया और इस विदर का निर्माण पश्चिमी तट के खंड भ्रंशन के समय से और सागर के इस क्षेत्र में संभावित प्रवेश के समय से ही प्रारंभ हो गया था। एक अन्य विचार के अनुसार, इस विदर के निर्माण का नियंत्रण तिरुचिरापल्ली जनपद स्थित प्रमुख पश्चिमाभिमुख झुकाव वाली अपनतिक संरचना है जो कावेरी घाटी के संरेखण में है और पालघाट क्षेत्र से होकर विस्तारित है। नदीय व सागरीय अपरदन ने बढ़ावा दिया और इसे तराशने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भूभौतिकी सर्वेक्षणों ने यह प्रमाणित किया है कि इस भाग में मृदा आच्छादन बहुत छिछला है तथा आधार शैल अपक्षयित तथा कमजोर है, जिसे हटाने की प्रक्रिया को अपक्षरण तथा अपरदन ने तीव्र करके पालघाट विदर को जन्म दिया है।

पूर्वी घाट

पश्चिमी घाट की सतत भव्यता के पूर्णतया विपरीत अत्यधिक टूटी हुई पर्वत शृंखला उड़ीसा में महानदी से प्रारंभ होकर तमिलनाडु में वागाई में तथा प्रायद्वीप के पूर्वी पार्श्व के लगभग समानांतर और बंगाल की खाड़ी के किनारे तटवर्ती भाग के पीछे समाप्त होती है। यह छिन्न-भिन्न रैखिक समुच्च्य सामूहिक रूप से पूर्वी घाट कहलाती है। प्रत्येक समूह की अपनी अलग पहचान है जो चौड़ी घाटियों द्वारा विच्छेदित है। पूर्वी घाट को उत्तरी भाग तथा दक्षिणी भाग में विभाजित किया जा सकता है तथा यह विभाजक सीमा रेखा गोदावरी घाटी के दक्षिण में कहीं स्थित है। वास्तविक पर्वत प्रकृति केवल उत्तरी भाग में ही परिलक्षित है, जबकि दक्षिणी भाग का प्रतिनिधित्व मुख्यतः छितरी हुई पहाड़ियां ही करती हैं। समस्त पहाड़ियां उन स्रोतों द्वारा जो बंगाल की खाड़ी में या तो सीधे पूर्व की ओर प्रवाहित होकर या बहिप्रवाही सरिता के समान पश्चिमी या दक्षिणी मार्ग अपनाकर उन नदियों में प्रवाहित होते हैं जो स्वयं भी अंत में बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं, अत्यधिक विच्छेदित हैं।

पूर्वी घाट (उत्तर) में मालिया तथा माडगुला कोंडा पर्वतमालाएं सम्मिलित हैं। खोंडमाल पहाड़ियां इसके उत्तरी सिरे का तथा राम्पा पहाड़ियां इसके दक्षिणी सिरे का निर्माण करती हैं। खोंडमाल पहाड़ियों को उनका यह नाम खोंडालाइट शैलों से मिला है जिन्होंने मालिया पहाड़ियों के शिखरों तथा कटकों की रचना की है, जिनकी सामान्य ऊंचाई 900-1,200 मी. तक है परंतु इसकी कुछेक चोटियां काफी ऊंची हैं तथा उनमें महेन्द्रगिरि शिखर 1,501 मी. ऊंचा है। यह जानकारी भी रोचक होगी कि किसी समय महेन्द्रगिरि के नाम से पूरे पूर्वी घाट को जाना जाता था। इसके निचले भागों में आर्कियन नाइस विकसित हुई हैं।

माडगुला कोंडा पर्वतमाला की भी ऐसी ही भूवैज्ञानिक स्थिति है, लेकिन कोंधन

पहाड़ियों के पश्चिमी किनारे पर चार्नोकाइट विकसित हैं जो कालाहांडी द्रोणी से गोदावरी गार्ज तक विस्तारित हैं। माडगुला कोंडा की सामान्य ऊंचाई मालिया की अपेक्षा अधिक है। यह ऊंचाई 1,100-1,400 मी. तक है, इसके प्रमुख शिखर—आर्मा कोंडा (1,680 मी.), गली कोंडा (1,643 मी.) तथा सिंक्रम गुटा (1,620 मी.) है। इसका दक्षिण भाग अर्थात राम्पा पहाड़ियां गोदावरी नदी के एक संकरे अनुप्रस्थ गार्ज द्वारा काट दी गई हैं जो लगभग 60 किमी. लंबी बड्डीगुडम से थोड़ा-सा पूर्व तथा पोलावरम के मध्य स्थित है तथा दोनों पार्श्वों में छोटी पपीकोंडा पहाड़ियों से घिरी हुई है। यह गार्ज गोदावरी की पूर्ववर्ती नदी की प्रकृति का पूर्ण रूप से परिचायक है।

गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के मध्य का सपाट भूमि (सैडल) भाग गोंडवाना संरचना द्वारा आच्छादित है जो खोंडालाइट तथा नाइस के ऊपर स्थित है। कृष्णा नदी का विशिष्ट विसर्पण जो कड़प्पा अवसादी शैलों में, श्रीसैलम पठार की इर्ला कोंडा शिखर के पास से, नागार्जुन सागर तक गभीरस्थ है, बाद में इस क्षेत्र के उत्थान की ओर इंगित करता है।

चापाकार नाल्लामलाई पर्वतमाला तथा बेलिकोंडा की टूटी हुई पर्वतमाला जो अग्र भाग में स्थित है, तथा सगिलेरू घाटी द्वारा अलग है कम ऊंचाई (600-850 मी.) की हैं तथा पूर्वी घाट के शीर्ष (दक्षिण) में स्थित हैं। ये अभिलक्षित रूप में प्रीकैम्ब्रियन काल की कड़प्पा तथा कुरनूल शैलों द्वारा निर्मित हैं। इनके दक्षिण स्थित पहाड़ियां तथा पठार बहुत कम ऊंचाई के हैं, केवल जवदी पहाड़ियां तथा शेवराय (शेरवरयार मलाई) कलरायण पहाड़ियां ही दो विशिष्ट संरचनाएं बनाती हैं जिनकी सामान्य ऊंचाई पलार तथा कावेरी के बीच लगभग 1,000 मी. है। चार्नोकाइट तथा क्रिस्टलीय शैलें यहां अनावरित हैं। कावेरी तथा यागाई के बीच स्थित करन्दमाला तथा सिरुमाला जैसी छोटी पहाड़ियां पूर्वी घाट का सुदूर दक्षिणी सिरा हैं।

7

प्रायद्वीपीय नदियां

भूमिका

प्रायद्वीप को अपवाहित करने वाली समस्त प्रमुख नदियां प्रौढ़ हैं, अर्थात वे इतनी पुरानी हो चुकी हैं कि वे अपरदन की अपनी चरम सीमा तक पहुंच चुकी हैं। इनकी घाटियां चौड़ी तथा छिछली हैं, और ये सपाट जलोढ़क मैदानों से प्रवाहित होती हैं जिनमें से वे मंथर गति से विसर्पण करती हैं, अथवा उच्चभूमि तथा पठारों से प्रवाहित होती हैं जहां उनका वेग काफी अधिक होता है और इनमें ये कभी कभी संकरे मार्ग अथवा गार्ज काटती हैं। प्रायद्वीपीय सरिताओं की यह विशिष्टता है, केवल दो उत्तरी सरिताओं नर्मदा तथा ताप्ती को छोड़कर जो पश्चिम की ओर अपवाहित होकर अरब सागर में मिलती हैं, बाकी की समस्त प्रमुख सरिताएं अपने पानी को बंगाल की खाड़ी में गिराती हैं। दक्षिण की प्रमुख नदियों का उद्गम सह्याद्री पर्वतमाला से है और वे प्रायद्वीप में से होकर काफी लंबे मार्गों की यात्रा करती हैं। पहाड़ों से निकलने के बाद वे जल प्रपातों की रचना करती हैं। परंतु इनमें से अत्यधिक दर्शनीय जल प्रपात कुछ छोटे छोटे जलस्रोतों ने बनाए हैं जो पश्चिमी घाट की अत्यधिक ऊंचाइयों से सोपानी प्रपात बनाते हुए अरब सागर की ओर जाते हैं।

यह भी एक रोचक तथ्य है कि अरब सागर में मिलने वाली प्रायद्वीपीय नदियां डेल्टा का निर्माण नहीं करतीं वरन केवल ज्वारनदमुख का निर्माण करती हैं। ये वह प्रवाह मार्ग हैं जहां नदी-जल और ज्वारीय सागर-जल का मिश्रण होता है। उल्लेखनीय ज्वारनदमुख नर्मदा व ताप्ती के हैं जो उनकी जलमग्न घाटियां हैं जिनका अस्तित्व पश्च-हिमनदीय सागर तल में वृद्धि के कारण समाप्त हो गया था। इन दोनों नदियों द्वारा डेल्टा न बनाए जाने का संभावित कारण यह है कि वे अपनी संपूर्ण यात्रा प्रवाह मार्गों में कठोर शैलों में ही होकर प्रवाहित करती रहीं और इस कारण तट के पास वितरिकाएं नहीं बना पाईं। ऐतिहासिक काल में तट सागर की ओर इस भाग में बढ़ रहा था यह इस सत्य से प्रमाणित है कि सूरत—जो अब एक अंतःस्थलीय नगर है केवल कुछ शताब्दियों पूर्व तक एक बंदरगाह था।

पश्चिम की ओर प्रवाहित नदियां

नर्मदा नदी

मैकला पठार के पूर्वी छोर से अमरकंटक में उद्गमित होकर नर्मदा नदी पश्चिम की ओर प्रवाहित होकर शीघ्र ही बेसाल्टीय कगारों पर उतरकर मध्यप्रदेश के मंडला, जो एक पुनर्युवतित समप्राय भूमि है, तक विसर्पित होती है और फिर यह ढलान पर उतरती हुई जबलपुर पहुचती है, जहां यह 15 मी. गहरे गार्ज में गिरकर दर्शनीय धुआंधार (संगमरमर शैल) प्रपात की रचना करती है। जल प्रपातों की उत्पत्ति अभिनव संचलन के कारण है। जबलपुर से यह एक असममितिक घाटी के उत्तरी किनारे के साथ साथ प्रवाहित होती है जिसमें जलोढ़क द्रोणी शैलीय गार्ज से एकांतरित हैं, जो उत्तर में विन्ध्य पर्वतमाला तथा दक्षिण में सतपुड़ा पर्वतमाला से घिरे हुए हैं। दक्षिण से प्रवाहित तवा इसमें होशंगाबाद के पूर्व में मिलती है। अनुप्रवाह में नर्मदा और नीचे मान्धाता गार्ज स्थित विन्ध्य बलुआ पत्थरों के ऊपर से प्रवाहित होती हैं। यहां कुछेक उच्छलिकाएं (रैपिड्स) विकसित हुई हैं जिनमें से 15 मी. ऊंचा धार्दी जल प्रपात उल्लेखनीय है। धार उच्चभूमि के ट्रैपीय प्रदेश से उद्गमित होकर यह मंडलेश्वर के 130 किमी. लंबे खुले जलोढ़क मैदान में प्रवाहित होनी है। यह सरिता मुरक्ता में डेक्कन ट्रैप के एक संकरे गार्ज में पुनः प्रवेश करके सतपुड़ा पर्वतमाला की अर्खरानी पहाड़ियों में 1,000 मी. की ऊंचाई पर पहुंचती है तथा अध्यारोपित (सुपरपोज्ड) सरिता के रूप में 120 किमी. तक प्रवाहित होती है। गर्देश्वर के निकट यह अंतिम रूप से पहाड़ियों से निकलकर पुनः जलोढ़क मैदान में विसर्पण करते हुए भड़ौच को पार करके अपने उद्गम से 1,300 किमी. की यात्रा पूर्ण करके अरब सागर पर खंभात की खाड़ी में विलीन हो जाती है। कई द्वीप जिनमें सबसे बड़ा अलियाबेट है, नर्मदा के ज्वारनदमुख में ही स्थित हैं। परेदा (पूर्वी निमाड़ जनपद, मध्य प्रदेश) के निकट ट्रैपीय शैलों पर संगुटिकाश्म के आवरण से यह प्रमाणित होता है कि नर्मदा द्रोणी में प्राचीन काल में कोई पूर्व की ओर प्रवाहित सरिता रही होगी।

अपनी यात्रा के अधिकांश भाग में नर्मदा नदी एक संकरी घाटी जिसके दोनों ओर ऊंचे पर्वत थे, में प्रवाहित रही जिसके कारण इसमें कोई सहायक नदी नहीं मिल पाई। अपने दाहिने ओर भी नर्मदा में कोई उल्लेखनीय बहिःप्रवाही धारा नहीं मिल पाई परंतु बाईं ओर इसमें सतपुड़ा पर्वतमाला से निकली कुछेक छोटी छोटी सरिताएं अपवाहित होती हैं। उत्तर की ओर से प्रवाहित केवल एक ही उल्लेखनीय स्रोत हिरन स्रोत है जो भांडेर पहाड़ियों की तलहटी में प्रवाहित होता हुआ छिंदवाड़ा के उत्तर-पश्चिम में नर्मदा नदी में मिलता है। बाईं ओर की बहिःप्रवाही सहायिकाओं में केवल तवा का ही उल्लेख किया जा सकता है जो बैतूल के पठार से निकलकर होशंगाबाद के पूर्व में नर्मदा में मिलती है।

नर्मदा-सोन संरेखण

नर्मदा तथा सोन की अधिकांश घाटियां लगभग एक सरल रेखा में पश्चिम-दक्षिण पश्चिम—पूर्व-उत्तर-पूर्व दिशा में 1,200 किमी. से भी अधिक दूर तक संरेखित हैं तथा ये मध्य भारत में एक उल्लेखनीय प्राकृतिक विशिष्टता बनाती हैं। इस बात के प्रचुर भूवैज्ञानिक तथा भू-आकारिकी प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि नर्मदा एक रिफ्ट अथवा भ्रंश में होकर प्रवाहित हो रही थी, तथा नर्मदा-सोन संरेखण भूपृष्ठीय विस्थापना की एक रेखा है। यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न संरचनाओं की भूवैज्ञानिक सीमाएं इस विशिष्टता से संबंधित हैं। विन्ध्य पर्वतमाला नर्मदा एवं सोन घाटियों को उनके उत्तर की ओर छोड़ते हुए एक कगार में समाप्त होती हैं। डेक्कन ट्रैप लावा कहीं कहीं पर लमेटा तथा बाघ संस्तर घाटी के इस ओर स्थित विन्ध्य अवसादी शैलों के ऊपर सीधे ही बिना गोंडवाना संरचना के आच्छादित हैं। जबकि नर्मदा घाटी के दक्षिण ओर होशंगाबाद के निकट कुछेक सीमित दृश्यांशों को छोड़कर विन्ध्य संरचना कहीं भी नहीं पाई जाती है। इस रेखा के दक्षिण की ओर डेक्कन लावा प्रवाह गोंडवाना संस्तरों या आर्कियन शैलों पर ही स्थित हैं तथा इसके उत्तर में कोई भी गोंडवाना संरचना अभिलेखित नहीं की गई है। यह माना गया है कि विन्ध्य अवसादों की निक्षेपण द्रोणी का दक्षिणी छोर, वर्तमान की नर्मदा-सोन घाटियों के दक्षिण में भू-अवरोध से बना था, जबकि मध्य प्रदेश की पश्च गोंडवाना द्रोणी की उत्तरी सीमा उस रेखा के पास उत्तर में स्थित भू-अवरोध तक ही थी। विन्ध्य संरचना का बिजावर संरचना से संपर्क स्थल एक साधारण भ्रंश की प्रकृति के रूप में नहीं वरन विन्ध्य संस्तरों के मूल निक्षेपण स्थल के दक्षिण की ओर की सीमा थी। विन्ध्य संस्तर जो सामान्यतया कोई विशेष संरचनात्मक विक्षुब्धता प्रदर्शित नहीं करते हैं सघन रूप से वलयित भ्रंशित ऊर्ध्वाकार रूप से ऊपर उठाए गए और इस संरेखण के ठीक उत्तर में उलटे भी कर दिए गए हैं, जिसको 'सीमा भ्रंश' (बाउंडरी फाल्ट) के नाम से जाना जाता है। नर्मदा व सोन घाटियों का यह क्षेत्र कुछ प्रारंभिक दुर्बलताओं से संबंधित एक प्राचीन विशिष्टता थी जो आर्कियन क्षेत्र के समानांतर थी, तथा इसके उत्तरी व दक्षिणी भाग बीच बीच में लंबे भूसंचलनों के सतत क्रम द्वारा सक्रिय बने रहे। इस क्षेत्र के गुरुत्व असंगति चित्र से यह स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र आर्कियन गति पट्टी के संपीडित होने के समय से अनेक बार तनाव तथा तनावरहित बलों द्वारा प्रवाहित रहा है।

ताप्ती नदी

बैतूल के पठार से उद्गमित यह सरिता एक संकरे गार्ज व शैलीय भूप्रदेश से प्रवाहित होने के पश्चात चौड़े खानदेश मैदान, जो सतपुड़ा तथा अजंता पर्वतमालाओं के मध्य स्थित है, में प्रवेश करती है। **पूर्णा नदी** जो इसकी प्रमुख सहायक नदी है, गाविलगढ़ की

पहाड़ियों में इससे मिलती है। ताप्ती व पूर्णा दोनों ही तलावचन प्रकार की नदियां हैं। ताप्ती एक संकरे ज्वारनदीमुख द्वारा सूरत के पार अरब सागर में मिलती है। दोनों अपनी संपूर्ण यात्रा डेक्कन ट्रैप में संपन्न करती हैं। बुरहानपुर के निकट पहाड़ियों में एक विदर जिससे होकर ताप्ती गुजरती है, काफी उल्लेखनीय है। संभवतया नर्मदा मूलरूप में इसी विदर में से प्रवाहित होती रही होगी।

पश्चिम की ओर प्रवाहित अन्य नदियां

सह्याद्री की पहाड़ियों से अनेक छोटे छोटे स्रोत निकलकर पतले संकरे पश्चिम तटीय मैदानों में तीव्र गति से नीचे प्रवाहित होते हुए तट के किनारे पर अनेक दंतुरण तथा निवेशिका बनाकर अरब सागर में मिल जाते हैं। उल्लेखनीय है कि बंगाल की खाड़ी के सम्मुख पूर्वी तट निवेशिका तथा दंतुरण रहित होने के कारण लगभग अटूट और सीधा है। पश्चिम की ओर प्रवाहित नदियों ने कई भव्य तथा चित्ताकर्षक जल प्रपातों की रचना की है, उनमें से बेदती जल प्रपात (137 मी.), जोग जल प्रपात (253 मी.) शरावती नदी पर, छालाकुडी जल प्रपात (56 मी.) उल्लेखनीय हैं तथा कई अन्य 20 मी. से 300 मी. तक ऊंचाई के जल प्रपात अन्नामलाई-पालनी तथा एलमलाई पर्वतमाला में हैं।

पूर्व की ओर प्रवाहित नदियां

महानदी सरिता

इस नदी का जलस्रोत दंडकारण्य के उत्तरी गिरिपादों में है तथा यह चारों ओर पहाड़ियों से घिरी हुई द्रोणी में प्रवाहित होती है, जिसका निचला भाग छत्तीसगढ़ द्रोणी के नाम से जाना जाता है, जो चपटे सपाट संस्तरों वाले कैम्ब्रियन चूना-पत्थरों एवं शैल से निर्मित है, तथा इसमें शिवनाथ और हासदो नदियां अपना जल विसर्जित करती हैं। महानदी पर संभलपुर (उड़ीसा) के निकट एक बांध बनाकर इसके प्रवाह को रोककर हीराकुंड जलाशय का निर्माण किया गया है। यहां से निकलकर यह एक संकरी घाटी में प्रवाहित होती है, जिसके दोनों किनारों पर खड़े कगार वाली पहाड़ियां हैं और अंत में यह एक चौड़े डेल्टीय मैदान में पंखे के समान फैलकर बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। हीराकुंड से लगभग 100 मी. अनुप्रवाह की दिशा में तेल नदी भी इसमें मिलती है। महानदी की कुल लंबाई 890 किमी. है।

शिवनाथ नदी अपने अनेक संभरक स्रोतों के साथ, पश्चिमी दंडकारण्य की निचली चिरोली पहाड़ियों में अपना जलशीर्ष बनाती है। यह मध्यप्रदेश के रायपुर जनपद स्थित बालोदा बाजार के 32 किमी. पूर्व शिवनारायण नगर के आगे महानदी से मिलती है। इस स्थान से लगभग 35 किमी. अनुप्रवाह दिशा में महानदी में दक्षिण की

ओर प्रवाहित **हासदो नदी** मिलती है, जो देवगढ़ की पहाड़ियों में स्थित सोनहाट पठार से निकलती है। ये दोनों ही सहायक नदियां अवसादी छत्तीसगढ़ द्रोणी के एक बड़े भाग को अपवाहित करती हैं। **तेल नदी** भी दंडकारण्य से ही निकलकर उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होकर सोनपुर के निकट महानदी में मिलती है और यहां से यह एक संकरी घाटी में अपने डेल्टीय मैदान में प्रकट होने के पूर्व प्रवेश करती है। सतकोसियो में खड़े किनारों वाले गार्ज इसके अभिनव काल में उत्थान तथा इसके फलस्वरूप महानदी का पुनर्युवन प्रस्तावित करते हैं।

महानदी का डेल्टा लगभग 9,500 वर्ग किमी. क्षेत्र को आच्छादित किए हुए है, यथा यह 150 किमी. चौड़ा है और बंगाल की खाड़ी में लगभग 40 किमी. तक आगे बढ़ा हुआ है, जो जलशीर्ष से लाए हुए प्रचुर अवसादों की प्रचुर मात्र से बना है। डेल्टा अवसाद प्राचीन जलोढ़क का एक भाग है जो गंगा डेल्टा से भिन्न है। महानदी डेल्टा थोड़ा-सा शंकुल होने के बाद भी अपने अभिसमुद्र भाग में काफी सीधा है, जबकि गंगा का डेल्टा अत्यधिक विच्छेदित है, तथा इसका वनाच्छादित दलदली छोर भी तट के किनारे किनारे सुंदरबन की अपेक्षा काफी संकरा है। यहां का तटीय क्षेत्र बालू टिब्बों से भी सीमांकित है।

गोदावरी नदी

नासिक के निकट उत्तरी सह्याद्री के त्र्यंबक पठार से उद्गमित गोदावरी दक्षिण-पूर्व की ओर विसर्पित होती हुई पहले काफी खड़े किनारों वाले लावा, और फिर मांजरा के साथ अपने संगम, से पूर्व नाइसीय एवं गोंडवाना अवसादों से प्रवाहित होती हुई अंत में लगभग 1,450 किमी. की यात्रा पूर्ण कर अपने डेल्टा तक पहुंचती है। ऊपरी पर्वतीय भाग में इसकी मुख्य सहायक नदियां, पूर्णा तथा मांजरा हैं जो गोदावरी में मिलने से पूर्व लगभग इसके समानांतर ही प्रवाहित होती हैं, इससे इनके प्रवाह मार्गों में किसी संरचनात्मक नियंत्रण का आभास होता है। ऐसा कोई भी नियंत्रण इसकी अन्य सहायक नदियों यथा प्राणहिता (पेनगंगा, वर्धा) इन्द्रावती तथा शबरी—जो गोदावरी से दंडकारण्य में मिलती हैं, में दृष्टिगत नहीं होता है। गोदावरी एक अनुप्रस्थ गार्ज काटती है जो 60 किमी. लंबा तथा 200 मी. चौड़ा है और पूर्वी घाट (पपीकोंडा पर्वतमाला) से होकर इसके नदीमुख से लगभग 100 किमी. दूर है। इससे स्पष्ट होता है कि यह नदी पूर्ववर्ती प्रकृति की सरिता है। सिलेर जो शबरी की एक शाखा है, ने लगता है कि मूल रूप से उत्तर की ओर प्रवाहित मचकुंद नदी को ऊपरी भाग में ही समाहित कर लिया है तथा इसके प्रवाह मार्ग को दक्षिण की ओर परिवर्तित कर दिया है। गोदावरी 185 मी. नीचे उतरकर अपने तीखे मोड़ के निकट दुदमा जल प्रपात का निर्माण करती है।

मांजरा, मध्य महाराष्ट्र में जामखेड़ पहाड़ियों से निकलने के बाद डेक्कन ट्रैप के पठार से प्रवाहित होती है। यह ग्रेनाइटीय शैलों वाले मेडक पठार से उत्तर की ओर

मुड़कर निजाम सागर से होती हुई गोदावरी के दाहिने किनारे पर नान्देड़-आदिलाबाद-निजामाबाद जनपदों के त्रिसंपर्क स्थल के निकट कोंडलावाड़ी में मिलती है।

महाराष्ट्र के बुलढाणा से निर्गमित होने के बाद **पेनगंगा** बाईं ओर का मार्ग लेकर डेक्कन ट्रैप के ऊपर से प्रवाहित होती हुई, घुघ्घुस के दक्षिण-पूर्व में वर्धा नदी में मिलती है जहां कि प्रसिद्ध हिमनदन के तालचिर कुट्टिम (पेवमेन्ट) (गोंडवाना) इसके किनारों पर दृष्टिगत होते हैं। दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रवाहित वर्धा नदी बैतूल के पठार से पश्चिम की ओर प्रवाहित ताप्ती नदी के उद्गम स्थान के निकट से ही उद्गमित होती है। इस क्रम में **वर्धा नदी बाणगंगा**, जो मध्य प्रदेश में सिवनी के निकट से उद्गमित होकर उत्तर की ओर प्रवाहित होती है, से चन्द्रपुर तथा आदिलाबाद जनपदों के संपर्क स्थल के निकट मिलती है। बाणगंगा अधिकांशतया आर्कियन क्रिस्टलीय शैलों पर से ही प्रवाहित होती है परंतु कुछ धारवाड़ तथा प्रोटेरोजोइक शैलें भी इसके मार्ग में पड़ती हैं। सम्मिलित वर्धा व बाणगंगा नदियां थोड़ी दूरी के लिए **प्राणहिता नदी** बनती हैं जो आदिलाबाद-चन्द्रपुर सीमा के साथ साथ प्रवाहित होने के बाद सिरोंछा के निकट बाईं ओर से गोदावरी में विलीन हो जाती है।

इन्द्रावती नदी सिरोंछा से लगभग 50 किमी. अनुप्रवाह दिशा में चन्द्रपुर-बस्तर-करीमनगर जनपदों के त्रिसंपर्क स्थल पर गोदावरी नदी में मिलती है। पूर्वी घाट की कोंधन पहाड़ियों से निकलने के बाद यह पश्चिम की ओर प्रवाहित नदी पहले पुरा प्रोटेरोजोइक अवसादों से प्रवाहित होने के बाद दंडकारण्य पठार को एक संकरे मार्ग द्वारा नाइसीय शैलों में से काटती हुई प्रवाहित होती है।

गोदावरी का डेल्टा पालियुक्त प्रकार का है, जिसमें एक गोलाकार उभार तथा कई वितरिकाएं हैं। यह सागर में लगभग 35 किमी. तक आगे फैला हुआ है जिसका अग्रभाग 120 किमी. चौड़ा है। जल तथा अवसादों का बृहत निस्सारण ही इस डेल्टा के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है। इसका उत्तरी निचला भाग दलदली है जो 15 किमी. लंबी भू-जिह्वा (स्पिट) जो काकीनाडा खाड़ी का निर्माण करती है, में विस्तारित है। गोदावरी का डेल्टा दक्षिण की ओर कृष्णा नदी के डेल्टा में मिल गया है, जो अंगुलाकार प्रकृति का तथा कहीं कम जटिल तथा आकार में छोटा प्रतीत होता है। कृष्णा नदी का डेल्टा लगभग 4,600 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तारित है तथा सागर के अंदर लगभग 35 किमी. तक फैला हुआ है जिसकी तट रेखा लगभग 120 किमी. है। भ्रंश तथा दरारों के अतिरिक्त इसमें कई प्राचीन प्रवाह मार्ग तथा तटीय कटक देखे गए हैं। नदी तथा उसकी वितरिकाओं द्वारा लाए गए अवसादों के विशाल भंडार के कारण यह धीरे धीरे दक्षिण की ओर बढ़ रहा है।

कृष्णा नदी

पश्चिमी घाट में महाबलेश्वर के निकट से उद्गमित कृष्णा नदी भी कुछ दूरी तक डेक्कन

ट्रैप प्रदेश में प्रवाहित होती है। बीजापुर के दक्षिण में यह नदी धारवाड़ नाइसीय भूप्रदेश में प्रवेश करती है, और पूर्व की ओर विसर्पण करके जलदुर्ग गार्ज में प्रवेश करने के पूर्व एक जल प्रपात का निर्माण करती है। नीचे अनुप्रवाह की दिशा में यह कड़प्पा अवसादों में स्थित श्रीसेलम पठार के पूर्ववर्ती गार्ज को काटती हुई उनमें से प्रवाहित होकर जाग्गयापेट के दक्षिण में आंध्रप्रदेश के कृष्ण जनपद तटीय मैदान में प्रकट होती है। इस नदी के प्रवाह को श्रीसेलम के निकट बांध द्वारा अवरुद्ध करके नागार्जुन सागर जलाशय का निर्माण किया गया है। इसकी कुल लंबाई लगभग 1,290 किमी. है।

कृष्णा नदी की बड़ी सहायक नदियों में **भीमा** रायचूर के उत्तर-पश्चिम से होती हुई कुदनूल के और आगे तुंगभद्रा तक प्रवाहित होती है। भीमा नदी माथेरान के निकट सह्याद्री के उत्तरी पार्श्व से निकलकर केवल अपने निचले भाग को छोड़कर जहां पर वह भीमा समूह तथा क्रिस्टलीय शैलों के ऊपर प्रवाहित होती है, अपनी यात्रा के अधिकांश भाग में डेक्कन ट्रैप पर से ही प्रवाहित होती है। बेसाल्ट में अपनी घाटी में काटी गई शैल वेदिकाएं इस स्थलाकृति की एक विशिष्टता है तथा यह नदी के पुनर्युवन की ओर संकेत करती है। **तुंगभद्रा नदी** दो स्रोतों—तुंग तथा भद्रा के मिलन से बनी है जो मध्य सह्याद्री पहाड़ियों में उत्पन्न हुई तथा थोड़ी ही दूर पर एक-दूसरे में समा गए हैं। कर्नाटक पठार पर इसने एक अच्छे अपवाह तंत्र का विकास किया है जहां पर कई प्रकार की क्रिस्टलीय शैलें हैं। इसके जल को होजपेट तथा भद्रावती में बांध बनाकर दो विशाल जलाशयों का निर्माण किया गया है। कृष्णा नदी की एक छोटी सहायक नदी **घटप्रभा** गोकक के निकट 53 मी. नीचे गिरकर एक मनोहारी जल प्रपात की रचना करती है। एक अन्य सहायक नदी, **कोयना**, को पश्चिमी घाट की ऊंचाइयों में बांध बनाकर अवरुद्ध किया गया है। यह एक छोटी नदी है परंतु इस क्षेत्र में उत्पन्न भूकंपों के कारण यह प्रसिद्ध हो गई है।

कावेरी नदी

अरब सागर के बिल्कुल किनारे सह्याद्री पर्वतमाला के अंतिम छोर पर स्थित कुर्ग पठार का ब्रह्मगिरि क्षेत्र कावेरी नदी का उद्गम स्थल है। जैसा कि प्रायद्वीपीय नदियों के साथ है, यह एक अपेक्षाकृत छोटी सरिता है, जो मात्र 760 किमी. लंबी है। यह घाट में से मात्र 8 किमी. की दूरी में लगभग 450 मी. नीचे गिरती है। यह अपने मार्ग में धारवाड़ क्रिस्टलीय शैलों पर मुख्य रूप से पूर्वी घाट में यात्रा करती हुई तमिलनाडु उच्चभूमि में जहां पर सरल प्रवणता है, में प्रवाहित होती है। नदी स्थानीय शैलों को नति दिशा में विपरीत काटती है तथा एक प्राचीन नदी प्रतीत होती है, जिसका विसर्पण पथ, अभिनव उत्थान के कारण पुनः यौवन प्राप्त करके इस स्थलाकृति पर अध्यारोपित है। मैसूर के निकट एक बांध द्वारा नदी प्रवाह को अवरुद्ध करके कृष्णराजा सागर जलाशय बनाया गया है। सरिता शिवसमुद्रम (ऊंचाई 101 मी.) में जल प्रपात की रचना करती है और

तब यह एक लंबे मनोहारी गार्ज में जो कहीं कहीं 200 मी. तक गहरा है, को काटकर पूर्वी घाट में से निकलती है। यह पर्वतों से मेटूर बांध द्वारा बनाए गए स्टेनली जलाशय में निकलती है। करूर के आगे यह लंबे संकरे जलोढ़क मैदान में से प्रवाहित होकर बंगाल की खाड़ी में अपने डेल्टा में निकलती है। इसका डेल्टा सरिता में स्थित श्रीरंगम द्वीप से ही प्रारंभ हो जाता है जहां पर यह सबसे बड़े डेल्टीय प्रवाह मार्ग, कोलेरून का निर्माण करती है।

कावेरी डेल्टा एक चतुर्भुजाकार रचना है जो 8,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तारित है, इसमें कई वेदिकाएं हैं जो यह संकेत देती हैं कि यह क्षेत्र अपने निर्माण काल की विभिन्न अवधियों में उत्थान तथा अपरदन से प्रभावित रहा है। बंगाल की खाड़ी में इसका लगभग सीधा अग्रभाग 130 किमी. लंबा है, तथा दक्षिण की ओर एकदम समकोण पर पश्चिम की ओर घूमकर पॉइंट कॉलिमेर तक पहुंचता है। जहां से अगले 60 किमी. तक यह पाल्क की खाड़ी की ओर रहता है।

पूर्व की ओर प्रवाहित अन्य नदियां

पिछले पृष्ठों में वर्णित विशाल सरिताओं के अतिरिक्त, कुछ अन्य ऐसी सरिताएं भी हैं जो काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछेक अधिक छोटे स्रोतों को जो पूर्वी तट के विशाल मैदानों में प्रायद्वीपीय शील्ड (Peninsular shield) क्षेत्र से उद्गमित होने के पश्चात प्रवाहित होते हैं, को इस गणना में सम्मिलित नहीं किया गया है। इनमें सबसे उत्तर में स्थित **स्वर्णरेखा नदी** है, जिसका जन्म स्थान रांची के निकट है। यह पहले दक्षिण-पूर्व में आर्कियन शैलों तत्पश्चात मयूरभंज और बालासोर के बीच गंगा तथा महानदी डेल्टा क्षेत्र के विशाल तटीय मैदान में विसर्पण करती है। डालमा पर्वतमाला के निर्माण के पहले इसका उद्भव हुआ जब यह जमशेदपुर के उत्तर-पश्चिम में इसे काटती है। यह बंगाल की खाड़ी में ज्वारनदमुख का निर्माण करती है।

कोयल नदी भी रांची के निकट से ही उद्गमित है, तथा **सांख नदी** जिसका जलशीर्ष जशपुरपत में है, राउरकेला में मिलकर **ब्राह्मणी नदी** के नाम से धारवाड़ शैलों पर प्रवाहित होकर बंगाल की खाड़ी तक अपनी यात्रा पूर्ण करती है। कटक के मैदान में इसका मार्ग बहुत लंबा नहीं है तथा इसका डेल्टा महानदी के डेल्टा का उत्तरी सिरा बन जाता है।

वामसाधारा तथा **नागवली** दो छोटे जलस्रोत हैं जो पूर्वी घाट (उत्तर) से निकलकर महानदी तथा गोदावरी सरिताओं के डेल्टा के मध्य ज्वारनदमुख का निर्माण करते हैं। पेन्नर एक बड़ी सरिता है, यह बंगलौर तथा कोलार जनपदों की सीमा पर स्थित नन्दीदुर्ग शिखर से निकलकर ग्रेनाइटीय भूप्रदेश से अल्पकालिक प्रवाह मार्ग के रूप में प्रवाहित होकर एक संकरा ज्वारनदमुख बनाकर सागर में गिरती है। **पालार** तथा **पोन्नयार** दो छोटी सरिताएं हैं जो कृष्णा तथा कावेरी के मध्य में तटीय भाग तक ही सीमित हैं।

दक्षिणी तमिलनाडु की **ताम्रपर्णी**, अगस्त्यमलाई पहाड़ियों से निकलकर सीढ़ीदार ढाल से उतरते समय इसके जलशीर्ष अनेक सुंदर जल प्रपातों की रचना करके मैदान में प्रवाहित होते हैं।

कावेरी डेल्टा के दक्षिण में रामनाथपुरम् के मैदान में कई सरिताएं हैं, जिनमें से **वैगाई** सबसे बड़ी है, जो शुष्क प्रवाह मार्गों में प्रवाहित होती है तथा बीच बीच में भूमि में विलुप्त होकर पुनः दृष्टिगत होती है। यह शुष्क क्षेत्र है और संभवतया यही इस दृश्य का कारण हो सकता है, लेकिन इसके कारणों में सर्वाधिक उत्थान और तत्पश्चात अपरदन जिससे यह क्षेत्र अभिनव काल में प्रभावित हुआ है, भी सहायक है।

लूणी नदी

लूणी नदी भारत की बड़ी नदियों में से नहीं है, यह एक छोटी सरिता है, परंतु अपनी विशेष भूआकृतिक विशिष्टताओं के कारण सबसे अलग है। यह एकमात्र सरिता है जो मरुस्थली के थार मरुस्थल को अपवाहित करती है। सरिता का नाम संस्कृत शब्द 'लवण' से है, जिसका तात्पर्य 'नमक' होता है। यह अरावली पर्वतमाला में अजमेर के पश्चिम से उद्गमित होकर, राजस्थान बागड़ क्षेत्र से दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हुई 450 किमी. दूर स्थित कच्छ के रण में गिरती है। यह एक छोटे डेल्टा में समाप्त होती है जो उस समय बना था जब लूणी में काफी जल प्रवाहित होता था। अब यह एक अल्पकालिक सरिता है, और मरुस्थल में अपनी यात्रा की अवधि में कई स्थानों पर विलुप्त भी हो जाती है। अरावली पर्वतमाला से उद्गमित सहायक नदियां इसके बाएं किनारे पर मिलती हैं। **सुकरी** इसकी एक अत्यंत महत्वपूर्ण सहायक नदी है। कालू तथा बिलारा के मध्य चूना-पत्थरों में काटे गए जल अंतराल यह स्पष्ट करते हैं कि लूणी इस वर्तमान स्थलाकृति पर अध्यारोपित की गई है। नदी की प्रवणता बहुत कम है और यह एक ऐसे मार्ग से प्रवाहित होती है जो वास्तव में एक चौड़ा मैदान है और इसमें विशिष्ट घाटियां नहीं हैं। वेदिकाओं के अवशेष कभी कभी तटों का आभास देते हैं। बाड़मेर जनपद स्थित बालोतरा को छोड़ने के बाद लूणी के कई खंड खारे पानी से भरे हैं। बालोतरा के उत्तर में पचपेडरा लवण द्रोणी स्थित है।

8

तट एवं सागर

भूमिका

महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत के अनुसार, जिस पर इस पुस्तक में अन्य स्थान पर विचार किया गया है, प्रारंभ में सभी सागर एक-दूसरे से जुड़े हुए थे और विशाल जलराशि का एक ही भंडार थे। जब महाद्वीप एक-दूसरे से पृथक होना प्रारंभ हुए तथा पहले 'पैन्जिया' के टूटने और बाद में गोंडवानालैंड के अलग हो जाने से यह विराट जलराशि छोटे छोटे महासागरों, सागरों तथा खाड़ियों में विभाजित हो गई।

गोंडवानालैंड के टूटने तथा टुकड़ों के अलग खिसकने के कारण हिंद महासागर की रचना हुई। एफ. अहमद के अनुसार गोंडवानालैंड के टूटने की प्रक्रिया अफ्रीका-तस्मानिया-विक्टोरियालैंड क्षेत्र में प्रारंभ हुई। भारत-आस्ट्रेलिया-अंटार्कटिक क्रिटेशसकाल में अफ्रीका से पृथक होने लगे थे तथा इसी अवधि में कार्ल्सबर्ग कटक का निर्माण हुआ था। तत्पश्चात कार्ल्सबर्ग कटक की स्थिति से भारत-आस्ट्रेलिया, अंटार्कटिक वामावर्त दिशा में स्वतंत्र रूप से घूमने लगे थे। भारतीय प्रायद्वीप में विस्तृत भ्रंशन प्रक्रिया प्रारंभ हुई जो पश्चिमी आस्ट्रेलिया तक विस्तृत हो गई थी। इसके बाद अंटार्कटिक आस्ट्रेलिया वाला भाग भूपृष्ठ खिसकने के कारण भारत से अलग होकर विस्थापित हुए और फिर ऑलिगोसीन काल में अंटार्कटिक भी आस्ट्रेलिया से पृथक होकर अपने वर्तमान शीत कटिबंध में स्थित हो गया। इन भूमि पिंडों के मध्य स्थित समस्त सागर जल से ही हिंद महासागर के विभिन्न भाग निर्मित हुए हैं।

मीसोजोइक कल्प की अंतिम कालावधि में गोंडवानालैंड के टूटने के साथ ही भारतीय प्रायद्वीप ने अपनी वर्तमान आकृति क्रिटेशसकाल के प्रारंभ में प्राप्त की, केवल उत्तर-पश्चिम भाग को छोड़कर जिसने अपनी तट रेखा परमोकार्बोनीफेरस काल में ही प्राप्त कर ली थी। भारत संभवतया मेडागास्कर से उपरि क्रिटेशस में, जब पश्चिमी तट रेखा का विकास हो रहा था, अलग हुआ होगा। उपरि मीसोजोइक तथा निम्न सीनोजोइक काल में पूर्वी तट ऊपरी असम तक सीधा चला गया था। लंबी तट रेखा की विकृति जिससे उसे वर्तमान घटी हुई लंबाई प्राप्त हुई है, टर्शियरी काल के अंतिम भाग

में हुई थी, जब बंगाल की खाड़ी का विकास प्रारंभ हुआ जिसने शिलांग पठार को प्रायद्वीप के मुख्य पिंड से पृथक कर दिया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के दोनों तट भूवैज्ञानिक इतिहास के अलग अलग काल में निर्मित हुए हैं।

तट

सामान्य

भारतीय प्रायद्वीप को घेरने वाले तट अनुदैर्घ्य प्रशांत प्रकार के हैं जो पर्वतमालाओं द्वारा सीमाबद्ध हैं। भारतीय तटों के प्रमुख भाग स्थायी अथवा प्रगामी हैं जो सागर में डेल्टा ज्वारनदमुख बनाते हैं तथा निवर्तनी प्रकार के तट का उदाहरण रामेश्वरम के निकट उपलब्ध है जहां पर भारत का श्रीलंका को जोड़ने वाला दक्षिणी छोर चतुर्थ कल्प के समय में पानी में डूब गया था। यह जलमग्न संपर्क गहराई में 13 मी. से अधिक नहीं है तथा एक संकरा भूमि पुल दोनों देशों के मध्य पामबन द्वीप तथा मन्नार द्वीप के रूप में दृष्टिगत होता है तथा ये इन दोनों द्वीपों के मध्य स्थित आदम पुल से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। आदम पुल एक जलमग्न कटक है जिसका ऊपरी सिरा निम्न ज्वारभाटा के समय अनाच्छादित होता है।

पश्चिमी तट की अपेक्षा पूर्वी तट अधिक चोडा है तथा पहले की तुलना में पूर्वी तट की बाह्याकृति भी काफी अधिक सीधी है, फिर भी अन्य महाद्वीपों यथा पश्चिमी योरोप या आस्ट्रेलिया की अपेक्षा पश्चिमी तट पर दंतुरण कम स्पष्ट है। पूर्वी तट की एक और उल्लेखनीय विशिष्टता कई बड़े डेल्टा की उपस्थिति है, जबकि पश्चिमी तट पर केवल पाकिस्तान को छोड़कर जहां पर सिंधु नदी ने एक बड़ा डेल्टा बनाया है, अधिकांशतया ज्वारनदमुख ही हैं। सिंधु तथा गंगा नदी के डेल्टा का अग्रभाग अत्यधिक परिवर्तनशील है क्योंकि डेल्टा की सागर की ओर वृद्धि तथा उनके अपरदन के मध्य सतत संघर्ष चलता रहता है जिसके परिणामस्वरूप लेगून झील तथा बालू रोधिका की रचना होती है। सघन मैंग्रोव अनूप इन तटों की एक विशिष्टता है। सिंधु तट सागरीय अपरदन का एक मैदान है जहां पर सागर केवल कुछ फैदम ही गहरा है।

पूर्वी तट

भारत का पूर्वी तट गंगा के डेल्टा के किनारे से प्रारंभ होता है तथा प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण तट केप कौमरिन (कन्याकुमारी) से बंगाल की खाड़ी तक विस्तारित है। यह तट अधिकतर निर्गत (एमरजेंट) प्रकार का है अर्थात इस तट की बाह्याकृति नियमित है तथा अपतटीय रोधिकाएं, सुंदर सागर तट, बालू कटक तथा लेगून इसकी विशेषताएं हैं। भारत की अधिकांश बड़ी नदियों के मुहाने, कुछेक प्रमुख अपवादों को छोड़कर इसी तट पर हैं। पूर्व का तटीय मैदान पश्चिम की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। यहां की संकरी

तटीय पट्टी का अग्रभाग बालू टिब्बों की एक पंक्ति के समान है जिसके क्रम को अनेक लेगूनों ने तोड़ दिया है। पश्चिम बंगाल के **कांथी तटीय मैदान** तथा उड़ीसा के **बालासोर** के तटीय मैदान की सतहें लगभग वेदिकायुक्त हैं तथा उनकी पश्चभूमि स्थित **मयूरभंज** मैदान अंशतया तलोच्चनी तथा अंशतया अपरदन मैदान हैं। **नाघरा मैदान** कहीं अधिक संकरे तथा पार्श्वों में पूर्वी घाट के पुरांतःशायी (outlymg) पर्वत स्कंध (spurs) हैं। कृष्णा डेल्टा के दक्षिण में तटीय मैदान पुनः चौड़े हो जाते हैं तथा क्रमशः **नेल्लोर, तमिलनाडु** तथा **तूतीकोरिन तटीय मैदान** के नाम से जाने जाते हैं। ये अधिकांशतया जलोढ़क मैदान हैं जिनके बीच में बालू टिब्बों की पंक्तियां हैं।

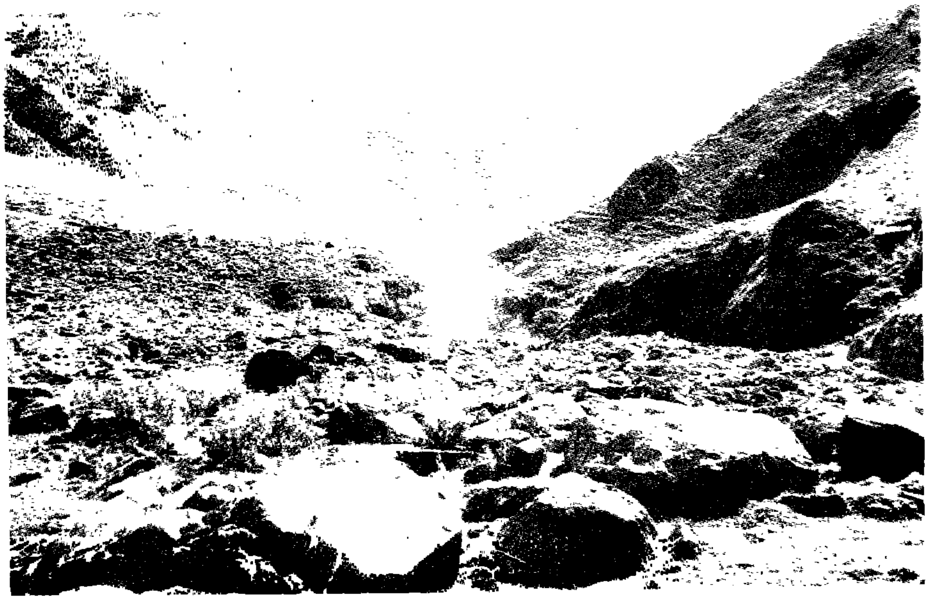
पूर्वीघाट के सामने महानदी के नीचे स्थित निचले तथा मृदु कंटूर वाला भाग है और यह प्रस्तावित करता है कि यह क्षेत्र किसी समय अधःसागरीय मैदान था जो बाद में जल के ऊपर उभर आया है। इस तटीय कटिबंध के पीछे, मुख्यभूमि की नाइसीय उच्चभूमि 'पूर्वीघाट' स्थित है, जिसकी विभिन्न उच्चावचता तथा असम स्थलाकृति है। इन दोनों के बीच प्राचीन तटरेखा स्थित है।

पूर्वी तट अनेक लेगून तथा डेल्टा से लक्षणित है। इनमें सबसे प्रमुख लेगून उड़ीसा तट पर **चिल्का झील** है। यह लगभग 70 किमी. लंबी है तथा उत्तर-पूर्वी भाग में इसकी अधिकतम चौड़ाई लगभग 22 किमी. है जो इसके दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर संकरी होती हुई लगभग 7 किमी. रह गई है। यह दो लंबे, संकरे बालू तटों से अवरोधित है जो तटरेखा से विपरीत दिशाओं में आगे बढ़े हुए हैं जिनमें संकरे मुखद्वार हैं और जिनसे उच्च ज्वार के समय सागर-जल झील में आ जाता है। इस झील में निर्मित अन्य द्वीपों के समान ही यह स्पिट भी संभवतया अभिवृद्धि द्वारा ही निर्मित है। एक अन्य उल्लेखनीय लेगून मद्रास नगर से लगभग 40 किमी. उत्तर में स्थित **पुलिकैट** लेगून है। यह भी एक लंबी बालू स्पिट से अवरोधित है जो आजकल श्रीहरिकोटा द्वीप के नाम से प्रसिद्ध है जहां पर भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान का उपग्रह प्रक्षेपण केंद्र स्थित है। यह लेगून लगभग 60 किमी. लंबी है तथा इसका सबसे चौड़ा भाग लगभग 16 किमी. है। इसमें अनेक बड़े द्वीप हैं, तथा इसका उत्तरी भाग लगभग दलदल का रूप ले रहा है। पूर्वी तट पर अनेक छोटे लेगून भी हैं परंतु इनमें से कई अग्रगामी तटरेखा द्वारा काफी अंदर आ चुके हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि प्रायद्वीप की पूर्व की ओर प्रवाहित नदियों ने बड़े बड़े डेल्टा का निर्माण किया है। गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा आपस में मिल गए हैं तथा हाल के वर्षों में इनके अग्रभाग सागर में 30 किमी. तक आगे बढ़ गए हैं। यह **कोलेरू झील** की वर्तमान स्थिति से स्पष्ट है, जो पहले सागर तट स्थित एक लेगून थी परंतु अब यह काफी अंतःस्थलीय है। यह झील एक प्रवाह मार्ग द्वारा गोथेरू लेगून से जुड़ी हुई है। कुछ पूर्व प्रवाही नदियों यथा स्वर्णरेखा, पेन्नेर, पलार तथा कोलेरून आदि ने अपने अपने छोटे ज्वारनदमुख बना लिए हैं।



I चित्र-1 कुमाऊं हिमालय का मिलन हिमनद एकदम दाएं हरदेव शिखर (7,153 मी.)। (गोपेन्द्र कुमार)



चित्र-2 कश्मीर हिमालय के शेषनाग हिमनद के सहायक हिमनद के सामने हिमोढ़। (के. यू. खान)



II चित्र-1 कुमाऊँ हिमालय के शन्कल्प हिमनद का प्रोथ हिमगुहा तथा अतंस्थ हिमोढ़ अग्रभाग में तथा पार्श्विक हिमोढ़ बाईं ओर। (गोपेन्द्र कुमार)



चित्र-2 चिनाब घाटी के कलखोड हिमनद का प्रोथ ऊपरी भाग में पृष्ठीय हिमोढ़। (के यू. खान)



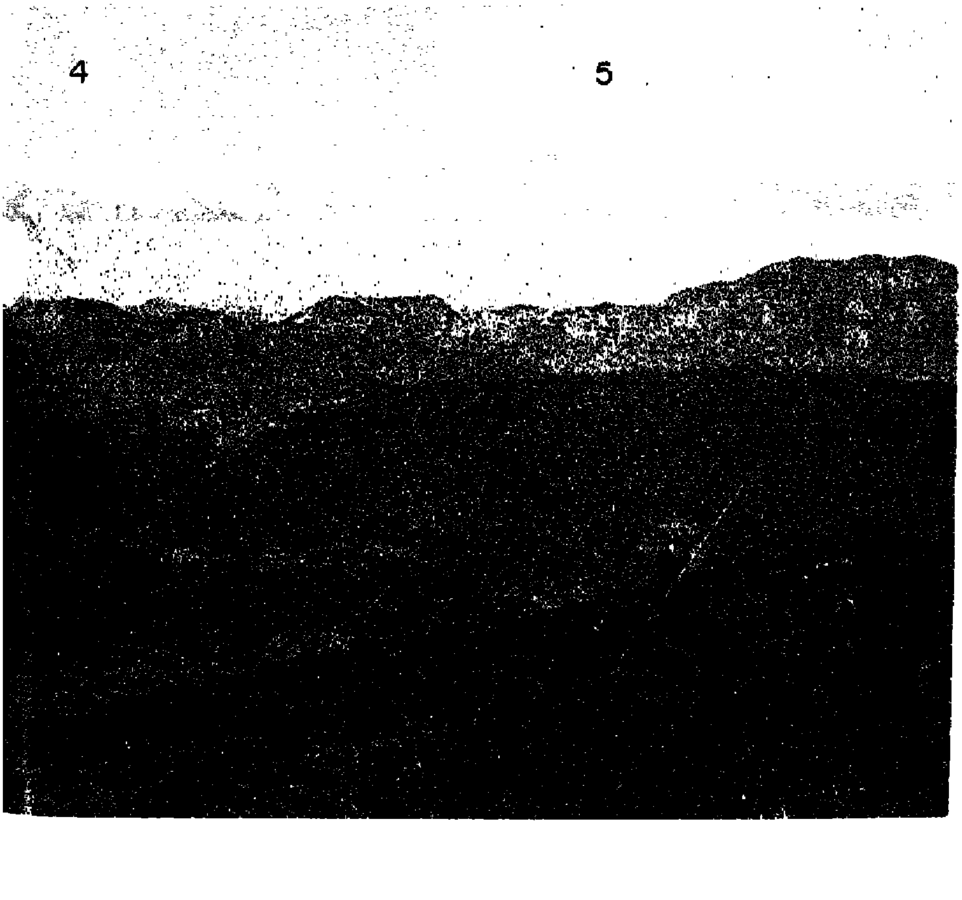
III चित्र-1 मध्यप्रदेश के पन्ना जनपद विन्ध्य शृंखला के उत्तरी कगार में अद्यःकर्तित गार्ज (इंसाइज्ड गार्ज) शीर्ष । (शंकर मोहन माथुर)

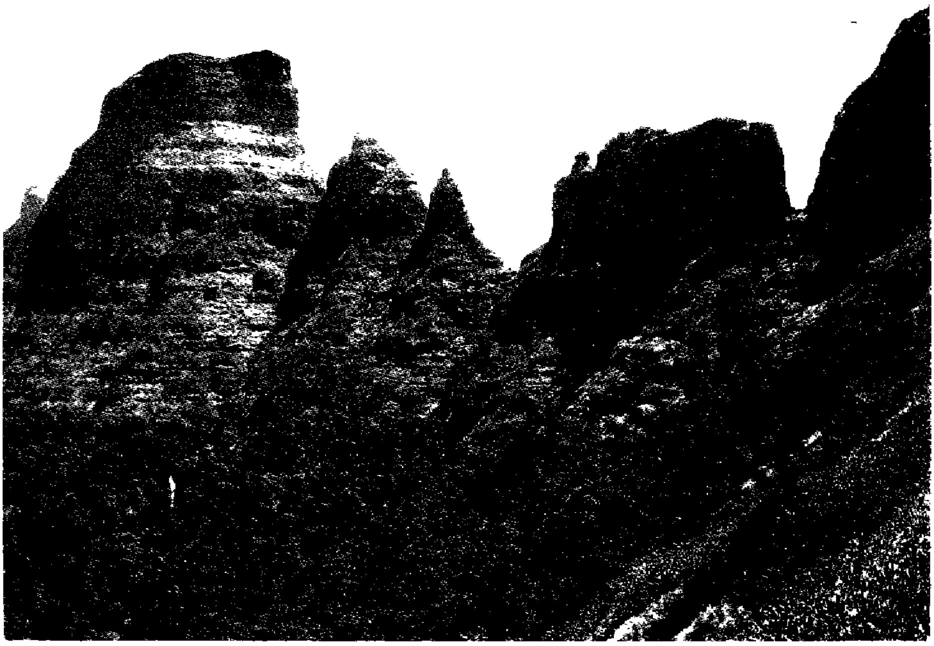


चित्र-2 हिमाचल प्रदेश में कालका के निकट "छोह" द्वारा लाए गए गोलाश्म तथा गुटिकाएं, पृष्ठभूमि में शिवालिक पहाड़ियां दृष्टिगत हैं। (शंकर मोहन माथुर)



IV चित्र–1 कौसानी, कुमाऊं से हिमालय पर्वतमालाओं की दृश्यावलि। चित्र में दृष्टिगत शिखर हैं—1. त्रिशूल (7,120मी.), 2. मृगाथूनी (6,855 मी.), 3. देवस्थान शिखर (6,678 मी.), 4. नन्दादेवी (7,817 मी.) तथा नन्दा कोट (6,861 मी.)। (ए. जोशी)


4
5



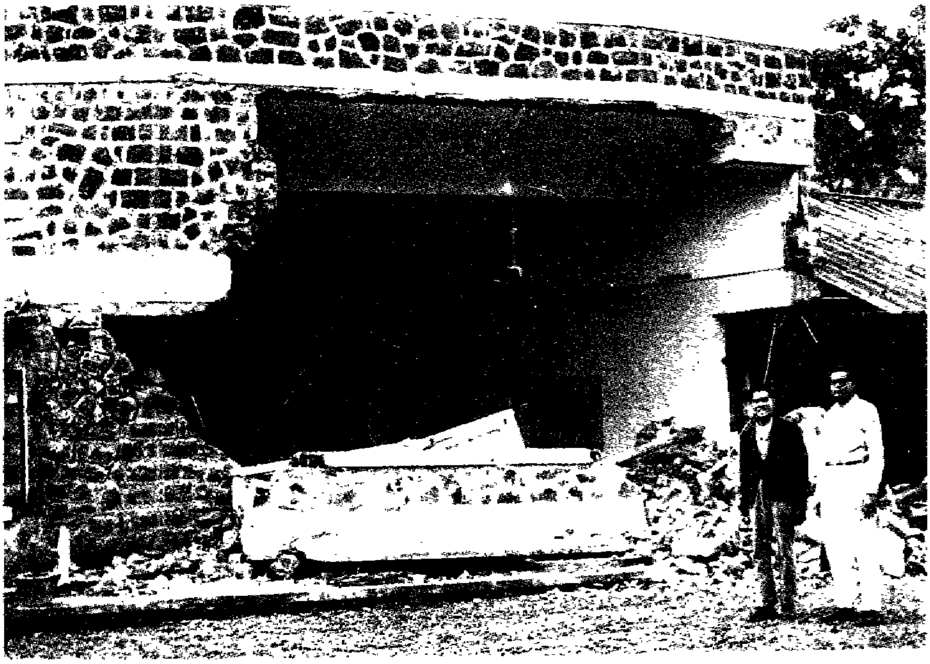
चित्र-1 सह्याद्री पर्वत श्रृंखला, मंडलगढ़ में डेक्कन ट्रैप में शिखर तथा बट। (ए. जोशी)



चित्र-2 बीकानेर जनपद, राजस्थान में बरकान प्रकार का सरल ढलान वाला उन्नतोदर भाग वायु की दिशा में होता है। (शंकर मोहन माथुर)।



VI चित्र-1 आंध्रप्रदेश के तिरुपति मंदिर के उत्तर में कडप्पा क्वार्टजाइट में प्राकृतिक मेहराब। (एस. के. मिसिकर)



चित्र-2 11 दिसंबर, 1967 को कोयना नगर में आए भूकंप के कारण एक क्षतिग्रस्त मकान। (एच. के. गुप्त)



VII चित्र-1
मध्यप्रदेश में जबलपुर के निकट नर्मदा नदी पर धुआंधार जल प्रपात।
(एच. एन. पाण्डे)



VIII चित्र-2
सह्याद्री पर्वतमाला में शरावती नदी पर जोग जल प्रपात।
(आई. बी. अवस्थी)

पश्चिमी तट

भारत का पश्चिमी तट भी कन्याकुमारी में ही समाप्त होता है। पूर्व-पश्चिम दिशा में स्थित, अत्यधिक संकरा मकरान तट टर्शियरी शैलों से निर्मित पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यह एक भ्रंशित तट है। अनेक उभारों ने सागर में खुली खाड़ियों की रचना की है। सिंधु नदी के डेल्टा के दक्षिण में काठियावाड़ प्रायद्वीप स्थित है और केवल इसी के कारण पश्चिमी तटरेखा गुजरात के मैदानों से सुदूर दक्षिण तक लगभग सीधी है। यह भी भ्रंशन के द्वारा ही निर्मित है। यह सीधी दिखाई पड़ने वाली तटरेखा काफी टेढ़ी-मेढ़ी है क्योंकि इसमें अनेक लघुनिवेशिकाएं तट में छोटी गुफाएं तथा संकरी घाटियां (छोटे ज्वांरीय प्रवेश द्वार) अथवा छोटे छोटे जलस्रोतों के नदज्वारमुख हैं। अनेक छोटे स्रोत खड़ी सह्याद्री पहाड़ियों से निकलकर संकरे तटीय मैदान में से प्रवाहित होकर अरब सागर में मिलते हैं। हालांकि ये स्रोत अत्यधिक छोटे हैं, फिर भी उनमें से कुछ ने मोहक जल प्रपात बनाए हैं।

गुजरात के मैदान मुख्यतया साबरमती, माही, नर्मदा तथा ताप्ती नदियों द्वारा लाए गए जलोढ़कों से निर्मित हैं जिन्होंने बड़े बड़े ज्वारनदमुख बनाए हैं। **कोंकण के तटीय मैदान** का पश्चिमी भाग भृगुओं से भरा है तथा अरब सागर में अनेक आधस्थल (शोल) कटक तथा द्वीप हैं। बंबई एक बड़ा महाद्वीप था लेकिन अभिनव वर्षों में सागरीय भाग का भूमि सुधार करके इसे मुख्य भूमि से जोड़ दिया गया है। बंबई के निकट एक जलमग्न वन है जिसकी उपस्थिति यह संकेत करती है कि निकट अतीत में सागर तल कोंकण तट तक ऊपर उठा हुआ था। यह तटीय मैदान चपटे शिखरों वाली नीची पहाड़ियों से भरा हुआ है। कर्नाटक के उत्तरी भाग में पठार के किनारे अनुप्रस्थ, चपटे शिखरों वाले पर्वतस्कंध (Spurs) लगभग तट-रेखा तक दृष्टिगत होते हैं। ये अपघर्षित प्लेटफार्म प्रतीत होते हैं जो अब पश्चिम की ओर प्रवाहित स्रोतों द्वारा विच्छेदित कर दिए गए हैं। केवल मलाबार तट में ही अनेक झीलें, लेगून या पश्च जल आदि मिलते हैं जो इस तट की अपनी एक विलक्षण विशिष्टता है। ये पश्च जल जो स्थानीय भाषा में 'कायाल' कहलाता है, छिछले लेगून या सागर के प्रवेशद्वार हैं, जो तटरेखा के समानांतर स्थित हैं। इन सबमें सबसे बड़ी **बेमबंद झील** है जो लगभग 75 किमी. लंबी तथा 5-10 किमी. चौड़ी है। इसमें एक 55 किमी. लंबी स्पिट है। कोचीन बंदरगाह इसके सागर मुख पर स्थित है। यह पश्च जल मलाबार तट की एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक तथा आर्थिक विशिष्टता है क्योंकि यह आंतरिक जल संचार की सुविधा प्रदान करता है। मानसूनी बाढ़ों द्वारा लाई गई सिल्ट के कारण इसके किनारों पर घने वन तथा बगीचे हैं। कुछ स्थानों में, विशेष रूप से ज्वारनदमुख डेल्टा के अग्रभाग, लवणयुक्त दलदलों के आसपास तट के किनारे सुस्पष्ट मैंग्रोव दलदल दृष्टिगत होते हैं।

बेमबंद झील से पृथक महाद्वीपीय शेल्फ में कोचीन तथा अलेप्पी के बीच अद्भुत

पंक तट दृष्टिगत हुए हैं। ये छिछले जल में, लगभग 10 मी. गहराई में स्थित हैं तथा इनका क्षेत्रफल 25 वर्ग किमी. या अधिक है। संभवतया यह प्राचीन हाइड्रोकार्बन उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का आधुनिक समरूप (analogues) है। तीव्र गति से एकत्र होती सूक्ष्म कणिक गादीय मृत्तिका, प्रचुर जैविक पदार्थ, कम आक्सीजन के तलीय जल, तथा सघन, निलंबित पंक आदि इसकी विशिष्टताएं हैं। यह अवसादों में गैस की उत्पत्ति की सर्वोत्कृष्ट परिस्थिति है।

सागर स्तर उच्चावचन

बंगाल की खाड़ी व अरब सागर क्रिटेशस या प्रारंभिक टर्शियरी काल में गोंडवानालैंड के डूबने व टूटने के बाद मूल सागर के विस्तार के कारण अस्तित्व में आए। इसके पश्चात भारतीय तट की आकृति ने वर्तमान रूप धारण कर लिया, हालांकि उत्तर प्लायस्टोसीन तथा प्रारंभिक होलोसीन काल में इस आकृति में संशोधन व परिवर्तन हुए तथा साथ ही सागर स्तर में भी उतार-चढ़ाव हुआ। इस तथ्य के प्रचुर प्रमाण हैं कि समुद्री अतिक्रमण ऐतिहासिक काल में हुआ था।

अभिनव काल में अवतलन व अतिक्रमण का सर्वोत्तम उदाहरण बंबई द्वीप के पूर्वी छोर पर वर्तमान सागर स्तर के नीचे 6-12 मी. की गहराई पर जलमग्न वन है। सागर पुरातत्ववेत्ताओं ने सौराष्ट्र के तट के पास अभी हाल ही में द्वारका के प्राचीन नगर के पुरावशेषों को छिछले सागर जल में से खोज निकाला है। काठियावाड़ तट तथा कच्छ की खाड़ी में सागर स्तर के सुस्थितिक परिवर्तनों के अच्छे उदाहरण हैं। यहां उभरी हुई प्रवाल भित्तियां तथा शक्ति संस्तर उच्च स्तर तक अंतःस्थलीय विस्तारित हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि या तो भूमि थोड़ी उठी है अथवा सागर स्तर गिरा है। बेलांचली (लिट्टोरल) कांक्रीट की शुद्ध भित्ति अथवा सीपों तथा प्रवालों के भली प्रकार से सीमेंटित कैल्सीय संस्तर पश्चिमी तट पर अनेक स्थानों में विशेषतया बंबई शहर में दृष्टिगत होते हैं। इसी प्रकार के उभरे हुए शक्ति संस्तर (ऑयस्टर बेड्स) कलकत्ता के निकट भी पाए जाते हैं। इसी प्रकार के उदाहरण भारतीय तट के और भी स्थानों में दृष्टिगत होते हैं।

उच्चावचित सागर तल का सर्वोत्तम उदाहरण कच्छ के रण का वर्तमान विस्तृत दलदली भाग है। द्रवणक्रांतिक परिवर्तनों के उल्लेखनीय प्रमाण उत्तरी छोर पर स्थित तटीय टिब्बे, अंतःस्थलीय खाड़ी के द्वीपों में स्थित सागरीय भृगु, मैदानों में सागरीय गुफाएं तथा इन द्वीपों के किनारों पर स्थित बेलांचली कांक्रीट के उभरे हुए तट आदि हैं। सागर तल में कुल गिरावट लगभग 26 मी. मापी गई है। कच्छ के रण के सूखने के पूर्व लूणी नदी कोरी ज्वारनदमुख से बड़ी रण की पूरी लंबाई को पार करके अरब सागर में मिलती थी, तथा पश्चिमी बनास नदी छोटी रण से प्रवाहित होती हुई कच्छ की खाड़ी में गिरती है।

महाद्वीपीय शेल्फ पर स्थित गंगा तथा सिंधु के डेल्टा के सामने स्थित दो 'भूमि

रहित प्रतिदर्श' कुछ भूवैज्ञानिकों द्वारा अतीत की विशाल नदियों के जलमग्न भाग माने जाते हैं। यह एक ज्ञात सत्य है कि गंगा डेल्टा के सामने स्थित कुछ दीपों के आकार व परिमाण सागर स्तर के घटने व बढ़ने से बदलते रहते हैं। समय के अंतराल में पुराने द्वीप विलुप्त हो गए हैं तथा नए द्वीपों का निर्माण भी हुआ है। गंगा डेल्टा में पिछले कुछ वर्षों में विकसित न्यूमूर द्वीप का उद्भव इसका एक अच्छा उदाहरण है।

अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह सागर तल में भूस्थितिक उत्थान तथा पतन का एक अच्छा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। उभरे हुए प्रवाल तट, सागरीय संकोणाश्म तथा उत्थित प्लेटफार्मों में सागरीय गुफाएं जो कि उच्च जल स्तर से काफी ऊपर हैं, इसके प्रमाण हैं।

जलमग्नता का एक अन्य उदाहरण तट के अनुप्रस्थ रूप में प्रवाहित अनेक तटीय नदियों की डूबी हुई घाटियों की उपस्थिति है।

पश्चिमी तट से कुछ दूर अरब सागर स्थित कुछेक द्वीपों के संबंध में ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे तटीय मैदान पर स्थित मेसा तथा ब्यूट हैं जिनके निकटवर्ती निचले क्षेत्र के जलमग्न हो जाने के कारण ये अलग होकर द्वीप बन गए हैं।

कुछ अन्य उदाहरण भी हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि प्रायद्वीप के चारों ओर सागर जल स्तर घटा है, इस संबंध में भारत के दक्षिणी छोर व श्रीलंका के मध्य स्थित पाक जलडमरूमध्य के भूमि सेतु तथा छिछले प्लेटफार्म का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

तटीय बालू में खनिज

पूर्वी तथा पश्चिमी तट एवं प्रायद्वीप के आसपास स्थित अनेक तटवर्ती क्षेत्रों में बालू है जिसमें बहुमूल्य भारी खनिजों यथा इल्मेनाइट, मोनाजाइट रूटाइल, जिरकॉन तथा सिलिमेनाइट के उच्च सांद्रण हैं। इस प्रकार के क्षेत्र, उड़ीसा के कटक जनपद, आंध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम, तमिलनाडु में कावेरी डेल्टा से लेकर कन्याकुमारी तथा केरल का संपूर्ण पश्चिमी तट, जो महाराष्ट्र के रत्नगिरि जनपद तक विस्तारित हैं, में दृष्टिगत हैं। इल्मेनाइट तो इस बालू में लगभग सभी स्थानों पर उपलब्ध है, तथा तट के अनेक स्थानों में इसकी मात्रा 60-80 प्रतिशत तक है। रूटाइल, इल्मेनाइट का एक निकट गुणक है। तटवर्ती भागों में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा केरल की पश्चिमी तटवर्ती बालू में मोनाजाइट का सांद्रण कहीं अधिक ऊंचा है। इनमें से कई निक्षेप तो बहुत अधिक समृद्ध हैं तथा बहुमूल्य खनिज के प्राप्ति-स्रोत हैं।

तटवर्ती बालू में भारी खनिजों की उत्पत्ति अभी भी अनुमानित है। उनकी उत्पत्ति सभवतया क्रिस्टलीय शैलों व मुख्य भूमि के कुछ टर्शियरी अवसादों के अपक्षरण तथा नदियों द्वारा उनको सागर तक ले जाने के कारण हुई। लहरों की बारंबार क्रिया उनकी छंटाई तथा बालू रोधों एवं टिब्बों में सांद्रित होने का कारण हो सकती है। यह प्रक्रिया

करोड़ों वर्षों से अबाध रूप से चल रही है, जिसके कारण भारी खनिज, प्राचीन उठे हुए तट जो अब बालू टिब्बों में दब गए हैं, रोधिका तट तथा वर्तमान तट में निक्षेपित हुए हैं। वह सांद्रण तटों तथा महाद्वीपीय किनारों, सागर तल स्तर तथा स्रोत प्रवाह मार्गों में परिवर्तन एवं उनके प्रवाह मार्ग भूप्रदेश के भूविज्ञान द्वारा नियंत्रित हुआ है।

सौराष्ट्र और कच्छ तटों की कैल्सीय बालू तथा सीपों का उपयोग सीमेंट के उत्पादन में किया जा रहा है। केरल तट के कुछ पश्च जल भागों में भी सीप निक्षेप हैं जिन पर एक सीमेंट संयंत्र आधारित है। लक्षद्वीप द्वीप समूह के प्रवाल रेणु शुद्ध कैल्सियम कार्बोनेट के ही बने हैं। 50 प्रतिशत से अधिक कैल्सियम कार्बोनेट सांद्रता वाले कैल्सीय भी अवसादों के पश्चिमी क्षेत्र तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों के निकटवर्ती क्षेत्र में मानचित्रित किए गए हैं। इन निक्षेपों का अभी तक उपयोग नहीं हुआ है परंतु इनका उपयोग सीमेंट उद्योग में कच्चे माल के रूप में किया जा सकता है।

तटीय किनारों से फास्फेट तथा बेरियम सांद्रण भी प्राप्त किए जा सकते हैं परंतु वे किसी आर्थिक महत्व के प्रतीत नहीं होते।

कुछ तटीय निक्षेप कम गहराई पर अपतटीय क्षेत्र तक विस्तारित हैं। इस प्रकार की कुछ उपलब्धियां कोंकण तट से दूर ज्ञात हुई हैं तथा प्रायद्वीप के विस्तृत महाद्वीपीय किनारे के अन्य भागों में किए जा रहे सर्वेक्षण कार्य से निःसंदेह इस प्रकार के प्लेसर का पता लगेगा।

कच्छ का रण

कच्छ का रण भारत की एक अत्यधिक उल्लेखनीय प्राकृतिक विशिष्टता है। रण एक विस्तृत समतल लवण से भरा हुआ निचला सपाट भाग है जो सर्वाधिक रूप से सागर जल से भर जाता है तथा राजस्थान से प्रवाहित बनास व लूणी नदियां भी अपना सारा जल इसमें प्रवाहित करती हैं। यह विशाल कच्छ का रण प्रायद्वीप के उत्तर तक विस्तारित है। एक संकरा मार्ग इसको छोटे रण से जोड़ता है, जो वास्तव में कच्छ की खाड़ी का ही विस्तार है। बृहत रण पूर्व से पश्चिम तक लगभग 320 किमी. लंबा तथा अपनी अधिकतम चौड़ाई में 160 किमी. है और यह लगभग 17,000 वर्ग किमी. क्षेत्र को घेरे हुए है। इसका स्तर सागर स्तर से कुछ मीटर ऊंचा है तथा तीन स्थानों पर किंचित अवनमित है। यह गहरे रंग की धूप से तपी हुई सिल्ट से निर्मित है जिसमें कहीं कहीं लवण की पपड़ी भी दृष्टिगत होती है। मैदान की सतह से कुछ मीटर ऊपर तक उठे कुछ द्वीप के समान भाग दृष्टिगत होते हैं जिनमें कुछ शैल के बने हुए हैं, कुछ बालू या घास से आच्छादित हैं। बृहत रण में सबसे बड़े शैल निर्मित द्वीप पच्छम, खादिर तथा बेला हैं।

छोटा रण एक त्रिभुजाकार आकृति है जो कच्छ की खाड़ी की ओर संकरी लगभग 10 किमी. चौड़ी तथा पूर्व की ओर 80 किमी. चौड़ी हो जाती है। इसकी लंबाई

100 किमी. तथा क्षेत्रफल 6,600 वर्ग किमी. है। यह भी लवण का पर्पटीमय नीचा सपाट स्थल है। इसकी एकरसता बड़े रण के समान ही कुछ उभरे हुए द्वीप समूह से भंग होती है।

प्रतिध्वनिक गभीरतामापन से यह ज्ञात होता है कि कच्छ की खाड़ी के मध्य में ऊब्ड़-खाबड़ तली वाला एक उल्लेखनीय पूर्व-पश्चिम दिशा स्थित गहरा अवनमन है। यह तलहटी धाराओं की निघर्षण क्रियाओं द्वारा विवर्तनिक रूप से निर्मित संरचना के आसपास हो सकता है। रण की उत्तरी सीमा पर एक भ्रंश ज्ञात किया गया है, तथा 1819 के विशाल कच्छ भूकंप ने रण के मध्य भाग को कई मीटर ऊंचा उठा दिया है।

महाद्वीपीय किनारे

सामान्य

समस्त सागर तट एक अधःसागरीय कगार—महाद्वीपीय सीमा से घिरा हुआ है अर्थात सागर की तलहटी तटरेखा तथा सागर तल की गहराइयों के बीच स्थित है। यह सीमा पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में कहीं अधिक चौड़ी है। पश्चिमी सीमा भारतीय मुख्यभूमि के दक्षिण छोर से उत्तर की ओर काठियावाड़ प्रायद्वीप तक क्रमिक रूप से चौड़ी है। इस शेल्फ सीमा के ठीक आगे सागर की गहराई एकदम से 1,500 मी. हो गई है। अरब सागर बंगाल की खाड़ी की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा है।

महाद्वीपीय शेल्फ, जो महाद्वीपीय सीमा का ही एक भाग है, बहुत ही कम ढलान वाला है तथा तटरेखा और महाद्वीपीय ढाल के मध्य स्थित है। यह सामान्यतया 200 मी. गहरा है और इसी प्रकार पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में अधिक चौड़ा है। पूर्वी शेल्फ हालांकि लगभग विभिन्न असंगतियों (incongruities) से रहित है लेकिन अरब सागर में अनेक माधस्थल कटक तथा छोटे छोटे द्वीपों के कारण तटीय नौवहन काफी कठिन व जोखिम भरा है। कोरोमंडल तट पर यह शेल्फ काफी संकरी है। यह सत्य है कि श्रीलंका द्वीप दक्षिण भारतीय मुख्यभूमि का ही भाग था, जो अभिनव काल में ही उससे अलग हुआ है। यह एक जलमग्न प्लेटफार्म द्वारा अलग है—जो आदम का पुल कहलाता है तथा तीन मीटर तक ही गहरा है। भारत-श्रीलंका जलडमरूमध्य के बाहर तटीय शेल्फ एकदम से 100-2,000 फैदम की गहराई में चली जाती है। भारतीय तट के इस भाग में जुरैसिक से मध्य प्लायोसीन काल में सागर का बार बार अतिक्रमण होता रहा है परंतु तटों की वर्तमान आकृति का निर्धारण क्रिटेशस काल में हुआ है। तटीय शेल्फ गंगा डेल्टा के दक्षिण में छिछली होती हुई काफी चौड़ी हो गई है। इसका प्रमुख कारण गंगा तथा ब्रह्मपुत्र द्वारा अत्यधिक मात्रा में जलोढ़क निक्षेपण है।

शेल्फ के परे महाद्वीपीय ढाल स्थित है, जो महाद्वीपीय सीमा का ही एक भाग है जो कि महाद्वीपीय उच्चता (या सागरीय खाई) तक विस्तारित है जिसकी ढलान

नियमतया 3° - 6° तक है। जब तटरेखा तथा महाद्वीपीय ढलान के मध्य कटक तथा द्रोणियां हों और स्थलाकृति ढलान की अपेक्षा काफी जटिल हो तो किनारे का यह भाग महाद्वीपीय सीमाभूमि कहलाता है। वह भाग जो ढलान तथा सागरीय गहराई के बीच स्थित है (सागरीय खाइयों के क्षेत्रों को छोड़कर) महाद्वीपीय उच्चता कहलाता है। इसकी सरल ढलान 1 में 40 से 1 में 2,000 है परंतु इसमें अधःसागरीय कैनियन हो सकते हैं।

महाद्वीपीय शेल्फ तथा ढलान के क्षेत्रों को अनुगभीर समोच्च रेखा के रूप में 1 : 1 मिलियन पैमाने पर अभिकलित करके नीचे पृष्ठ पर दिया गया है :

	शेल्फ 0-200 मी. गहराई (वर्ग किमी.)	*ढलान 200-2,000 मी. गहरा (वर्ग किमी.)*
पूर्वी सीमा	90,800	79,200
पश्चिमी सीमा	310,000	163,000
अंडमान-निकोबार (छिछला जलमग्न प्लेटफार्म तथा द्वीपीय चाय का ढाल)		
लक्षद्वीप (छिछला, जलमग्न प्लेटफार्म तथा कटक का ढाल)	38,400	118,800
	8,400	101,200
योग	447,600	462,200

शेल्फ का निकट तटक्षेत्र, 15 मी. गहराई तक क्वार्टज तथा भारी खनिज बालू से निर्मित है। अभिनव कम कैल्सियम कार्बोनेट वाली तथा अधिक कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध स्थलजात सिल्ट तथा मृत्तिका 15 से 60 मी. की गहराई तक सागर की तलहटी का निर्माण करती है। 60 मी. से अधिक तथा 200 मी. की गहराई तक बाहरी शेल्फ का निर्माण अवशिष्ट कार्बोनेट बालू तथा कार्बोनेट शैलों यथा होलोसीन आयु के शैवालीय एवं ऊलाइट चूना-पत्थरों से हुआ है।

अरब सागर की ओर स्थित भारत-पाकिस्तान महाद्वीपीय सीमा पर अवसादों का सूक्ष्मतम भाग पृथक होकर महाद्वीपीय ढाल के सबसे ऊपरी भाग में निक्षेपित हो गया है, जहां पर अभिनव अवसादन अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है। केवल स्थूल पदार्थ ही बाहरी शेल्फ पर निक्षेपित हुए हैं। ये ऊलाइट समृद्ध हैं और प्लायस्टोसीन के अंतिम भाग में जब सागर अपने निम्न स्तर पर था, निर्मित हुए।

सीमांत अवसादों के भूरासायनिक अनुसंधानों से केरल, मंगलौर तथा बंबई के तटवर्ती भागों में फास्फेटीय अंश पाए गए हैं। लौह, मैगनीज, निकल, कोबाल्ट तथा तांबे का सांद्रण बाहरी शेल्फ तथा ढाल की अपेक्षा आंतरिक शेल्फ क्षेत्र के सूक्ष्म कणिक अवसादों में अधिक है।

पूर्वी महाद्वीपीय सीमा

महानदी तथा कावेरी के डेल्टा के बीच स्थित यह सीमा कम चौड़ाई वाला मात्र 30 से 60 किमी. चौड़ा क्षेत्र है। गणनाओं द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि यह शेल्फ भारत की बड़ी नदियों द्वारा लाए जा रहे अवसादों के कारण सागर में आगे बढ़ता जा रहा है तथा इसके बढ़ने की दर एक किलोमीटर प्रति 25 वर्ष है। यह शेल्फ महाद्वीपीय ढाल तथा तटीय बालू एवं मृत्तिका के स्थलजात पंक के बीच कार्बोनेट निक्षेपण का क्षेत्र है। कैल्सीय पदार्थ मुख्यतया ऊलाइट तथा फोरामिनीफेरा खोल के रूप में हैं। इनका निर्माण संभवतया प्लायस्टोसीन हिमनदन के निम्न सागर तल के समय में हुआ होगा।

पश्चिमी महाद्वीपीय सीमा

भारतीय सागर तट की पूर्वी सीमा की अपेक्षा यह सीमा कहीं अधिक चौड़ी है। दक्षिणी सिरे पर मात्र 40 किमी. चौड़ी यह सीमा काठियावाड़ प्रायद्वीप के दक्षिण तक क्रमशः चौड़ी होती हुई 330 किमी. तक चौड़ी है। रत्नागिरि तट के सामने शेल्फ से एक बड़ा लगभग 125 किमी. का प्लेटफार्म सागर में उठा हुआ है। यह तट 200 मी. से अधिक की गहराई से ऊर्ध्वाधर रूप में लगभग 150 मी. तक ऊर्ध्वाधर उठा है। सिंधु कैनियन के दक्षिण में दर्शक सागर शिखर स्थित है जो लगभग 1,500 मी. की गहराई से 1,100 मी. ऊंचा है तथा सागर तल से लगभग 450 मी. नीचे है। इस क्षेत्र में कुछ और अधःसागरीय पहाड़ियां ज्ञात की गई हैं। यहां संभवतया डेक्कन ट्रैप की सक्रियता से संबंधित अधःसागरीय ज्वालामुखी हैं।

यहां पर शेल्फ की तलहटी तीन प्रकार के अवसादों से निर्मित है जो क्रमिक रूप में एक-दूसरे में समाहित हो गए हैं। तट के निकटस्थ क्षेत्र का निर्माण क्वार्टज बालू से हुआ है, (जिसमें इल्मेनाइट तथा मैग्नेटाइट जैसे भारी खनिज हैं)। इसकी गहराई 5-10 मी. तक है। मृत्तिका तथा सिल्ट 60-70 मी. की गहराई तक तथा इसके और आगे सागर की ओर सीपियों, ऊलाइट तथा शैवालों से युक्त कैल्सीय अवसाद हैं। अंतःशेल्फ अवसाद पश्चिमी तट की वर्तमान नदियों की देन हैं, कार्बोनेट निक्षेपण उस समय हुआ जब पश्च प्लायस्टोसीन काल में सागर तल वर्तमान की अपेक्षा कहीं अधिक नीचा था।

पश्चिमी महाद्वीपीय सीमा पर दो महत्वपूर्ण अंतःसागर प्लेटफार्म या 'तट' हैं। बंबई से 65 से 250 किमी. पश्चिम स्थित यह तट बाम्बे हाई के नाम से जाना जाता है, जो पेट्रोलियम उत्पादन क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया है। इसके लगभग 25,000 किमी. तक के क्षेत्रफल में अनेक संरचनाएं फैली हुई हैं जो सीधी खड़े रूप में सागर तल से 20-80 किमी. तक हैं तथा गहराई में सागर तल से 300 मी. नीचे तक हैं। पेलियोसीन से मायोसीन काल के अवसाद इस अपतटीय क्षेत्र के आधार तल में सबसे ऊपर स्थित हैं। दूसरा, अंगारिया तट, रत्नागिरि तट से सागर की ओर लगभग

125 किमी. बाहर तक विस्तृत है। यहां पर एक छोटा प्लेटफार्म 2,000 मी. से भी अधिक गहराई से सागर तल के 50 मी. नीचे तक सीधा उठा हुआ है।

अंतःसागरीय कैनियन

खड़ी दीवारों वाली, लंबी खाइयां तथा अधिकांशतया 'V' आकार वाली घाटियां जो महाद्वीपीय ढाल में दृष्टिगत होती हैं अंतःसागरी कैनियन के नाम से जानी जाती हैं। समुद्र वैज्ञानिकों के मतानुसार ये आविल धाराओं (turbidity Currents) की महाद्वीपीय शेल्फ में गभीर सागर क्षेत्र में गहरी द्रोणिकाएं काटने से बनती हैं। आविल धाराएं सागर की तलहटी में प्रवाहित होने वाले वे स्रोत हैं जो निलंबित अवसादों से भरे हुए हैं जो जलपिंडों यथा झीलों तथा सागरों के अधोजलीय ढालों पर अत्यधिक तीव्रता से प्रवाहित होते हैं। निलंबित अवसाद के कारण इनका घनत्व निकटवर्ती स्वच्छ जल की अपेक्षा अधिक है जिस कारण इनकी अपरदन शक्ति भी अधिक है। एक अन्य विचारानुसार अंतःसागरीय कैनियन भ्रंशन तथा पटल विरूपण के परिणामस्वरूप बनते हैं। संभवतया आविल धाराएं तथा भ्रंशन दोनों ही इन कैनियनों की उत्पत्ति तथा उनकी गहराई के लिए उत्तरदायी हैं। आविल धाराएं अवसादों की अधिक मात्रा को कैनियनों के आसपास से हटाकर संपूर्ण ढाल पर एकत्रित करती हैं तथा सागर तल में फैला देती हैं।

भारत के सागर तट से दूर गंगा डेल्टा के सामने स्थित एक प्रसिद्ध कैनियन स्वाश आफ नो ग्राउंड' है। यह बंगाल की खाड़ी की एक विलक्षण विशिष्टता है क्योंकि यह महाद्वीपीय सीमा को एक संकरे, खड़ी दीवारों वाले अवनमन को काटता है। यह कम-से-कम 150 किमी. लंबा तथा अपनी अधिकांश लंबाई में 12-15 किमी. चौड़ा है परंतु खाड़ी में अपने खुलने के स्थान पर लगभग 30 किमी. चौड़ा है। अपने शीर्ष पर वह मात्र 20-25 मी. ही गहरा है परंतु थोड़ी-सी ही दूरी पर यह एकदम से 900 मी. से भी अधिक गहरा हो जाता है। सामान्य रूप से इसका तल लगभग सपाट है। अपने आरंभ में यह कैनियन लगभग दक्षिण-पश्चिम दिशा में है परंतु धीरे धीरे लगभग 80 किमी. की दूरी में इसकी दिशा दक्षिण की ओर हो जाती है। पूर्व दृष्टिकोण के अनुसार ये 'स्वाश' संभवतया भ्रंशन तथा उसके घटकों द्वारा महाद्वीपीय सीमा के उत्कीर्णन के परिणामस्वरूप बनी हैं, परंतु आधुनिक सागरीय अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि इसका निर्माण आविल धाराओं के उत्कीर्णन प्रभाव के कारण हुआ है। इस विचार को बंगाल की खाड़ी की तलहटी में फैले कैनियन के सामने स्थित एक विशाल अंतःसागरीय पंखे की उपस्थिति से भी समर्थन मिला है। शब्द 'स्वाश आफ नो ग्राउंड' को सिंधु डेल्टा के सामने स्थित एक अन्य कैनियन के लिए भी प्रयुक्त किया गया है, और इनके बीच के भ्रम को दूर करने के लिए इस कैनियन को गंगा कैनियन का नाम दिया जाना अधिक उपयुक्त होगा।

सिंधु डेल्टा के सामने स्थित सिंधु कैनियन लगभग 115 किमी. लंबा तथा 8-10 किमी. चौड़ा है। डेल्टा के किनारे पर इसकी तलहटी सागर तल से 120 मी. नीचे है तथा शेल्फ सिरे पर यह गहराई 1,130 मी. है। इसकी सागर की ओर गहराई 1,800 मी. से भी अधिक ज्ञात की गई है जहां पर यह समाप्त होता प्रतीत हुआ है, सागर की ओर इसके विस्तार रूप में एक विशाल पंखा है। इस पंखे से यह ज्ञात होता है कि यह आविल धाराओं द्वारा उत्कीर्णित है। दोनों स्वाशों की खड़ी दीवारें हैं तथा इनकी तलहटी प्रारूपिक अंतःसागरीय कैनियनों की तरह 'V' आकार की न होकर चौड़े चपटे पेंदे वाली है। शैल दीवारें तथा सहायिकाएं इनमें नहीं पाई गई हैं।

वर्तमान में आधुनिक सागरीय शोधों से पूर्वी महाद्वीपीय सीमाओं पर भी कई छोटे छोटे अंतःसागरीय कैनियन का पता लगा है। जो कैनियन विशाखापट्टनम के पूर्व-उत्तर पूर्व में ज्ञात किए गए हैं, उन्हें आंध्र, महादेवन तथा कृष्णन कैनियन नाम दिया गया है। ये छोटे हैं तथा महाद्वीपीय ढाल में ही काटे गए हैं। इस तट पर स्थित अन्य कैनियन कुड्डालोर, पुडूचेरी, पालार स्वर्णमुखी समूह, पेन्नार समूह, नागार्जुन समूह, गोदावरी समूह, गौतमी समूह तथा कुछ अन्य हैं। इनमें से अधिकांश मुख्य तथा गौण नदियों के मुहाने के आसपास मिलते हैं। इनसे संबंधित अनुसंधान अभी भी प्रारंभिक चरणों में हैं। अतः इनकी उत्पत्ति के वास्तविक कारणों के संबंध में निश्चित जानकारी नहीं है, लेकिन संक्षिप्त रूप में यह कहा जा सकता है कि प्लायस्टोसीन काल और संभवतया उससे भी पहले इनका निर्माण नदियों के भूपृष्ठीय अपरदन द्वारा हुआ होगा, क्योंकि भारत के पूर्वी तट ने अपनी वर्तमान आकृति उपरि जुरैसिक काल में प्राप्त की है।

श्रीलंका के पूर्वी तट पर ट्रिंकोमाली से दूर शेल्फ में एक कैनियन प्रीकैम्ब्रियन नाइसों तथा क्वार्टजाइट में काटता है। यह महावेलि नदी के कोड्डियार खाड़ी के ज्वारनदमुख का विस्तार है। इसकी खड़ी दीवारों की औसत प्रवणता ऊर्ध्व से 7.3° है जो इसे विश्व में सबसे अधिक खड़ी दीवारों वाला कैनियन बनाती है। इसका उत्कीर्णन सरिता अपरदन द्वारा भूवैज्ञानिक अतीत में किया गया था तथा सागरीय प्रक्रियाओं ने इसे संशोधित किया है। श्रीलंका के सीधे तटीय क्षेत्र में कुछ अन्य कैनियन का भी सर्वेक्षण किया गया है।

यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि अंतःसागरीय कैनियन को भारत के पूर्वी तट पर ही पाया गया है। सह्याद्री पर्वतमाला से कोई भी प्रमुख नदी संकरे तट से प्रवाहित होती हुई सागर में नहीं गिरती है। अतः अवसादों का परिवहन अरब सागर में आविल धाराओं को उत्पन्न करने के लिए अपर्याप्त रहा है। इसके उपरांत भी पश्चिमी सागर तट की महाद्वीपीय सीमा इतनी अधिक चौड़ी है कि जो हल्की धाराएं उत्पन्न भी हुई उनकी अपरदन क्षमता थोड़ी ही दूरी पर समाप्त हो गई। भारत के पश्चिमी तट के सामने महाद्वीपीय शेल्फ में अंतःसागरीय कैनियन की अनुपस्थिति के यही कारण प्रतीत होते हैं।

सागर

सामान्य

नौवहन उद्देश्य के ब्रिटिश नौसेना चार्ट के अतिरिक्त भारतीय उपमहाद्वीप को घेरे हुए दो सागरों से संबंधित बहुत कम अनुगभीर आंकड़े उपलब्ध हैं। 1933-34 के जॉन मरे अभियान द्वारा भारतीय सागरों से संबंधित प्रथम वैज्ञानिक आंकड़े एकत्र किए गए। भारतीय सागरों से संबंधित जानकारी ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तब गति पकड़ी जब विश्व के अनेक देश यथा संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, डेनमार्क, ब्रिटेन आदि ने महासागरीय अभियान प्रारंभ किए। वर्ष 1961-65 की अवधि में एक विशेष अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान आयोजित किया गया जिसमें भारत ने भी भाग लिया था। अब अपने स्वयं के शोधपोतों के द्वारा भारत ने अपने को घेरे हुए सागरों में से अब तक अज्ञात प्राकृतिक स्रोतों के सर्वेक्षण तथा वैज्ञानिक गवेषण के लिए सुव्यवस्थित अन्वेषी अभियान प्रारंभ किए हैं।

हाल के वर्षों में भारत को घेरे हुए सागरों ने अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। भूवैज्ञानिक अतीत में ये जलपिंड अवसादी शैलों के एकत्रीकरण के मूल संग्रह स्थल थे, और आधुनिक सागरों का अध्ययन अवसादन की प्रक्रिया को समझने में सहायता प्रदान करता है। पिछले कुछ वर्षों के सागरीय अध्ययनों से एक नई बात सामने आई है वह है महाद्वीपीय सीमा पर सागर तल में पेट्रोलियम के विशाल भंडारों तथा आर्थिक महत्व के खनिज निक्षेपों की खोज। बॉम्बे हाई में पेट्रोलियम धारक संरचना तथा अरब सागर के अपतटीय क्षेत्रों में बहुमूल्य खनिज पिंडों की प्राप्ति कुछेक ऐसी महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं जिन्होंने भारत में अंतःसागरीय अध्ययनों को नई दिशा प्रदान की है। अतः भारत के भूवैज्ञानिक इतिहास में सागरों की भूमिका का अध्ययन एक सुनिश्चित आवश्यकता बन गई है।

हिंद महासागर प्रायद्वीप को घेरे हुए है—पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम की ओर अरब सागर इसे घेरे हुए हैं। अभिनव सागरीय शोधों से स्पष्ट हुआ है कि सागर बहुधात्विक पिंड तथा छिछली शेल्फ और प्लेटफार्म में पेट्रोलियम की प्रचुर संभावनाएं हैं। इनसे सागरों को अत्यधिक भूवैज्ञानिक महत्व प्राप्त हुआ है तथा भूविज्ञान का क्षेत्र पारंपरिक स्थल-भूमि को पार कर चुका है। भूवैज्ञानिक काफी लंबे समय तक भूमि पर खनिज तथा शैलों का अध्ययन करता रहा है। उसने इस बात को भुला दिया कि अवसादन तथा महाद्वीप निर्माण की महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं सागरीय द्रोणियों तथा द्रोणिकाओं में चलती रही हैं तथा इन प्रक्रियाओं को समझने के लिए इनका अध्ययन अति आवश्यक है। परंतु इस ग्रस्तता के लिए अपने पैरों के नीचे दृढ़ आधार लिए केवल भूवैज्ञानिक ही उत्तरदायी नहीं हैं, क्योंकि जब तक उन्हें आधुनिक, सुग्राही उपकरण उपलब्ध नहीं कराए जाते तब तक वे गहराइयों तक जो अभी भी अधिकांशतया 'अज्ञात

क्षेत्र' हैं, के अध्ययन हेतु शायद ही कोई जोखिम उठा सकें।

बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर दोनों ही में अनेक सागरीय कटकें हैं जो सागर की तलहटी से हजारों मीटर ऊंची उठी हुई हैं और जब ये सागर तल से ऊपर उभरती हैं तो द्वीपों की शृंखला का निर्माण करती हैं। इन्होंने विश्व की विवर्तनिकी तथा भूविज्ञान को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है परंतु आज भी इनके विषय में उपलब्ध जानकारी लगभग नगण्य है।

आज भी हमारे आसपास के सागरों के अवसादन की प्रक्रिया सतत रूप से चल रही है। भारतीय मुख्यभूमि से प्रवाहित अनेक सरिताएं अवसादों की अत्यधिक मात्रा अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में डाल रही हैं। उदाहरण के लिए सिंधु नदी प्रतिवर्ष 440 मिलियन टन अवलंबित पदार्थ को ढोकर अरब सागर में डालती है। इसके अतिरिक्त मानसून भी लाखों टन धूल परिवहित करती है जो अंत में सागर में ही पहुंचती है।

अरब सागर

भारत के पश्चिमी तट की महाद्वीपीय सीमा जो मलाबार तट के सामने है, एकदम से 4,500 मी. से भी अधिक गहरी अंतःसागरी घाटी में मिलती है, जिसे छागोस खाई कहा जाता है जो शेल्फ को चौड़ी अनियमित अंतःसागरी कटक छागोस-लक्षद्वीप कटक से पृथक करती है। यह कटक 15° उत्तर अक्षांश से अंतरायिक रूप में विस्तारित होती हुई लक्षद्वीप, मिनीकॉय, मालदीव द्वीपों से होती हुई छागोस द्वीप समूह और वहां से और दक्षिण में मध्य हिंद महासागर कटक से मिलती है।

यह अरब सागर के पश्चिमी ओर मरे कटक कराची से प्रारंभ होकर अमन की खाड़ी से दक्षिण दक्षिण-पश्चिम की दिशा ग्रहण कर अदन की खाड़ी में मिलती है। ये दो समानांतर कटकें हैं जो सागर तल से 600 मी. नीचे एक गहरी विभ्रंश घाटी द्वारा पृथक हैं। संभवतया यह वर्तमान सिंधु नदी घाटी का ही एक विस्तार है और संभवतया भारतीय तथा अरब प्लेटों के बीच वर्तमान सीमा का एक संकेत मात्र है। इनका अक्ष संभवतया विवर्तनिक निरंतरता द्वारा सिंधु की ईओसीन तथा ऑलिगोसीन शैलों से निर्मित किरथर पर्वतमाला के क्रम में है। यहां पर तिर्यक कटक तथा गर्तों की उत्तर पूर्व-दक्षिण पश्चिम दिशावर्ती एक शृंखला है जो अदन की खाड़ी में पूर्ववर्ती मरे कटक के लंबवत है। इसके पार ओबेन विदर क्षेत्र स्थिति है तथा 10° उत्तर अक्षांश से एक अन्य अंतःसागरी उच्च है जो उत्तर पश्चिम-दक्षिण पूर्व दिशा में विन्यस्त कार्ल्सबर्ग कटक है। यह कटकों तथा गर्तों की एक चौड़ी शृंखला है तथा दक्षिणावर्ती होकर यह मध्य-हिंद महासागरी कटक में मिल जाती है।

सामान्यतया यह माना जाता है कि अरब सागर की तलहटी की स्थलाकृति के 'उच्च' तथा 'निम्न' और पूर्वी अफ्रीका की विशाल विभ्रंश घाटी क्षेत्र में उल्लेखनीय

समानता है। 1961-65 के अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि भूकंपीय रूप से सक्रिय मध्य महासागरीय कटक तंत्र अरब की खाड़ी से होता हुआ पूर्वी अफ्रीका की विभ्रंश घाटी में मिल जाता है और वहां सेशेलीज तट पर एक भूकंपीय कटक दृष्टिगत होती है।

अरब सागर की तलहटी में स्थित वितलीय मैदान जो एक पंखे के अवसादों से आच्छादित है इसका शीर्ष सिंधु शंकु है, तथा यह कराची से कार्ल्सबर्ग कटक द्वारा सीमित है। यहां पर अभिलेखित सागर की अधिकतम गहराई 4,380 मी. है। यह बंगाल की खाड़ी से कहीं अधिक गहरी है।

बंगाल की खाड़ी

अरब सागर की अपेक्षा इस सागर की तलहटी की स्थलाकृति कम जटिल है। अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह एक अंतःसागरीय कटक से सतह के ऊपर दिखते हैं। यह कटक दक्षिण-पूर्व की ओर घूमती हुई इंडोनेशिया चाप तक फैली है। लंबी जावा खाई जो दोनों कटकों के बीच स्थित है, सागर तल के नीचे 7,450 मी. गहरी है। एक अन्य कटक जो अंडमान के पश्चिम से प्रारंभ होती है सीधे दक्षिण की ओर विस्तारित होती हुई लगभग 6,500 किमी. लंबी 33° दक्षिण अक्षांश तक लगभग अटूट है। यह अपनी इस अक्षांश रेखा पर स्थिति के कारण 90 पूर्व कटक कहलाती है।

क्रिटेशस के अंतिम भाग में 90 पूर्व कटक भारतीय प्लेट का एक भाग थी तथा इसी अवधि में यह त्वरित गति से ऊपर की ओर संचलित हुई। टर्शियरी के प्रारंभिक काल में यह सागर तल तक ऊपर उठी और उत्तर की ओर हटते समय फिर जलमग्न हो गई।

बंगाल की खाड़ी की तलहटी में स्थित वितलीय मैदान जो 2,000-2,500 मी. गहरा है, एक पंखे के आकार में सूक्ष्म अवसादों से बना है तथा जिसका शीर्ष गंगा शंकु है। यह दक्षिण की ओर उत्तर हिंद महासागर में विषुवत रेखा के पार तक फैला हुआ है। यह विशाल जलोढ़क पंखा 90 पूर्व कटक तथा भारत के पश्चिमी तट द्वारा सीमित है।

सागरों की खनिज समृद्धता

सागर अनेक खनिजों के विशाल निक्षेपों के लिए सुपरिचित हैं, परंतु अपनी अगम्यता तथा उपलब्धि में कठिनाई के कारण इनकी उपेक्षा की गई है। पृथ्वी पर सतत उत्खनन से उत्पन्न कई खनिजों की कमी तथा अंतःसागरीय खनन तकनीक के विकास के कारण अब कई देशों का ध्यान इनके उपयोग की संभावनाओं की ओर आकर्षित होना प्रारंभ हो गया है। हालांकि सागर की तलहटी से इनके उत्खनन का व्यय अत्यधिक है फिर भी कुछ देश इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं और उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब वे लाभदायक रूप से इनका उत्खनन करने में सफल होंगे। भारत भी इस दिशा में पीछे नहीं है तथा

निकटवर्ती सागरों में गवेषणाएं कर रहा है। अरब सागर के गहरे भागों में बहु-धात्विक पिंड खोजे जा चुके हैं। इनमें 30 प्रतिशत तक मैगनीज तथा लौह हैं, इसके साथ ही कम मात्रा में तांबा, निकिल, कोबाल्ट, मालिब्डेनम आदि भी ज्ञात किए गए हैं। निकटवर्ती सागर से फास्फेटीय शैलें तथा कार्बोनेट भी प्राप्त किए गए हैं। बाहरी शेल्फ से लेकर द्रोणियों तक यह इनकी तलहटी के अवसादों में भी उपस्थित पाए गए हैं।

महासागरीय द्वीप

सामान्य

गंगा, सिंधु तथा कृष्णा नदियों के मुहानों में स्थित डेल्टीय द्वीपों के अतिरिक्त तटों में मुख्य भूमि को घेरे हुए कुछ ही द्वीप हैं। डेल्टीय द्वीपों का निर्माण नदियों द्वारा लाए गए अवसादों के निकट तटीय निक्षेपण में डेल्टा निर्माण के साथ ही हुआ तथा सागरीय लहरों ने भी इस एकत्रीकरण में सहायता प्रदान की। पूर्वी तट के पार बहुत ही कम द्वीप हैं, धामरा नदी के मुहाने पर महानदी डेल्टा के अंतर की ओर केवल तीन द्वीप ही दृष्टिगत हुए हैं। ये निक्षेप्रण जनित संरचनाएं हैं, जिस प्रकार की संरचनाएं द्वीपों के रूप में चिल्का झील के मुहाने पर दृष्टिगत हैं। चिल्का के पश्चिमी किनारे पर स्थित कुछ द्वीप क्रिस्टलीय मुख्यभूमि के अवशेष मात्र हैं। हालांकि व्यावहारिक रूप में, संपूर्ण पश्चिमी तट पर अनेक छोटे छोटे द्वीप हैं, जो साधारणतया शैलीय हैं और निकटवर्ती तट की आश्मिकी को प्रदर्शित करते हैं। खंभात क्षेत्र में नर्मदा नदी के ज्वारनदमुख में स्थित कई निक्षेपण द्वीप दृष्टिगत होते हैं। जिनमें से 16 किमी. लंबा सबसे बड़ा द्वीप आलियाबैट है। सौराष्ट्र के दक्षिणी तट से दूर दो प्रमुख द्वीप दृष्टिगत होते हैं। उनमें से एक दियू है। कच्छ की खाड़ी में भी कई छोटे छोटे द्वीप हैं जो डेक्कन बेसाल्ट के विस्तार मात्र हैं। कच्छ के दोनों रणों में दृष्टिगत अधिकतर छोटे शैलीय द्वीप हैं, लेकिन इनमें कुछ पच्छम, खादिर तथा बेला जैसे बड़े द्वीप भी हैं। बंबई के पश्चिम के दो प्रमुख द्वीप तथा पूर्व में श्रीहरिकोटा अब मुख्यभूमि का भाग हो जाने के कारण इस श्रेणी के बाहर हैं।

दक्षिण भारत या श्रीलंका के प्राचीन संपर्क स्थल पेम्बन तथा मन्नार द्वीपों के रूप में अभी भी दृष्टिगत हैं जो अब आदम पुल द्वारा जुड़े हुए हैं। यह छिछले सागर द्वारा घिरे हुए शोल तथा प्रवाल द्वीपों की एक शृंखला है। अनेक छोटे छोटे द्वीप तूतीकोरिन तट के सामने तथा श्रीलंका के जाफना तट के उत्तरी सिरे पर दृष्टिगत होते हैं।

बंगाल की खाड़ी में अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह तथा अरब सागर में लक्षद्वीप समूह, जो मध्य-महासागरीय द्वीप है विश्वव्यापी विवर्तनिकी की दृष्टि में महासागरीय द्रोणियों तथा भारतीय उपमहाद्वीप के विकास को समझने के लिए अत्यधिक भूवैज्ञानिक महत्व के हैं। इनका विवरण अलग से दिया गया है।

अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह मणिपुर-बर्मा (अराकान योमा) पर्वतमाला के बर्मी

द्वीपों कोको तथा प्रीपेरिस तक विस्तारित एक सतत कटक के अजलमग्न शिखर हैं। यह कटक दक्षिण की ओर सुमात्रा अंडाला तक विस्तारित है। अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान द्वारा किए गए अभिनव सर्वेक्षणों से पता चला है कि 1,000 किमी. लंबी तथा 40 किमी. चौड़ी एक घाटी जो जलमग्न पर्वतमाला के शिखरों से होती हुई अंडमान सागर से प्रारंभ होकर सुमात्रा के उत्तरी छोर तक विस्तारित है, एटलांटिक महासागर की मध्य सागरीय कटक के समरूप है।

एक अन्य समानांतर शृंखला अंडमान-निकोबार कटक के पूर्व में दृष्टिगत होती है, केवल जवालामुखीय द्वीप नारकोण्डम तथा बैरन द्वीप को छोड़कर यह लगभग पूर्ण रूप से जलमग्न है, जो शिखरों के रूप में सागर तल के ऊपर दृष्टिगत हैं।

अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह

यह द्वीपसमूह उत्तर-दक्षिण दिशा में विन्यस्त एक वक्र शृंखला है जिसका उन्नतोदर भाग पश्चिम की ओर है तथा सागर तल के ऊपर उभरे हुए 265 छोटे बंजर शैलीय उभारों से लेकर कई सौ वर्ग किमी. क्षेत्रफल वाले बड़े द्वीपों का समूह है। बंगाल की खाड़ी का यह भाग अंडमान सागर कहलाता है। यह द्वीप सम्मिलत रूप से 8,090 वर्ग किमी. क्षेत्र को घेरे हुए है। अक्षांश 14° उत्तर से 6° 30' उत्तर तक दो स्पष्ट समूहों में विस्तारित है। उत्तर की अंडमान शृंखला 10° प्रवाह मार्ग द्वारा दक्षिण स्थित निकोबार समूह से पृथक है। अंडमान शृंखला के सुदूर दक्षिण स्थित द्वीप लघु अंडमान तथा निकोबार समूह के सुदूर उत्तर स्थित द्वीप 'कार निकोबार' के मध्य 140 किमी. की दूरी है।

अंडमान 203 द्वीपों का समूह है जिसका कुल क्षेत्रफल 6,496 वर्ग किमी. है। मुख्य भाग जो सामूहिक रूप से बड़ा अंडमान कहलाता है, में उत्तरी अंडमान, मध्य अंडमान तथा दक्षिणी अंडमान, बारातांग तथा रटलैंड द्वीपों के अतिरिक्त अनेक छोटे छोटे द्वीपों का एक सघन झुंड है। यह मोटे तौर पर 260 किमी. लंबा तथा 30 किमी. चौड़ा है। एक 50 किमी. चौड़े खुले सागर के एक भाग डंकन पैसेज द्वारा यह **लघु अंडमान** से पृथक है जो 43 किमी. लंबा तथा 23 किमी. चौड़ा एक द्वीप है। दक्षिण अंडमान के पूर्व में लगभग 12-25 किमी. समानांतर दिशा में लगभग 600 किमी. दूर रिची द्वीपसमूह स्थित है।

निकोबार द्वीपसमूह दूर दूर तक बिखरे हुए द्वीपों का समूह है जो 262 किमी. लंबा है तथा सागर में अपनी अधिकतम चौड़ाई 58 किमी. और लगभग 1,647 वर्ग किमी. के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यह सात बड़े तथा 12 छोटे द्वीपों के अतिरिक्त अनेक छोटे द्वीपों से निर्मित है। कार निकोबार, टेरेसा, कमोरटा, काछाल, नानकोड़ी, लघु निकोबार तथा बड़ा निकोबार इस समूह के प्रमुख द्वीप हैं। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है इनमें अंतिम सबसे बड़ा द्वीप है। यह 50 किमी. लंबा व 25 किमी. चौड़ा है। यह द्वीपसमूह का सुदूर दक्षिण स्थित द्वीप है, तथा इंडोनेशिया के सुमात्रा द्वीप से मात्र 147 किमी. दूर

है और दोनों ग्रेट चैनल के द्वारा पृथक हैं।

द्वीपसमूह के अधिकांश द्वीप कठोर शैलों, मुख्यतया जीवाश्मीय टर्शियरी शैल जो बेसिक तथा अल्ट्राबेसिक ज्वालामुखीय शैलों पर स्थित हैं, से निर्मित हैं। कुछ द्वीप प्रवाल भित्तियों से भी घिरे हैं, तथा कुछ प्रवाल तट भी दृष्टिगत हैं। इन द्वीपों की स्थालाकृति पर्वतीय तथा उब्बड़-खाबड़ है तथा कुछेक शिखर काफी अच्छी ऊंचाई के भी हैं। बड़े अंडमान में पहाड़ियों की एक मध्यवर्ती शृंखला भी देखी गई है। इसके कुछ उल्लेखनीय शिखर उत्तरी अंडमान में सैडल शिखर (738 मी.), मध्य अंडमान में माउंट डियाबोलो (515 मी.), दक्षिण अंडमान में माउंट कोयोब (460 मी.), रटलैंड द्वीप में माउंट फोर्ड(435 मी.) लघु निकोबार में माउंट देवबन (435 मी.) बृहत निकोबार में माउंट थुइलर (642 मी.) आदि हैं। इन द्वीपों का तटीय प्रक्षेत्र सामान्यतया ढालू है परंतु कुछ भागों में सागर की ओर चूना-पत्थर तथा बलुआ पत्थर के सीधे खड़े कगार भी हैं। तट स्वयं भी अत्यधिक दंतुरित है। जलस्रोत छोटे तथा तीव्र प्रवाह वाले हैं।

लक्षद्वीप

लक्कादिव के नाम से प्रसिद्ध, यह 25 छोटे द्वीपों का एक समूह है, हालांकि इसका नाम लक्षद्वीप से प्रकट होता है कि यह 'एक लाख द्वीपों' का समूह है। ये द्वीप अरब सागर में मलाबार तट से लगभग 200-300 किमी. दूर तक उत्तर अक्षांश 11°45' तथा 8° के मध्य बिखरे हुए हैं। इनमें दो उपसमूह ज्ञात किए गए हैं। ग्यारहवीं समानांतर रेखा के उत्तर की ओर स्थित अमिनदिबी द्वीपों के नाम से जाने जाते हैं तथा इनमें चेतलाट, बित्रा, केल्टन, काडमत, अमीनी तथा कुछेक छोटी छोटी अडल (एटाल) सम्मिलित हैं। इस समानांतर के दक्षिण में स्थित अंडोथ, पित्ती, अगत्ती, कलपट्टी, काबारत्ती, चेरियम, कलपेनी तथा अनेक छोटे द्वीप हैं जो सम्मिलित रूप में कन्नानोर द्वीप कहलाते हैं। मिनिकॉय काबारत्ती से 250 किमी. दक्षिण में स्थित एक अकेला द्वीप है जो लक्षद्वीप क्षेत्र का प्रशासनिक मुख्यालय है। मिनिकॉय मालदिव द्वीप से, जो ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में एक स्वतंत्र देश है, से मात्र 140 किमी. दूर है। इन द्वीपों का आकार विभिन्न है, उदाहरण के लिए बिलारा मात्र एक वर्ग किमी. क्षेत्रफल का, तथा मिनिकॉय अपने 435 वर्ग किमी. क्षेत्रफल के साथ सबसे बड़ा है।

ये द्वीप प्रवालों द्वारा निर्मित हैं तथा सागर तल से 5 किमी. से भी कम ऊंचे हैं। इनकी स्थलाकृति सपाट है तथा इनमें कोई भी प्राकृतिक विशिष्टता, यथा पहाड़ियां या जलस्रोत न होने के कारण इनकी सतह की एकरूपता भंग नहीं होती है। द्वीपों की पवनाभिमुख दिशा (पश्चिम) की ओर छिछले लेगून हैं, जबकि पूर्व की ओर सागरवर्ती ढलानें खड़ी हैं। कम ढाल वाला पश्चिमी प्रवाल तट, जो एक किमी. से भी कम चौड़ा है, छिछले सागर में एकदम से 35 मी. की गहराई के बाद प्रवण रूप में 1,000 से 1,600 मी. में समाप्त होता है। प्रवाल बालू इसकी ऊपरी सतह का निर्माण करती है। महीन

संगुटिकाश्म की एक सघन सतह जो मोटे कण वाले ऊलाइटीय चूना-पत्थर, जिसमें सीपियों के टुकड़े धंसे हुए हैं, इसके नीचे दृष्टिगत होते हैं। ये विक्षेप अभिनव से प्राक अभिनव काल के हैं। मृत प्रवाल जिनसे ये कटकें बनी हैं, की आयु सुनिश्चित रूप से नहीं बताई जा सकती। इस द्वीपसमूह के अधिकांश द्वीपों के पूर्वी सागर तट पर तूफानी पुलिन हैं जो असंपीडित-गुटिका (पेबिल) शिंगिल-गोलाश्मिका तथा गोलाश्म (बोल्डर) के बने हैं।

इनके अतिरिक्त अमिनदिबि समूह के उत्तर की ओर कुछ भित्तियां तथा तट हैं। अगत्ती तथा बित्रा के बीच प्रवालीय एटाल का एक समूह, जो पेरूमुलप्पाड़ा कहलाता है, स्थित है। एटाल के दो समूह बित्रा के उत्तर-पश्चिम स्थित बैरमगोर भित्ति तथा चेरबनियानी या बेलियापानी भित्ति हैं। अरब सागर में और उत्तर की ओर कर्नाटक तट से लगभग 225 से 300 किमी. दूर तीन बड़े अंतःसागरीय प्लेटफार्म हैं जो 1,500 मी. की गहराई से ऊपर उठे हैं व सागर तल से 100 मी. नीचे स्थित हैं, सेसॉस्त्रिस तट कहलाते हैं।

महाद्वीपीय द्वीपों की य: शृंखला छागोस-लक्षद्वीप कटक के ऊपर स्थित है जो निओजीन तथा पेलिओजीन अवसादों के बेसाल्टीय आधारतल पर निक्षेपित है, जो इस बात का प्रमाण है कि यह भाग भारतीय शील्ड के प्राचीन भाग का ही एक विस्तार है। शिखरों का ऊपरी भाग जो कटक के ऊपर स्थित है प्रवालों द्वारा एटाल तथा प्रवाल द्वीपों के रूप में निर्मित है। ये अवसाद संभवतया परिवर्तित क्षारीय शैलों से प्राप्त किए गए हैं तथा डेक्कन ट्रैपीय ज्वालामुखी सक्रियता से संबंधित हैं। ईओसीन काल के प्रारंभ से ही यह ज्वालामुखी सक्रियता समाप्त हो गई तथा यह कटक लगभग 2,000 मी. नीचे जलमग्न हो गई। डेक्कन ट्रैप के उद्गार के बाद पश्चिमी महाद्वीपीय सिरे पर बड़े पैमाने पर भ्रंशन हुआ जिसके फलस्वरूप खंभात-लक्षद्वीप ग्राबेन की उत्पत्ति हुई। इस भ्रंशन तथा पश्चिमी घाट के टर्शियरी उत्थान के कारण पूर्वी ढाल निर्मित हुआ जिसने इस ग्राबेन को प्रायद्वीप से प्राप्त होने वाले स्थलजात अवसादों की बड़ी मात्रा के निक्षेपण से वंचित कर दिया और यह विश्वास किया जाता है कि इसी के परिणामस्वरूप अभिनव काल तक इसमें जैविक तथा कैल्सीय अवसादों का निक्षेपण होता रहा है।

9

भूकंपनीयता एवं भूकंप

भूमिका

सामान्य

प्लेट विवर्तनिकी की परिकल्पना के अनुसार भूकंपनीयता सुदृढ़ स्थलमंडलीय प्लेट के सिरों से निकट से संबंधित है। भूकंप साधारणतया पर्वतन पट्टियों, मध्य महासागरीय कटक, सागरीय खाइयों तथा द्वीप चापों में ही उत्पन्न होते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में ये अधिकांशतया हिमालय तथा उससे जुड़ी हुई पर्वतमालाओं से संबद्ध हैं, लेकिन कुछ अन्य, काफी लंबे समय तक स्थायी माने जाने वाले प्रायद्वीपीय भाग में भी अभिलेखित किए गए हैं। कुछ महत्वपूर्ण भूकंपों की विशिष्टताओं पर इस अध्याय में विचार किया गया है।

हिमालय तथा सतत पर्वतमालाओं में विवर्तनिक दबाव असमान रूप से वितरित हैं, जिसको भारतीय तथा यूरेशियन प्लेट के बीच महाद्वीपीय टकराव के द्वारा समझाया जा सकता है। भूकंप जो ऐसी प्लेट सीमाओं के आसपास आते हैं, सामान्यतया उनकी विशेषता निम्न प्रतिबल की गिरावट होती है क्योंकि वे दुर्बलताओं के पूर्व निर्धारित स्थलों के निकट संचलनों का परिणाम होते हैं। वे भूकंप जो प्लेट में उत्पन्न होते हैं, जैसे भारतीय प्रायद्वीप में उच्च प्रतिबल में गिरावट प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि वे नवीन भ्रंशों की उत्पत्ति जिसमें उच्च प्रतिबल की आवश्यकता होती है, के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। अपरूपण प्रतिबल एक विशिष्ट क्षेत्र में क्षेत्रीय प्रतिबल की अपेक्षा निम्न या उच्च हो सकता है। इसका कारण स्थानीय रूप में शैल असमानता जटिल भ्रंश ज्यामिति तथा भूकंपीय एवं अभूकंपीय दाब जो क्षेत्र में पहले ही मुक्त किए जा चुके हैं, हो सकते हैं। हिमालय क्षेत्र के भूकंप सामान्यतया पर्वतमाला की दिशा के अभिलंब अथवा तिर्यक दिशा लिए हुए सक्रिय भ्रंशों तथा वलयनों से संबंधित हैं तथा उत्तर उत्तर-पूर्व दिशा में अधःक्षेपण दर्शाते हैं जबकि हिमालय पार क्षेत्र के भूकंप दक्षिण-पश्चिम दिशा में अधःक्षेपण प्रदर्शित करते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय तथा यूरेशियन प्लेट के स्थलमंडलीय खंड एक-दूसरे को अधःक्षेपित करते हैं।

यह देखा गया है कि मध्य हिमालय में भूकंपीय सक्रियता मुख्यतया मुख्य सीमा क्षेप से संबंधित है। पूर्व तथा पश्चिम में यह सक्रियता अक्षसंधीय झुकावों तथा बर्मा एवं पाकिस्तान की पर्वतमालाओं के नतिलंब सर्पण भ्रंश से संबंधित प्रतीत होती है। प्रायद्वीपीय-क्षेत्र के भूकंप भी विवर्तनिक हैं परंतु केवल कोयना की जलाशय प्रेरित भूकंपनीयता को छोड़कर उनकी उत्पत्ति की कोई भी स्पष्ट व्याख्या अभी तक नहीं मिल पाई है। सुदृढ़ डेक्कन शील्ड उत्पन्न भूकंपीय ऊर्जा को सुघड़ता से चारों ओर वितरित कर देता है इसलिए इसमें उत्पन्न झटके काफी बड़े क्षेत्र में अनुभव किए जाते हैं।

तीव्रता तथा परिमाण

भूकंपों का मापन उनकी तीव्रता अथवा परिमाण द्वारा किया जाता है। इनमें से प्रथम गुणात्मक तथा दूसरा मात्रात्मक है। इटली के वैज्ञानिक गुईसेप्पी मरकाली (1902) ने एक 10 डिग्री तीव्रता का पैमाना प्रस्तावित किया था जिसे परवर्ती काल में वुड एवं न्यूमैन (1931) ने संशोधित करके 12 डिग्री कोटि तक किया तथा इसको संशोधित मरकाली पैमाना (एम. एम. स्केल) नाम दिया। इसे रोमन संख्याओं I से XII द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसके लिए जो विभाजन बिंदु बनाए गए हैं वे भूकंप की अवधि, कंपनों की संख्या, मानव जीवन या संरचनाओं पर उनका प्रभाव (क्षति की मात्रा) आदि के आधार पर बनाए गए हैं तथा जिनका स्वैच्छिक आधार पर विभाजन असमान है। भूकंप की तीव्रता उसके अधिकेन से एक ज्ञात स्थान तक के बीच की दूरी जिसमें झटका अनुभव किया गया, उसकी शक्ति तथा स्थानीय भूविज्ञान पर निर्भर करती है।

भूकंप की तीव्रता के संशोधित मरकाली पैमाने (एम. एम. स्केल) की प्रत्येक डिग्री का संक्षिप्त विवरण यहां दिया गया है :

- I सामान्यतया अनुभव नहीं किया जाता है, केवल विशिष्ट अनुकूल परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों को छोड़कर।
- II केवल कुछ ही व्यक्तियों द्वारा विश्राम की अवस्था में अनुभव किया जाता है। सूक्ष्मता से लटके हुए पदार्थ झूल सकते हैं।
- III घर के भीतर अनुभव किया जाता है, विशेष रूप से ऊपरी मंजिलों में। मोटरकार व अन्य हल्के वाहन हिल सकते हैं। पास से गुजरते ट्रक के समान कंपन अनुभव किए जाते हैं; अवधि का अनुमान लगाया जा सकता है।
- IV दिन के समय घर के भीतर काफी लोगों द्वारा तथा बाहर कुछ लोगों द्वारा अनुभव किया जाता है। कुछ लोग नींद से जाग जाते हैं। बर्तन, खिड़की तथा दरवाजे अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, ऐसा लगता है जैसे कोई ट्रक मकान से टकराया हो। खड़ी हुई मोटरें व वाहन में उल्लेखनीय कंपन होता है।
- V लगभग प्रत्येक के द्वारा अनुभव किया जाता है। बहुत लोग नींद से जाग जाते हैं। कुछ बर्तन व खिड़कियों के शीशे आदि टूट जाते हैं, प्लास्टर

चटखने की घटनाएं भी होती हैं। अस्थिर पदार्थ उलट जाते हैं, कभी कभी लंबी वस्तुएं यथा वृक्ष, खंभे आदि में विक्षुब्धता दिखाई देती है। लोलक वाली घड़ियां बंद हो सकती हैं।

VI सभी के द्वारा अनुभव किया जाता है। बहुत से लोग भयभीत होकर घर के बाहर भाग आते हैं। कुछ भारी फर्नीचर इधर-उधर हो जाता है। प्लास्टर तथा चिमनी टूटने के कुछ उदाहरण मिलते हैं।

VII हर व्यक्ति घर के बाहर भागता है। अच्छी डिजाइन व निर्माण वाले भवनों को कम, मध्यम व सामान्य निर्माण वाले भवनों को हल्की व सामान्य क्षति तथा मामूली ढंग से निर्मित या खराब डिजाइन व निर्माण वाले भवनों को काफी क्षति होती है। कुछ चिमनियां टूट जाती हैं। मोटरकार चालकों को स्पष्ट महसूस होता है।

VIII विशिष्ट डिजाइन वाले भवनों में थोड़ी-सी क्षति, सामान्य भवनों को काफी क्षति, जिनमें आंशिक रूप से भवन का ढह जाना भी सम्मिलित है, परंतु खराब निर्माण वाले भ्वनों को अत्यधिक क्षति होती है। चिमनियों का गिर जाना, फैक्ट्री के ढेर, खंभों, स्मारक, दीवारों आदि को काफी क्षति होती है। भारी फर्नीचर उलट-पुलट हो जाता है, पृथ्वी से बालू व मिट्टी थोड़ी मात्रा में निकलने लगती है। कुओं के पानी में जल स्तर परिवर्तित हो जाता है, मोटरकार व हलके वाहन चालकों को परेशानी होती है।

IX विशेष संरचना वाले भवनों को क्षति होती है, सामान्य भवनों को अधिक क्षति यथा आंशिक रूप से ढह जाना, अच्छी डिजाइन के ढांचे वाली संरचनाएं साहुल रेखा के बाहर आ जाती हैं, भवन नींवों से उखड़ जाते हैं, पृथ्वी स्पष्ट रूप से फटने लगती है, भूमिगत पाइप फट जाते हैं।

X कुछ अच्छी बनी हुई संरचनाएं नष्ट हो जाती हैं। चिनाई तथा ढांचेदार संरचना तथा इनकी नींव नष्ट हो जाती है, भूमि में दरार पड़ जाती है, रेल की पटरियां मुड़ जाती हैं। खड़ी ढलानों व नदी तटों पर भूमि स्खलन। बालू तथा पंक हट जाती हैं, टंकियों व नदी के किनारों पर पानी छलकने लगता है, आदि।

XI कुछ ही चिनाई वाली सरचना खड़ी रह सकती हैं। पुल नष्ट हो जाते हैं, पृथ्वी में चौड़े विदर पड़ जाते हैं, भूमिगत पाइप लाइन पूरी तरह बेकार हो जाती हैं। पृथ्वी धंसती है तथा जमीन नरम भूमि में समा जाती है, रेल की पटरियां बुरी तरह मुड़ जाती हैं।

XII पूर्ण विनाश, तरंगें पृथ्वी की सतह पर दिखाई देती हैं, दृष्टि रेखा एवं सतह नष्ट-भ्रष्ट, सामान हवा में ऊपर की ओर उछलता है।

समान तीव्रता वाले समस्त स्थानों को जोड़ने वाली रेखा को समभूकंप रेखा

कहते हैं।

भूकंप की तीव्रता मापने के लिए एक और पैमाना रोसी-फोरेल (आर. एफ. स्केल) है जो पुराने साहित्य में तो मिलता है परंतु अब शायद ही कभी प्रयोग में लाया जाता है। यह सन 1883 में इटली के एक भूवैज्ञानिक तथा स्वीडन के एक प्रकृतिवेत्ता ने एक साथ काम करके बनाया था। इसकी सीमा 1 से 10 तक है।

भारतीय मानक संस्थान ने वर्ष 1976 में संशोधित मरकाली पैमाने (एम. एम. स्केल) पर आधारित भूकंपों की तीव्रता को अभिलेखित करते हुए तथा भूकंप प्रक्षेत्रों को दर्शाते हुए भारत का एक मानचित्र प्रकाशित किया। संलग्न मानचित्र VII में पूरे उपमहाद्वीप को दिखाया गया है। निम्नलिखित पांच भूकंपीय प्रक्षेत्रों का निर्धारण किया गया है :

प्रक्षेत्र-1	तीव्रता V या कम
प्रक्षेत्र-2	तीव्रता VI
प्रक्षेत्र-3	तीव्रता VII
प्रक्षेत्र-4	तीव्रता VIII
प्रक्षेत्र-5	तीव्रता IX या अधिक

सी. एफ. रिक्टर ने 1935 में एक अन्य पैमाना प्रस्तावित किया जो भूकंपीय शक्ति या उसके द्वारा निर्मुक्त प्रत्यास्थ ऊर्जा का मापन भूकंपीय निरीक्षणों से करता है। यह एक लघुगणकीय मापक्रम है जो भूकंप के परिमाण को व्यक्त करता है। चूंकि यह पैमाना लघुगणकीय है अतः इसकी प्रत्येक इकाई कंपनों के आयाम को 10 गुणा बढ़ाकर या ऊर्जा में 30 गुणा वृद्धि को दर्शाती है। बहुत ही छोटे भूकंपों का ऋणात्मक परिमाण मान (−3 तक नीचे अभिलेखित किया जा चुका है) भी हो सकता है, परंतु साधारणतया सबसे दुर्बल झटके का भी परिमाण 3.5 तक होता है तथा सर्वथा विनाशकारी का अधिकतम परिमाण 8.9 तक ज्ञात हुआ है। संरचनाओं को क्षति सामान्यतया 5 परिमाण के भूकंप से प्रारंभ हो जाती है। किसी भी भूकंप विशेष का परिमाण एम. एम. पैमाने पर भूकंप की अत्यधिक तीव्रता के समान होता है। चूंकि यह यांत्रिक निरीक्षणों पर आधारित होने के कारण है और अन्य तीव्रता पैमानों के समान व्यक्तिनिष्ट नहीं है अतः भूकंप वैज्ञानियों द्वारा सामान्यतया रिक्टर का परिमाण पैमाना प्रयोग में लाया जाता है।

अतीत में भूकंपों को विभिन्न पैमानों पर अभिलेखित किया गया है। यह सदैव संभव नहीं होता है कि पुराने एक पैमाने के अभिलेखों को दूसरे में बिना किसी त्रुटि के परिवर्तित कर दिया जाय। देश के विभिन्न भागों में भूकंप लेखी की स्थापना के बाद से अब परिमाण का ठीक ठीक आकलन संभव हो पाया है जो अब किया भी जा रहा है।

भूकंपीय तीव्रता की माप तथा उनके लगभग समान परिमाणों को निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित किया गया है। अधिकतम त्वरण को यहां पर स्थानीय भूमि के संचलन की अधिकतम दर से संदर्भित किया गया है तथा इसमें उनकी अवधि एवं झटकों की संख्या भी सम्मिलित है।

तीव्रता (संशोधित मरकाली पैमाना)		*भूमि का अधिकतम त्वरण*	*अधिकतम ज्ञात तीव्रता का समान परिमाण*
I	मात्र यंत्रों द्वारा ही ज्ञात	10	
II	मंद	25	3.5-4.2
III	हल्का	50	
IV	सामान्य	100	4.3-4.8
V	थोड़ा शक्तिशाली	250	
VI	शक्तिशाली	500	4.9-5.4
VII	अधिक शक्तिशाली	1000	5.5-6.1
VIII	विनाशकारी	2500	6.2-6.9
IX	विनिष्टकारी		
X	विध्वंसकारी	5000	7.0-7.3
XI	अत्यधिक विध्वंसकारी	7500	7.4-8.1
XII	प्रलयकारी	9800	7.8.1

भूकंप की उत्पत्ति का स्थान, अर्थात पृथ्वी में स्थित वह बिंदु जो भूकंप का केंद्र है तथा उसकी प्रत्यास्थता तरंगों की उत्पत्ति का स्थान है—उद्गम केंद्र कहलाता है। सामान्यतया उद्गम केंद्र पृथ्वी की सतह से कुछ किमी. नीचे स्थित होता है। उद्गम केंद्र के ठीक ऊपर लंबवत दिशा में पृथ्वी की सतह पर स्थित बिंदु अधिकेंद्र कहलाता है। आर. डी. ओल्डम (1883) के अनुसार तीव्रता बाहर की ओर घटती है जो दूरी के वर्ग के विलोम अनुपात में होती है। उन्होंने अधिकेंद्र पर तीव्रता को मापकर तथा ज्ञात दूरी के आधार पर भूकंप के उद्गम केंद्र की गहराई का अनुमान करने की एक सरल विधि विकसित की। प्रत्येक घटना के मुख्य झटके के अनुभव होने का लगभग समय, भारतीय मानक समयानुसार (आई. एस. टी.) अगले विवरणों में दिया गया है।

प्रायद्वीपेतर क्षेत्र

पूर्वोत्तर भारत

यह क्षेत्र, भारतीय राज्यों यथा असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर तथा त्रिपुरा एवं निकटवर्ती बांग्लादेश तथा बर्मा को आच्छादित करता है, जो विश्व का सर्वाधिक भूकंप प्रभावित क्षेत्र है। समय समय पर भूकंप के बहुत से झटकों को अभिलेखित किया गया है तथा उनकी संख्या की एक लंबी सूची है। इनमें से प्रमुख भूकंपों का यहां वर्णन किया गया है।

पूर्वोत्तर भारत में भूकंपों की यांत्रिकी पर किए गए अध्ययनों का निष्कर्ष यह है कि विरूपण का प्रमुख कारण क्षेप भ्रंशन है। संपीडन के अक्ष अधिकांश ऊर्ध्व की अपेक्षा क्षैतिज के अधिक निकट हैं तथा मोटे तौर पर पर्वतमाला चापों के लंबवत हैं। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि पर्वतनिर्माण बल अभी भी सक्रिय हैं। सर्पण सदिश की दिशाएं इंगित करती हैं कि भारतीय प्लेट उत्तर की ओर पूर्वी हिमालय के नीचे तथा पूर्व की ओर बर्मा चाप (पटकाइ बम-अराकान योमा) के नीचे अधःक्षेपित हो गई है।

एक अत्यधिक विनाशकारी तथा शक्तिशाली भूकंप, जो अभिलेखित किया जाने वाला सर्वप्रथम भूकंप था, 2 अप्रैल, 1762 को सायं 5.00 बजे आया था तथा जिसने बंगाल की खाड़ी के पूर्वी सागर तट के भागों तथा चिटगांव को भयंकर क्षति पहुंचाई। कलकत्ता में नदी का पानी दो मीटर ऊंचा उठ गया। ढाका में पानी अचानक इतना बढ़ गया कि सैकड़ों नावें उलट गईं जिससे काफी लोग डूब गए। भूकंप ने अराकान तट को 160 किमी. से अधिक दूरी तक ऊंचा उठा दिया।

10 जनवरी, 1869 को आए कछार भूकंप को सायं 5.15 बजे 6,50,000 वर्ग किमी. के क्षेत्र में अनुभव किया गया तथा इसने सिलचर, सिलहट, चेरापूंजी, शिलांग, मणिपुर तथा कुछेक अन्य नगरों में अत्यधिक विनाश किया। इसका अधिकेंद्र शिलांग पठार के पूर्वोत्तर में स्थित था। सुरमा नदी के तट पर विदर तथा भूमि में गहरे गर्त बन गए जिनसे भारी मात्रा में बालू तथा जल निकलने लगा। इसका अधिकेंद्र क्षेत्र लगभग 30-45 किमी. लंबा व 5-6 किमी. चौड़ा था जो जयन्तिया पर्वतमाला के उत्तरी छोर पर स्थित था और इसका उद्गम केंद्र लगभग 50 किमी. की गहराई पर स्थित था। इस भूकंप का परिमाण 7.5 आंका गया।

14 जुलाई, 1885 की प्रातः 6.25 बजे पर आया बंगाल भूकंप इतना शक्तिशाली था कि यह लगभग 6,00,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में संपूर्ण पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश और छोटा नागपुर, बिहार, सिक्किम, भूटान, असम, मणिपुर तथा बर्मा में अनुभव किया गया। इसका अधिकेंद्र ढाका से लगभग 40 किमी. उत्तर-पश्चिम में स्थित था तथा इसने अधिकेंद्र से लगभग 100 किमी. त्रिज्या के क्षेत्र में विनाश किया।

संभवतया अब तक के ऐतिहासिक समय का सबसे बड़ा भूकंप 12 जून, 1897 को सायं 6.15 पर आया था। इसने शिलांग, गोलपाड़ा, गुवाहाटी, नओगांग तथा सिलहट आदि नगरों में भवनों का व्यापक विनाश किया तथा यह लगभग 3,90,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में अनुभव किया गया। इसमें केवल 1,600 व्यक्तियों के प्राण गए क्योंकि भूकंप का प्रबलतम चरण कम आबादी वाले क्षेत्र में था तथा प्रमुख झटका दिन के समय आया जब लोग बाहर थे। झटके तो व्यावहारिक रूप में पूरे भारत तथा पड़ोसी देशों में लगभग 45 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में अनुभव किए गए। इसे विश्व के कई भागों में अभिलेखित किया गया। अपने इतने विस्तृत प्रभाव क्षेत्र के कारण ही इसे

1897 का विशाल भारत भूकंप का नाम दिया गया है। संपर्क के समस्त साधन नष्ट हो गए, कई पर्वतों में भूस्खलन हुए तथा मैदान विदरों तथा बड़ी मात्रा में बालू व जल उगलते हुए गह्वरों से भरे हुए थे। झटकों के साथ आने वाली ध्वनि दूरदूर तक सुनाई पड़ी। मुख्य झटके के बाद कई हफ्तों तक और भी सैकड़ों झटके आए जिनमें से कुछ काफी शक्तिशाली थे। यह भूकंप गारो तथा खासी पर्वतमालाओं में स्थित लगभग 500 किमी. की अधिकतम लंबाई व 80 किमी. की अधिकतम चौड़ाई वाले एक क्षेप तल या क्षेप तलों तथा द्वितीयक क्षेपों और भ्रंश तलों के निकटवर्ती क्षेत्रों में संचालन के कारण हुआ था। संरचनात्मक परिवर्तनों से भ्रंश कगार भूसतह के स्थानीय परिवर्तन तथा पर्वतों की ऊंचाइयों में परिवर्तन हुए। सर्वाधिक महत्वपूर्ण भ्रंश कगार लगभग 20 किमी. तक चिट्रांग नदी के समानांतर चलता है तथा उसका ऊर्ध्वाधर उछाल 30 सेंमी. से 11 मी. तक है तथा इसके नदी मार्ग में कई जल प्रपात और लगभग 30 झीलें निर्मित हो गई हैं।

8 जुलाई, 1918 को अपराह्न 3.50 पर असम, बांग्लादेश तथा उत्तरी बर्मा क्षेत्र में आए भूकंप का अधिकतम प्रभाव बांग्लादेश की पूर्वी सीमा स्थित श्रीमंगल में था। इसके पहले तथा बाद में भी गौण झटके महसूस किए जाते रहे। इस क्षेत्र में इसका परिमाण 7.6 आंका गया तथा इसने अधिकांश संरचनाओं को धूल में मिला दिया। इसने 100 किमी. दूर स्थित नगरों में काफी क्षति की। रेल तथा संचार सुविधाएं छिन्न-भिन्न हो गईं। कुछ जानें भी गईं परंतु प्राण हानि के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इसके उद्गम केंद्र की गहराई लगभग 12-14 किमी. आंकी गई। पुनः अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इस भूकंप का कारण सिलहट जनपद के जलोढ़क के नीचे स्थित शैलों को काटते हुए एक सामान्य भ्रंश का दक्षिणी ओर धंसाव था।

बारह वर्ष के अपेक्षाकृत शांत समय के पश्चात 3 जुलाई, 1930 को प्रातः 2.30 पर पूर्वोत्तर भारत के एक बड़े भूभाग को फिर एक बड़े भीषण भूकंप ने झकझोर दिया। इसके साथ गड़गड़ाहट की आवाज भी मिली हुई थी। इसका अधिकेंद्र पश्चिमी असम स्थित ब्रह्मपुत्र नदी के निकट धुबरी के आसपास था जहां इसका परिमाण 7.1 था। यहां भवनों को अत्यधिक क्षति हुई लेकिन एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि भूकंप आने के समय लोग सो रहे थे फिर भी जन-हानि बिल्कुल नहीं हुई। उत्तरी बांग्लादेश तथा पश्चिम बंगाल में संरचनाओं की बहुत क्षति हुई। इस भूकंप के झटके सुदूर स्थानों यथा कलकत्ता, चिटगांव, डिब्रूगढ़, मणिपुर तथा पटना तक अनुभव किए गए। मुख्य झटके के बाद अगले तीन वर्षों में सहायक झटके बराबर अनुभव किए गए। इन सबका उद्गम स्थान धुबरी के पास था अथवा इनका अधिकेंद्र गारो पहाड़ियों में ब्रह्मपुत्र की घाटी में संभावित विवर्तनिक दुर्बलता रेखा के पास ही स्थित था।

मानव इतिहास में एक और अत्यधिक विनाशकारी भूकंप 15 अगस्त, 1950 को सायं लगभग 7.40 पर पूर्वोत्तर भारत में आया था जिसका परिमाण 8.7 था। संभवतया

यह उपकरणों द्वारा अभिलेखित सबसे शक्तिशाली भूकंप है। इसने ऊपरी असम में विशेष रूप से मिशमी और अबोर पहाड़ियों तथा लखीमपुर और जोरहाट जनपदों में बड़े पैमाने पर विनाश की विभीषिका मचाई थी। भूकंप का अधिकेंद्र 29° उत्तर अक्षांश तथा 97° पूर्व देशांतर में स्थित था तथा संशोधित मरकाली पैमाने पर इसकी तीव्रता XII की समभूकंप रेखा उत्तर-पूर्व—दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक लंबे रूप में इस क्षेत्र को आच्छादित किए हुए थी जो 30-40 किमी. चौड़ा था और सुबनसिरी नदी से प्रारंभ होकर भारतीय सीमा पार तिब्बत तक विस्तारित था। तथापि, संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत ने इस भूकंप के मुख्य झटके तथा बाद के अनेक सहायक झटकों को अनुभव किया। मुख्य झटके की तीव्रता इसी तथ्य से स्पष्ट है कि यह कुछ परिमाण में पूरे उपमहाद्वीप में अनुभव किया गया। कुल अनुमानित क्षेत्रफल 4.5 लाख वर्ग किमी. के लगभग रहा होगा। प्रभावित क्षेत्र में मुख्य झटका 4 से 8 मिनट तक रहा तथा उसके साथ गरजदार ध्वनि भी सम्मिलित थी। विस्तृत भू-स्खलनों ने ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों के प्रवाह मार्ग को अवरुद्ध कर दिया जिससे सुबनसिरी नदी में एक बांध बन गया था जिसके चार दिन बाद टूटने से अचानक आई बाढ़ ने लगभग 800 वर्ग किमी. क्षेत्र को जलप्लावित कर दिया जिसके फलस्वरूप 500 व्यक्तियों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। पृथ्वी में अनेक विदर बन गए और उनसे बालू निकलने लगी। लगभग सारे ही पुल क्षतिग्रस्त हो गए, रेल की पटरियां कई स्थानों पर क्षतिग्रस्त हो गईं; सड़कें धंस गईं तथा विदरित हो गईं। चूंकि इस क्षेत्र के अधिकांश मकान ठोस चिनाई से निर्मित नहीं थे इसलिए उनकी क्षति विदरों तथा चटकने तक ही सीमित थी जबकि सारी पक्की संरचनाएं ढह गईं। क्षेत्र की आबादी कम होने के कारण अधिक जन-हानि नहीं हुई। बांध टूटने के कारण हुई हानि के अतिरिक्त केवल हजार से कुछ अधिक ही मौतें हुईं। भूकंप विवर्तनिक उद्गम का था तथा इसके उद्गम केंद्र की गहराई 14 किमी. थी। असम क्षेत्र स्थित अनेक वेधशालाओं द्वारा संगणित भूकंपीय आंकड़ों से ज्ञात होता है कि ग्रेनाइटीय स्तर की औसत गहराई 24.8 किमी., बेसाल्टीय स्तर की 21.5 किमी. तथा मोहांरोविसिक असांतत्य की गहराई 46.3 किमी. है।

भूकंप प्रवृत्त कछार क्षेत्र में सबसे नयी घटना 31 दिसंबर, 1984 में घटित हुई जब 6.1 परिमाण के झटके ने लगभग 5.00 बजे प्रातः शिलांग पठार क्षेत्र को झकझोर दिया। जैसा कि इस क्षेत्र के भूकंपों की प्रवृत्ति है, यह बहुत तीव्र नहीं था, परंतु फिर भी लगभग 20 व्यक्ति मारे गए तथा 200 वर्ग किमी. क्षेत्र में स्थित 3,000 मकान जो अधिकेंद्र क्षेत्र (समभूकंप रेखा-VII) में थे क्षतिग्रस्त हो गए। यह क्षेत्र सिलचर से लगभग 15 किमी. दक्षिण-पूर्व में सोनाइ नगर के आसपास स्थित था। भूमिगत पाइप फट गए, भूमि में दरारें पड़ गईं, बालू व पंकें बहने लगीं, भूकंपीय फव्वारे उछलने लगे तथा बालू गर्त भी बन गए। सोनाइ नदी जो इस क्षेत्र में विसर्पण करती है के किनारों के निकटवर्ती क्षेत्र में बड़े पैमाने पर भूमि धंसाव हुआ। सोनाइ-काछीधरन मार्ग पर दो पुल

ढह गए व कई क्षतिग्रस्त हो गए। इस भूकंप का उद्गम केंद्र मात्र 5 किमी. नीचे स्थित था, जो इस भूकंप को इस क्षेत्र का सबसे हल्का भूकंप बनाती है। भूकंप विवर्तनिक उद्गम का तथा संभवतया सामान्य भ्रंशन के कारण था।

बंगाल-उड़ीसा क्षेत्र में एक उल्लेखनीय भूकंप 15 अप्रैल, 1964 को रात्रि 10.05 मिनट पर आया था। इसकी अधिकतम तीव्रता संशोधित मरकाली पैमाने पर VIII थी। यह उड़ीसा के बालासोर-तटवर्ती क्षेत्र में अनुभव किया गया था जहां इसके साथ तेज गड़गड़ाने की ध्वनि भी थी। कलकत्ता महानगर में इसकी अभिलेखित तीव्रता मात्र VI थी।

बिहार-नेपाल भूकंप

अब तक ज्ञात सर्वाधिक विनाशकारी भूकंप 15 जनवरी, 1934 को मध्याह्न से कुछ पूर्व आया था जिसमें कम-से-कम 10,000 से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हुई और जो मुंगेर (बिहार) तथा भटगांव (काठमांडू घाटी, नेपाल) के नगरों को तथा कई निकटवर्ती नगरों के बड़े भाग को खंडहर में बदल गया। इस भूकंप के झटके उत्तर भारत व नेपाल के अधिकांश भाग तथा सुदूर तिब्बत में ल्हासा तक अनुभव किए गए। इसका विस्तार क्षेत्र लगभग 50,00,000 वर्ग किमी. था। मृत्युदर शायद दो कारणों से अधिक नहीं हुई—1. भूकंप के समय लोग जागे हुए थे तथा अधिकांश अपने घरों के बाहर थे, 2. झटके की अधिकतम तीव्रता लगभग 2.5 मिनट के बाद आई, जिससे लोगों को भागकर खुले स्थानों पर आने का समय मिल गया। मुख्य झटके के बाद हल्के झटके तो कई दिनों तक आते रहे, परंतु इसी क्षेत्र में एक बड़ा झटका चार दिन बाद 19 जनवरी, 1934 को फिर आया।

मरकाली पैमाने पर समभूकंपी रेखा-X में स्थित अधिकेंद्र क्षेत्र एक अर्धचंद्राकार पट्टी के रूप में लगभग 30 किमी. चौड़ा, पूर्व-दक्षिण—पूर्व-पश्चिम-उत्तर-पश्चिम दिशा में मोतीहारी के पूर्व से सीतामढ़ी होता हुआ, मधुबनी तक है तथा लगभग 130 किमी. लंबा व लगभग 3,400 वर्ग किमी. क्षेत्र को आच्छादित करता है। भूकंपीय अधिकेंद्र मधुबनी के निकट था तथा उद्गम केंद्र की अनुमानित गहराई 15 किमी. के लगभग थी। दो पूर्णतया ध्वस्त नगरों मुंगेर तथा भटगांव में भी मरकाली पैमाने के X (परिमाण 8.4) के झटकों का अनुभव किया है। इन क्षेत्रों में भवनों का पूर्ण विनाश हो गया था। भूकंप के पहले एक चीख जैसी आवाज उठी जो समभूकंप रेखा-X से VII के मध्य सर्वाधिक तेज थी, लेकिन इसका अभिलेखन सुदूरवर्ती क्षेत्रों में जो समभूकंप रेखा-V में भी किया गया। बहुत से लोगों ने भूमि को लहरियादार ढंग से हिलते हुए स्वयं अपनी आंखों से देखा। भूमि में गंगा के उत्तर स्थित विस्तृत क्षेत्र में विदर खुल गए तथा उनमें से कई से बालू या पानी निकला। रेल की पटरियां टूट गईं तथा कई जगहों पर अपने स्थान से हट भी गईं

तथा कई सरिताओं ने पथ परिवर्तन किया। पर्वतीय क्षेत्र के कई भागों में भू-स्खलन हुआ तथा कुछ स्थानों में स्रोत मार्ग अवरुद्ध हो जाने से झीलें बन गईं।

इसके कारण की व्याख्या, ऊंची उठती हिमालय पर्वतमाला तथा नीचे धंसते गंगा के जलोढ़क मैदान की पट्टी के मध्य बढ़ते हुए तनाव की अचानक मुक्ति के रूप में की गई। जलोढ़क के नीचे एक विदरित प्रक्षेत्र, जो मोतीहारी से लेकर पूर्णिया और शायद असम में घुबरी तक फैला हुआ है, धंसाव पट्टी की स्थिति के आधार पर प्रस्तावित किया गया है। मोतीहारी और रक्सौल के नीचे प्रवणता में अचानक परिवर्तन भ्रंशों की उपस्थिति की ओर संकेत करता है जो भूकंप की अवधि में चलायमान थे। सतह की तरंगों के अध्ययन ने 129 किमी. तक एक क्षेप तथा निम्न कोण नतिलंब सर्पण भ्रंश की उपस्थिति प्रदर्शित की है।

लगभग इसी क्षेत्र में एक शताब्दी पूर्व 26 अगस्त, 1833 को भी कई शक्तिशाली भूकंपीय झटके आए थे जो लगभग आधी रात तक जारी रहे। इसका अधिकतम प्रभाव काठमांडू घाटी में अनुभव किया गया जहां लगभग 400 व्यक्तियों के प्राण गए, लेकिन बिहार में मृत्यु का कोई अभिलेखन नहीं है। एक क्षण में घाटी के लगभग आधे से अधिक मकान पूरी तरह से अथवा गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गए। फिर साल के अंत तक कई उल्लेखनीय तीव्रता के झटके बराबर ही आते रहे। अधिकांश स्थानों पर तो पृथ्वी लगातार 24 घंटों तक हिलती रही थी। इसकी तीव्रता बक्सर, छपरा, पटना तथा बिहार के और भी अन्य स्थानों पर और कलकत्ता तथा इलाहाबाद तक अनुभव की गई।

उत्तर-पश्चिमी हिमालय

उत्तर-पश्चिमी हिमालय में सक्रिय भूकंपीय क्षेत्र उत्तरी कश्मीर में कोहिस्तान से लेकर उत्तर-पूर्वी बलूचिस्तान तक फैला हुआ है जहां पर भूकंप अत्यधिक बारंबारता से आते हैं। यहां पर दो समानांतर प्रक्षेत्र सिंधु-कोहिस्तान भूकंपीय क्षेत्र तथा दूसरा हजारा निम्न भूकंपी क्षेत्र हैं। ये प्रक्षेत्र 10-30 किमी. शैलों की मोटी तह के नीचे दबे हुए भ्रंशों तक पहुंचते हैं तथा संभवतया हिमालय के पश्चिमी अक्षसंधि के अग्र भ्रंशों के उत्तर-पश्चिमी विस्तार हैं। सतह पर ये भ्रंश दक्षिण की ओर मुड़ जाते हैं। सिंधु-कोहिस्तान क्षेत्र दूसरे क्षेत्र की तुलना में अधिक सक्रिय है तथा यह उत्तर-पूर्व की ओर के अंतःक्षेपण से भी संबंधित है। इसके विपरीत हजारा क्षेत्र खड़ी नति वाले आधारतल भ्रंश पर स्थित है। पिछली शताब्दी में इस क्षेत्र में ज्ञात उल्लेखनीय तीव्रता वाले कुछ भूकंपों को यहां वर्णित किया गया है।

सबसे पहले भयंकर विनाशकारी अभिलेखित भूकंप में से एक इस प्रक्षेत्र में 21 फरवरी, 1832 को उत्तरी हिंदूकुश की बदख्शां घाटी में आया था जिसमें यहां की कुल आबादी का काफी बड़ा भाग नष्ट हो गया था। शैलों के बड़े-बड़े खंड कई स्थानों में खड़ी चट्टानों से टूटकर नीचे गिरे तथा घाटियों को भर दिया।

30 मई, 1885 को प्रातः लगभग 2.45 पर गड़गड़ाहट की तेज आवाज के साथ भूकंप का एक तेज झटका कश्मीर घाटी में अनुभव किया गया। इसमें लगभग 3,000 से भी अधिक व्यक्ति तथा बड़ी संख्या में जानवर मारे गए। धन संपत्ति की भी बहुत हानि हुई। भूमि में अनेक दरारें पड़ गईं तथा बालू के ढेर बन गए। इस भूकंप को आसपास के सारे प्रदेश में यहां तक कि शिमला, लाहौर, पेशावर तथा दूसरे और भी नगरों में अनुभव किया गया। मुख्य झटके के बाद दूसरे दिन भी कई द्वितीयक झटके अनुभव किए गए। इसका अधिकेंद्र श्रीनगर के 20 किमी. पश्चिम में स्थित था तथा उद्गम केंद्र की गहराई 12 किमी. थी।

4 अप्रैल, 1905 को प्रातः 6.10 बजे उत्तर-पश्चिमी भारत में आए एक अन्य विनाशकारी भूकंप ने कांगड़ा घाटी व धर्मशाला में जन-जीवन व संपत्ति को पूर्णतया नष्ट कर दिया। मण्डी तथा कुल्लू में जन-जीवन व संपत्ति की अत्यधिक क्षति हुई, देहरादून, मसूरी, चंबा तथा अन्य पड़ोसी नगरों को गंभीर क्षति तथा लाहौर, अमृतसर, जालंधर, सहारनपुर और अन्य नगरों में सामान्य क्षति अभिलेखित की गई। यह अत्यधिक घातक भूकंप था जिसमें लगभग 20,000 लोगों की जान गई। रोस्सी फारेल पैमाने पर इसका तीव्रता परिमाण कांगड़ा व उसके निकटवर्ती क्षेत्र में 8 था। इसने कुल्लू घाटी की खड़ी नति, विदरति विखंड तथा अपरूपित शैलों में अनेक भू-स्खलनों को प्रवर्तित किया, जिससे स्रोतों और जलधाराओं में भीषण विक्षुब्धता उत्पन्न हुई। इसका ठीक उद्गम तो अज्ञात है, परंतु कुछ के मतानुसार हिमालय में एक उत्क्रम भ्रंश (reverse) तल पर हुए संचलन को इस भूकंप का उत्तरदायी मानते हैं। इस भूकंप का अधिकेंद्र धर्मशाला के निकट तथा उद्गम केंद्र की गहराई 33 और 64 किमी. के बीच है।

1 फरवरी, 1929 का भूकंप उत्तर पाकिस्तान के एबटाबाद क्षेत्र में रात्रि 10.45 पर आया। उसकी तीव्रता रोस्सी फारेल (आर. एफ) पैमाने पर 8 थी। इसका अधिकेंद्र क्षेत्र एबटाबाद के निकट 40 किमी. उत्तर में बुनेर तथा हजारा क्षेत्रों के संधिस्थल के बीच था। यह एक अत्यधिक अस्थायी क्षेत्र है तथा यहां अधिक गहराई के उद्गमित अनेक भूकंपों को अभिलेखित किया गया है।

एक अत्यधिक शक्तिशाली गभीर उद्गम केंद्र के भूकंप का झटका विशाल पामीर के निकट हिंदूकुश क्षेत्र में 21 नवंबर, 1939 को अपराह्न 4.30 पर आया था। इसके केंद्र की गहराई 210 किमी. के लगभग तथा इसका अधिकेंद्र हिंदूकुश पर्वतमाला के क्षेत्र में पाकिस्तान सीमा के पास स्थित था। इसको विभिन्न तीव्रताओं में लगभग सारे पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, अफगानिस्तान, उत्तरी पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर राज्य तक में अनुभव किया गया था। गिलगित, द्रोश तथा श्रीनगर में इसकी तीव्रता कम होकर एम.एम. स्केल पर VII थी जबकि छोटे अधिकेंद्र क्षेत्र में यह तीव्रता इसी पैमाने पर VIII थी।

6.7-7 परिमाण का एक और झटका इसी क्षेत्र में 6 जुलाई, 1965 को अनुभव किया गया था। इसके उद्गम की गहराई 218 किमी. तथा अधिकेंद्र स्थल बदख्शां क्षेत्र में स्थित था। इस शताब्दी में हिंदुकुश क्षेत्र के लगभग 70 अभिलेखित भूकंपों में से अधिकतर 7 परिमाण से अधिक के थे।

अभी हाल में ही आया हुआ भूकंप जिसने उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग को तहत-नहस कर दिया था पाटन के सुदूरवर्ती क्षेत्र में 28 दिसंबर, 1974 को सायं 5.10 पर आया था। यह क्षेत्र स्वात और सिंधु-कोहिस्तान के बीच, हिंदूकुश तथा कराकोरम पर्वतमालाओं के दक्षिण, पश्चिमी हिमालय अक्षसंधि के पश्चिम की ओर स्थित है। रिक्टर पैमाने पर इसका परिमाण 6 तथा उद्गम की गहराई 12-15 किमी. थी। यह भूकंप उच्च भूकंपी क्षेत्र में आया था। अनुमानित मृत्यु संख्या कुछ सौ से कुछ हजार तक है। कराकोरम राजमार्ग तथा उस क्षेत्र में स्थित भवनों को भारी क्षति हुई है। यह विनाश खड़ी दीवारों वाली पर्वतमालाओं से हुए शैल पात के कारण और बढ़ गया। यह भूकंप संभवतया उत्तर-उत्तर-पूर्व—दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम दिशा में हुए क्षेपण के कारण हुआ था।

बलूचिस्तान

बलूचिस्तान और इसके आसपास का क्षेत्र सक्रिय भूकंप प्रक्षेत्र में आता है तथा यहां बहुधा भूकंपीय झटके आते रहते हैं। सबसे पहला भूकम्प जिसके संबंध में विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध है 24 जनवरी, 1852 को प्रातःकाल लोरालाई जनपद में आया था। मरी की पहाड़ियों में एक अत्यंत तीव्र झटका काहान में अनुभव किया गया था जिसमें लगभग 350 व्यक्ति तथा बड़ी संख्या में जानवर हताहत हुए तथा किले में बहुत से मकान या तो ध्वस्त हो गए या गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गए। 1865 में इसी जनपद में आए एक अन्य भूकंप ने भवनों को क्षतिग्रस्त कर दिया था। 1892 में आए एक तीव्र भूकंप ने सीवी जनपद स्थित कोहलू घाटी में अनेक ग्रामों को भूमि में मिला दिया था। 1883 व 1889 में भी झालांबां में और भी कई तीव्र व बड़े भूकंप अभिलेखित किए गए जिनसे कई गांवों में बहुत क्षति हुई।

20 दिसंबर, 1892 को प्रातःकाल चमन के निकट आए उच्च परिमाण के भूकंप को बलूचिस्तान के अधिकांश भागों में अनुभव किया गया। इसका अधिकेंद्र क्षेत्र खोजाक पर्वतमाला के पश्चिमी छोर के निकट स्थित था, तथा झटके संभवतया उत्तर-उत्तर-पूर्व—दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम की ओर एक भ्रंश के आसपास के क्षेत्र में हुए संचलन का कारण थे जो भूमि में लगभग 190 किमी. लंबे एक गहरे अवनमन तथा झरनों के कारण उल्लेखनीय है।

इस शताब्दी के अत्यधिक भयानक भूकंपों में सबसे पहला 21 अक्तूबर, 1909 को बलूचिस्तान में आया था। इसका अधिकेंद्र बाघ व शाहपुर के बीच स्थित काछी मैदान में

था। इसकी तीव्रता आर. एफ पैमाने पर 9 थी। इसका उद्गम केंद्र अधिक गहरा नहीं था क्योंकि झटकों की तीव्रता अधिकेंद्र क्षेत्र के बाहर एकदम से कम हो गई थी। इसने भी कई गांवों को मटियामेट कर दिया तथा मृत्यु संख्या लगभग 100 व्यक्ति रही।

दो तीव्र शक्ति वाले भूकंप बलूचिस्तान में मात्र दो दिन के अंतर पर 25 व 27 अगस्त,1931 को आए। इनमें पहले का अधिकेंद्र शारिघ के निकट तथा दूसरे का माच के निकट था,दोनों ही स्थान एक-दूसरे के पास हैं। शारिघ के दोनों भूकंप प्रातः लगभग 3 बजे आए तथा लगभग 80,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में अनुभव किए गए। इसकी तीव्रता आर.एफ पैमाने पर एक सीमित क्षेत्र में 8 तक पहुंची तथा इसका उद्गम कम गहराई पर स्थित था। नगर के सारे कच्चे मकान पूरी तरह से नष्ट हो गए और अधिक मजबूत संरचनाएं बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गईं। ये भूकंप संभवतया इस क्षेत्र में शैलों के वलयन के कारण उत्पन्न हुए।

माच में लगभग 9.00 बजे रात्रि का झटका अधिक विनाशकारी था तथा बलूचिस्तान और सिंध के लगभग 9,50,000 वर्ग किमी. से भी अधिक क्षेत्र में अनुभव किया गया हालांकि इसकी तीव्रता भी आर. एफ. पैमाने पर 8 से अधिक नहीं पहुंची। सर्वाधिक क्षति माच तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में हुई, लेकिन 80 किमी. दूर क्वेटा नगर में भी उल्लेखनीय क्षति हुई। ढहते हुए मकानों से कुछ व्यक्ति मारे भी गए।

संभवतया बलूचिस्तान में आने वाला सबसे विनाशकारी भूकंप 31 मई,1935 का था जो प्रातः 3.03 मिनट पर आया था। इसमें मरने वालों की संख्या लगभग 30,000 थी तथा अत्यधिक क्षति हुई थी। मृत्यु संख्या और भी अधिक होती लेकिन कम जनसंख्या वाले ग्रामीण क्षेत्रों के कारण यह कम रही। क्वेटा नगर, जो इस भूकंप के अधिकेंद्र के निकट है, को ही रिक्टर पैमाने के अनुसार 7.6 परिमाण के भूकंप का सर्वाधिक प्रभाव उठाना पड़ा। यह भूकंप लगभग 2,58,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में अनुभव किया गया। इसके कारण भूमि में अनेक भूसर्पण तथा विभंग बन गए। इसका अधिकेंद्र एक संकरे 25 किमी. चौड़े व 110 किमी. लंबे क्षेत्र में क्वेटा से दक्षिण-दक्षिण पूर्व दिशा में मास्तुंग नगर से होकर था। यह ध्यान देने योग्य है कि इसकी तीव्रता क्वेटा के उत्तर में कुछ किलोमीटर में ही लगभग समाप्त हो गई थी जहां पर सामान्य क्षति ही हुई। कलात से 20 किमी. दक्षिण में थोक जो अधिकेंद्र क्षेत्र के दक्षिणी सिरे से 50 किमी. से भी अधिक दूर है, में एक पंक ज्वालामुखी के पुनः सक्रिय होने की एक रोचक घटना हुई। इस क्षेत्र के अन्य भूकंपों के समान यह भी पश्चिमी क्षेप भ्रंश के निकटवर्ती क्षेत्र में संचलन के कारण हुआ था।

बलूचिस्तान के भूकंपों में से अनेक क्वेटा अक्षसंधि के आसपास ही आए हैं। काय एवं सतह तरंग अध्ययनों से यह पता चलता है कि अधिकांश मामलों में क्षेपण तल या नतिलंब सर्पण भ्रंश ही इसके प्रमुख कारण रहे हैं। इस क्षेत्र में अनेक क्षेपों का मानचित्रण किया गया है जिनमें जुरैसिक संरचनाएं क्रिटेशस शैलों पर क्षेपित हो गई हैं जिनकी नति उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर है। क्वेटा से सुलेमान पर्वतमाला के दक्षिणी छोर तक पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली पर्वतमालाएं भारत यूरेशियाई प्लेट सीमा से

संबंधित वलन एवं भ्रंश पट्टी का ही एक भाग हैं।

प्रायद्वीपीय क्षेत्र

दक्षिण

कोयना क्षेत्र में अक्सर आने वाले भूकंपों के कारण हालांकि प्रायद्वीप का पश्चिमी भाग अब अभूकंपी नहीं रहा, इसके पूर्वी तथा मध्य भागों में भूकंप यदा-कदा ही आते हैं। यहां आने वाले झटके एकाकी तथा कम परिमाण के होते हैं। यह तटवर्ती क्षेत्र में किनारों की सक्रियता के कारण है, जो स्थायी भूपिंडों की एक विशिष्टता है।

1 अप्रैल, 1943 को सायं 4.30 बजे आया हुआ भूकंप एक ऐसा भूकंप था जिसने दक्षिण में काफी क्षति पहुंचाई थी। इसके झटके को काफी बड़े क्षेत्र में अनुभव किया गया परंतु अधिकेंद्र के निकट बेल्लारी में एम. एम. पैमाने पर इसका परिमाण VII था। एक अन्य समान तीव्रता का उल्लेखनीय भूकंप जिसका अधिकेंद्र कोयम्बटूर के निकट था तथा जिसने दक्षिण भारत को झकझोर दिया 8 फरवरी, 1900 को आया था। इसके उद्गम केंद्र की गहराई 70 किमी. थी तथा इसके उद्गम का कारण पश्चिमी तट के समानांतर उत्तर-उत्तर-पूर्व—दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित भ्रंश था।

कुछ सामान्य महत्व के अभिनव भूकंपों में 13 अप्रैल, 1969 का भूकंप था जिसे संपूर्ण दक्षिण-मध्य भारत में रात्रि लगभग 9.00 बजे अनुभव किया गया था। इसका परिमाण 5.7 तक था इसका अधिकेंद्र गोदावरी घाटी में भद्रचलम् के निकट स्थित था, जहां पर भवनों को सामान्य क्षति हुई। यह लगभग 200 किमी. दूर हैदराबाद में भी शक्तिशाली रूप में अनुभव किया गया जिससे काफी आतंक मच गया परंतु जान तथा संपत्ति की कोई क्षति नहीं हुई।

कोयना क्षेत्र

कोयना क्षेत्र में आए भूकंप अनोखे हैं। प्रथमतया ये भारतीय शील्ड के उस भाग में आए हैं जो स्थिर तथा काफी लंबे समय से भूकंप रहित माना जाता है, और द्वितीयतया इनका उत्प्रेरण जलाशय अभिप्रेरित भूकंपनीयता के कारण हुआ है। इन भूकंपों का जन्म कोयना नदी पर बांध बनाकर शिवाजी सागर जलाशय में अत्यधिक जल भराव के भार के कारण हुआ। पहले यह माना गया कि वह मलाबार भ्रंश, जो पश्चिमी तट के किनारे स्थित है, की सक्रियता के कारण हुआ हो और यह जलाशय के भराव से असंबंधित है। यह भी एक संभावना है कि कोयना नदी एक भ्रंश पर प्रवाहित होती है तथा जलाशय के जल रिसाव के कारण नीचे गहराइयों में पहुंचने पर उसने जलस्थितिक दाब में असंतुलन बना दिया हो जिसके परिणामस्वरूप विदरण तलों पर संचलन आरंभ हो गया। जब भी जलाशय में जलस्तर एक निश्चित सीमा तक बढ़ता है, तो भूकंपनीयता में वृद्धि होती

है। इस प्रकार की जलाशय अभिप्रेरित भूकंपनीयता का उदाहरण जाम्बिया स्थित करीबा झील है जो विश्व की सबसे बड़ी कृत्रिम झील है। ग्रीस की क्रेमास्टा झील, संयुक्त राज्य अमरीका में बोल्डर बांध से निर्मित मीड झील भी इसी श्रेणी में है।

कोयना बांध स्थल पर वर्ष 1962 में नदी के जल को रोकने के साथ ही भूकंपन प्रारंभ हो गए थे। 5.5 परिमाण का एक भूकंप 13 सितंबर, 1967 को अभिलेखित किया गया। उससे सामान्य सी क्षति हुई परंतु जनता की इस संबंध में काफी तीखी प्रतिक्रिया रही। परंतु 6.5 परिमाण का एक शक्तिशाली झटका 11 दिसंबर, 1967 को प्रातः 4.20 पर आया जिससे बड़े क्षेत्र में विनाश व 200 व्यक्तियों की जानें गईं तथा कई हजार घायल हो गए। इससे जनता में ही नहीं सरकार में भी गंभीर चिंता उत्पन्न हो गई। यह झटका 700 किमी. तक की दूरी पर अनुभव किया गया जबकि इसका अधिकेंद्र बांध से 5 किमी. के अंदर था। बांध के निकटवर्ती क्षेत्र में एम.एम. पैमाने पर इसकी तीव्रता VII थी। उद्गम केंद्र सतह से 10-30 किमी. की गहराई में था। लगभग सीधे खड़े उद्गम तल पर नतिलंब सर्पण के भ्रंश को इसका कारण माना गया है। अब तक विभिन्न तीव्रता के सैकड़ों झटके इस क्षेत्र में अभिलेखित किए जा चुके हैं। जलाशयों के स्थायित्व के संदर्भ में कोयना भूकंप इस समय देश में सबसे अधिक नियोजित अध्ययन का कारण बन गया है।

गुजरात

गुजरात क्षेत्र ने भी बहुत से भूकंपीय झटकों का अनुभव किया है, सबसे अधिक विनाशकारी व अभिलेखित भूकंप बहुत पहले 16 जून, 1819 को कच्छ के रणक्षेत्र में आया था। उस दिन 2,000 व्यक्ति केवल भुज में ही मरे थे तथा आसपास के नगरों की मृत्यु संख्या अज्ञात है परंतु यह अभिलेखित है कि अहमदाबाद में एक विवाह के प्रीतिभोज में एकत्र सभी 500 लोग मारे गए। अहमदाबाद स्थित सुलतान अहमद मस्जिद की मीनारें जो 450 वर्षों से खड़ी थीं, ध्वस्त हो गईं। भूकंप की तीव्रता मरकाली पैमाने पर VII पर थी तथा यह लगभग सारे भारत में अनुभव किया गया। यह भारत के सर्वाधिक भीषण भूकंपों में माना गया है जिसने इतना बड़ा विनाश किया। सिंधु नदी की एक शाखा 130 किमी. तक पूर्व-पश्चिम दिशा स्थित भ्रंश के उत्तरी ओर भूमि के उठ जाने के कारण बंद हो गई थी जिसके कारण अवपात पार्श्व दिशा में कच्छ के रण में बाढ़ आ गई थी।

कच्छ प्रायद्वीप के दक्षिण स्थित अंजर नगर ने 7 परिमाण के भूकंप की विभीषिका को 21 जुलाई, 1956 को रात्रि 9.00 बजे अनुभव किया जिसमें मरने वालों की संख्या 100 थी तथा संपत्ति की बहुत अधिक क्षति हुई थी। उद्गम केंद्र की गहराई 13-18 किमी. आंकी गई। एक कम परिमाण, 6 के झटके ने 23 मार्च, 1970 को लगभग 7.30 बजे शाम को 30 व्यक्तियों के प्राण लिए तथा दक्षिणी गुजरात के भड़ौंच नगर व उसके आसपास के ग्रामों में तबाही मचा दी। यह भूकंप नीचे स्थित ओसीन अवसादों में पहले हुए भ्रंश के सिरों पर

संचलन के परिणामस्वरूप था। इसके उद्गम की गहराई 15-25 किमी. आंकी गई थी।

अंत:सागरीय भूकंप

बंगाल की खाड़ी

जब सागर के अंदर भूकंप आते हैं और केवल सामान्य से झटके आते हैं तथा उनसे निकटवर्ती तट को कुछ भी क्षति नहीं होती है, तो ऐसे भूकंपों को उपेक्षित कर दिया जाता है। ऐसे भूकंप विवर्तनिक महत्व के होते हैं तथा ये सागर तल की प्रकृति के बारे में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी दे सकते हैं।

इस प्रकार का पहला शक्तिशाली भूकंप जिसके विस्तार से अध्ययन की आवश्यकता है, बंगाल की खाड़ी में 31 दिसंबर, 1881 के प्रातःकाल आया था। हालांकि उस समय भूकंपमापी नहीं थे, फिर भी विभिन्न संस्थानों द्वारा अनेक स्थानों पर किए गए अभिलेखन, जिनमें कलकत्ता, विशाखापट्टनम, मद्रास तथा पोर्टब्लेयर भी शामिल हैं, में झटके के समय के अनुसार, इसके स्थान तथा भूकंपीय ऊर्ध्व आदि की गणना की गई। सागर की लहरों का तट के विभिन्न स्थानों पर पहुंचने का समय आदि भी ज्ञात किया गया। इन आंकड़ों से ज्ञात हुआ कि इस भूकंप का उद्गम अंडमान द्वीपसमूह के पश्चिम से उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर कहीं स्थित था। पोर्टब्लेयर ही केवल एक अकेला स्थान था जहां कुछ भवनों को क्षति पहुंची।

समय समय पर काफी तीव्रता वाले कई भूकंप अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह को झकझोरते रहे। इनके अधिकेंद्र द्वीपों के महाद्वीपीय सीमाओं पर स्थित रहे हैं।

मकरान तट

बलूचिस्तान के मकरान तट पर आने वाला सबसे शक्तिशाली भूकंप 27 नवंबर, 1945 को रात 9.57 मिनट पर आया था जिसके साथ एक विशाल ज्वारीय लहर तथा सागर से पंक निकलना प्रारंभ हुआ था। सौभाग्यवश इसका अधिकेंद्र सागर में बहुत दूर (24.2° उत्तर, 62.6° पूर्व) था तथा तट की जनसंख्या छितरी बसी हुई थी, अन्यथा तटवर्ती क्षेत्र में अभिलेखित क्षति से कहीं अधिक क्षति हुई होती। संपूर्ण तटीय क्षेत्र में काफी क्षति कई मकरान बंदरगाहों पर 12 मी. ऊंची लहर ने की। लहर का प्रभाव सुदूर स्थित बंबई तक पड़ा जहां दो मीटर ऊंची भंजक लहर ने तट को क्षतिग्रस्त कर बहुत लोगों को समुद्र में बहा दिया। यह भूकंप इतनी ऊंची तीव्रता का था कि यह विश्व के अनेक भागों में अभिलेखित किया गया। इस भूकंप के मुख्य झटके के बाद तट से दूर 4 पंक द्वीपों का जन्म एक उल्लेखनीय विशेषता थी। एक पंक द्वीप से बड़ी मात्रा में ज्वलनशील गैस का उद्गार हुआ जिसके जलने से आकाश में सैकड़ों मीटर ऊंची लपटें उठीं। यह भूकंप प्रत्यक्ष रूप से बृहत मकरान भ्रंश से संबंधित था।

10

समस्थिति तथा गुरुत्व

समस्थिति

सामान्य

भूगणितीय निरीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि पर्वतीय क्षेत्रों में गुरुत्व असंगतियां सामान्यतया प्रबल ऋणात्मक हैं तथा सागरीय क्षेत्रों में ये और भी अधिक प्रबल धनात्मक हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पर्वतों के नीचे औसत द्रव्यमान घनत्व काफी कम है तथा महासागरों के नीचे कहीं अधिक है और निम्न महाद्वीपीय क्षेत्रों में दोनों के बीच में। अतः पर्वतों के नीचे द्रव्यमान की कमी को पर्वतों के अतिरिक्त पूरा किया जाता है। इस तथ्य को सर्वप्रथम एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक पियरे बूगे ने 1749 में पेरूवियन एण्डीज पर्वतमाला में देखा था, जिसके नाम पर आज आधारभूत गुरुत्व असंगतियों को जाना जाता है। वर्ष 1855 में जे. एच. प्राट तथा सी. बी. ऐरी ने स्वतंत्र रूप से हिमालय तथा भारत के अन्य भागों में साहुल रेखा निरीक्षणों को प्रकाशित किया जिनके आधार पर समस्थिति के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ। वर्ष 1889 में अमेरिकी वैज्ञानिक सी. ई. डटन ने 'समस्थिति' शब्द (Isostasy) का सर्वप्रथम प्रयोग किया। समस्थिति संतुलन की दशा है, जिसमें भंगुर भूपृष्ठ के एकांक तरल प्रावार पर प्लावित होते हैं।

साहुल रेखा में विक्षेपण में अक्षांशों तथा देशांतरों के निरीक्षण हेतु खगोलीय विधियों का एक सम्मिलति रूप है जिसमें विवर्तनिकी से संबंधित भौगोलिक स्थिति तथा इनको प्रभावित करने वाली पृथ्वी की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष स्थलाकृति है।

प्राट तथा ऐरी द्वारा प्रस्तुत की गई समस्थिति की यांत्रिकी के संबंध में विभिन्न अवधारणाओं पर आगे विचार किया गया है :

प्राट के अनुसार समस्थिति

प्रसिद्ध भूगणितज्ञ सर जॉर्ज एवरेस्ट, जिनके नाम पर विश्व के सर्वोच्च शिखर का नाम-

करण हुआ है, ने उत्तरप्रदेश में मेरठ के निकट कलियाना में तथा 600 किमी. दक्षिण में एक त्रिभुजाकार शृंखला के साथ साथ स्थित कलियानपुर में अक्षांशों में अंतर के पश्चात यह पाया कि खगोलीय निरीक्षणों से यह निरीक्षण मात्र कुछ सेकेंड अधिक है। इससे दो निरीक्षण बिंदुओं के ऊर्ध्वाधर में नाममात्र का सापेक्षिक विक्षेपण ज्ञात हुआ है। कलकत्ता के आर्कडीकन रेवरेण्ड जे. एच. प्राट जो स्वयं एक धार्मिक व्यक्ति होने के साथ साथ एक लब्धप्रतिष्ठ गणितज्ञ भी थे, के अनुसार यह अंतर मापन की त्रुटि के कारण नहीं है, वरन हिमालय के विशाल द्रव्यमान के आकर्षण के कारण हुआ है। उन्होंने इन दो स्थानों पर ऊर्ध्व लंब के विक्षेप की गणना से पाया कि हिमालय से मात्र 80 किमी. दूर स्थित कलियाना में विचलन, सुदूर स्थित कलियानपुर की अपेक्षा अधिक था। जब पृथ्वी पूर्ण रूप से तरल थी, तब कोई पर्वत, घाटियां व महासागर संभव नहीं थे, लेकिन जब पृथ्वी का भूपृष्ठ बनने लगा व मोटा होने लगा तो उसमें विभिन्न स्थानों पर क्रमशः संकुचन तथा विस्तार हुआ होगा। इस प्रकार अवनमनों तथा उत्थानों के अनुरूप सतह की उत्पत्ति हुई होगी। विस्तार की इस प्रक्रिया से पर्वत ऊंचे होने को बाध्य हुए और इस प्रकार सागर तल से ऊपर उठे द्रव्यमान ने इसके नीचे के पदार्थ में समान कमी की। प्राट के विचारानुसार हिमालय पर्वतमाला अपने आधार से 'खमीर उठे हुए आटे के समान' ऊपर उठी है तथा उठने के साथ साथ उसके घनत्व में कमी आती गई है। अतः मैदानों की अपेक्षा हिमालय के नीचे घनत्व कम होगा। प्राट के सिद्धांत के अनुसार समस्थितिक क्षतिपूर्ति एक समान है, अर्थात पर्वतों के नीचे घनत्व सपाट भूमि की अपेक्षा समान रूप से कम रहेगा तथा अल्प घनत्व की परत एक ऐसी गहराई तक जाएगी जहां वह ऊपर के पर्वत को घनत्व की पूर्ण क्षतिपूर्ति कर देगी। जितना ऊंचा पर्वत होगा उतना ही कम उसका औसत घनत्व होगा। पर्वत के द्रव्यमान के गुरुत्वाकर्षणीय प्रभाव की क्षतिपूर्ति पर्वत पर तथा उसके नीचे स्थित पदार्थ का कम घनत्व करता है।

प्राट की परिकल्पना को संयुक्त राज्य तट तथा भूगणितीय सर्वेक्षण के जे. एच. होनेफोर्ड तथा डब्ल्यू. बॉवी ने संशोधित किया। उनके अनुसार मूल आकार में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है लेकिन पर्वतों की क्षतिपूर्ति समान घनत्व वाली तनिक हल्की शैलों, जो पर्वतों के नीचे लंबवत रूप से लगभग 100 किमी. की गहराई तक जाती हैं, द्वारा की जाती है यहां तक कि प्रत्येक स्थलाकृतिक संरचना चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, की भी पूर्ण क्षतिपूर्ति होती है। इनकी इस परिकल्पना से उत्तरी अमेरिकी असंगतियों की सफलतापूर्वक व्याख्या की गई और वहां उसका बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। फिर भी भारत में किए गए शोधों ने कई अनुसंधानकर्ताओं को यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य किया कि गुरुत्व तथा विक्षेपण समस्थितिक संतुलन की प्राप्ति के संबंध में अतिशयोक्तिपूर्ण परिणाम देते हैं, हालांकि भारत समस्थिति के सिद्धांत का जन्म स्थान रहा है। भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण कार्य से यह स्पष्ट हुआ है कि उत्तर भारत के एक बड़े भाग में हिमालय के गिरिपादों से मध्य भारत तक जहां कि

समस्थितिक संशोधन गुरुत्वीय असंगतियों को कुछ अनुपात में भी कम नहीं कर पाए हैं समस्थिति अपूर्ण हैं। ऊपरी असम तथा बर्मा की छिन्दविन घाटी के बीच समस्थितिक संतुलन से स्पष्ट विचलन दृष्टिगत होता है। इंडोनेशिया के सागरों में किए गए मापनों में भी समस्थिति में अत्यधिक उल्लेखनीय विचलन पाया जाता है।

ऐरी के अनुसार समस्थिति

प्राट के योगदान से अनभिज्ञ ब्रिटिश खगोलविद जे. बी. ऐरी ने भी स्वतंत्र रूप से ऐसे ही निष्कर्ष निकाले। उनके अध्ययन से भी यह स्पष्ट हुआ है कि पर्वत के द्रव्यमान का आकर्षण तटीय क्षेत्रों के आकर्षण से कहीं अधिक है। ऐरी के विचार से हिमालय के समान उच्च पर्वतमालाओं को अगर नीचे से सहारा नहीं मिलेगा तो वे अपने भार के कारण, भूपृष्ठ में से होकर नीचे प्रावार के लावा में धंस जाएंगे। उनके अनुसार दृष्टिगत भूपृष्ठ सामान्य रूप से एक सघन, लगभग द्रव अवस्था वाले अधःस्तर पर तैर रहा है, तथा पर्वतीय क्षेत्रों में सामान्य सतह स्तर से ऊपर उभरे हुए अतिरिक्त द्रव्यमान की क्षतिपूर्ण तदनुरूप नीचे के द्रव्यमान में कमी के रूप में होती है। पृथ्वी के हल्के भूपृष्ठ के किसी भी भाग के नीचे गहराई की ओर सघन लावा में उभार कुछ इस प्रकार होगा कि यह पठार से ऊपर की ओर के प्रमुख उभारों के भार के लगभग बराबर होगा तथा यह एक तैरते हुए रिफ्ट के समान होगा। उन्होंने इसे 'पर्वत मूल सिद्धांत' का नाम दिया। उदाहरण के लिए हिमालय की औसत ऊंचाई 7-8 किमी. है तथा उनके ठीक नीचे स्थित पर्पटी की मोटाई 80 किमी. है, जबकि दक्षिण के पठार जो ऊंचाई में एक किमी. से कहीं कम हैं, के नीचे भूपर्पटी 32 किमी. मोटी तथा सागर तल के निकटवर्ती क्षेत्रों में तो यह मात्र 10-20 किमी. मोटा है। ऐरी के अनुसार हिमालय नीचे स्थिर परत में धंस गया है, और इस बारे में उनका सिद्धांत प्राट के सिद्धांत का विरोध करता है। प्राट के अनुसार पर्वतीय द्रव्यमान के गुरुत्व प्रभाव की क्षतिपूर्ति नीचे के प्रमुख उभारों या मूल रूप में जो पर्वतों को सहारा प्रदान करते हैं, के द्वारा होती है।

1931 में वाइनिंग मेन्सेज ने क्षेत्रीय समस्थितिक क्षतिपूर्ति के संबंध में एक संशोधित सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार गुरुत्व बल नीचे की ओर कुछ अधिक हो जाता है तथा क्षतिपूर्ति द्रव्यमान के परम मानों में कमी, स्थलाकृतिक द्रव्यमान की अपेक्षा थोड़ी-सी कम हो सकती है ताकि गहरे स्तर पर बन रहे दबाव की ठीक ठीक क्षतिपूर्ति हो सके।

अभिनव गुरुत्व मापन द्वारा ज्ञात हुआ है कि समस्थिति की ऐरी द्वारा की गई कल्पना प्रायद्वीपीय भारत पर लागू होती है जिसमें डेक्कन ट्रैप क्षेत्र भी सम्मिलित है। परंतु कडप्पा द्रोणी में समस्थितिक असंगतियों में बहुत विभिन्नता है जो भूपर्पटी के ऊपरी भाग में घनत्व परिवर्तनों के कारण है। ग्रेनाइटीय अंतर्वेदनों ने मूल घनत्व को स्थानीय स्तर पर कम कर दिया है।

हिमालय में समस्थिति

हिमालय क्षेत्र में समस्थिति पर अभिनव निरीक्षण प्रत्येक 15-20 किमी. के अंतराल पर साहुल रेखा विक्षेपण के निरीक्षणों पर आधारित हैं, जिनके द्वारा इनके समाकलन से जी-ऑपड अर्थात पृथ्वी की सागर तल सतह पर आकृति जो महाद्वीपों से होती हुई सतत रूप से विस्तारित है, का निर्माण करना है। जीऑपड सिद्धांत रूप में एक ऐसी सतह है जो प्रत्येक बिंदु पर साहुल रेखा की दिशा के लंबवय है। गोलीय रूप से जीऑपड का विचलन अधःस्तरीय द्रव्यमान की विक्षुब्धता का समुचित प्रतिनिधित्व करता है जो समस्थितिक मापों के लिए आवश्यक है।

भारतीय सर्वेक्षण संस्थान के आर. एस. चुघ व भट्टाचार्जी (1974) के अनुसार गंगा के जलोढ़क मैदान में पूर्व-पश्चिम दिशा स्थित एक स्पष्ट चौड़ा जीऑपडी अवनमन है। यह तिर्यकाकार रूप में नेपाल-बिहार सीमा पर बीरगंज में न्यूनतम है जो करीब 9 मी. है। इसके पश्चात जीऑपडी प्रवणता एकदम तीव्रता से बढ़कर मध्य नेपाल में 25 मी. तथा तिब्बत सीमा पर स्थित पूर्वी लद्दाख के चुशूल के निकट यह 31 मी. की ऊंचाई प्राप्त कर लेती है। गणनाओं से ज्ञात हुआ है कि ऊपरी भूपर्पटी पर अत्यधिक भारी अवसादी निक्षेपों, जिन्होंने वास्तविक जीऑपड को नीचे स्थित सघन अधःस्तर में धंसा दिया है, के कारण गंगा के मैदान की अतिरिक्त क्षतिपूर्ति हुई है। हिमालय की उच्च पर्वतमालाओं की ओर बढ़ते हुए यह देखा गया है कि यहां पर समस्थिति अधिक सक्रिय है तथा हिमालय क्षेत्र में समस्थितिक संतुलन में कोई उल्लेखनीय विचलन दृष्टिगत नहीं होता है। यहां उचित होगा कि साहुल रेखा विक्षेप के साथ साथ गुरुत्व निरीक्षण भी किए जाएं ताकि किसी भी दिए गए क्षेत्र में समस्थितिक क्षतिपूर्ति की मात्रा के मात्रात्मक अनुमान प्राप्त किए जा सकें। दोनों को एक साथ रखने पर यह प्रतीत होता है कि बाहरी हिमालय की 90 प्रतिशत कम तक क्षतिपूर्ति हुई है जबकि गंगा के मैदान की 60 प्रतिशत अधिक क्षतिपूर्ति हुई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपक्षय तथा निक्षेपण प्रक्रियाएं प्रकृति में समस्थितिक संतुलन बनाए रखती हैं।

गुरुत्व

गुरुत्व असंगतियां

शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में अनेक संस्थानों ने संपूर्ण भारत में सुव्यवस्थित घनत्व मापन कार्य किया है तथा देश का एक बूगे असंगति मानचित्र संकलित किया गया है। स्थलाकृति आकर्षणों के प्रभाव को सम्मिलित करते हुए गुरुत्व असंगति गणना की जाती है लेकिन समस्थितिक क्षतिपूर्ति को लेकर की गई गणना बूगे असंगति कहलाती है। यह देखा गया है कि असंगति समोच्च रेखाएं उपमहाद्वीप की संरचनात्मक दिशा के

समानांतर चलती हैं—यथा धारवाड़ (उत्तर-उत्तर-पश्चिम—दक्षिण-दक्षिण-पूर्व), दिल्ली-अरावली (उत्तर-पूर्व-दक्षिण-पश्चिम), पूर्वी घाट (उत्तर-दक्षिण), तथा सतपुड़ा (पूर्व उत्तर-पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम) हैं।

एम. एन. कुरेशी ने यह अध्ययन किया कि गुरुत्व असंगतियां भारत के भूविज्ञान के साथ धनात्मक रूप से संबंधित हैं परंतु सिंधु-गंगा द्रोणी तथा डेक्कन ट्रैप क्षेत्र में अस्पष्ट हैं। सुस्पष्ट गुरुत्व, 'निम्न' तथा 'उच्च' स्थानीय भूवैज्ञानिक दशाओं में प्रतिबिंब मात्र हैं। स्पष्ट 'निम्न'—1. दक्षिण भारत, सिंहभूम क्षेत्र तथा अन्य स्थानों पर ग्रेनाइटीय पिंडों में, 2. गोंडवाना द्रोणी, 3. ऊपरी प्रोटेरोजोइक द्रोणियां (यथा-विन्ध्य; कुर्नूल; कालाडगी तथा भीमा), एवं 4. पूर्वी तट की क्रिटेशस टर्शियरी द्रोणियां, में दृष्टिगत होते हैं, ऐसे ही कुछ और 'निम्न' हैं जिनकी सरलता से व्याख्या नहीं की जा सकती। कुछ प्रमुख 'उच्च' ये हैं—1. मेटा अवसाद तथा मेटा ज्वालामुखीय शैलें, जैसे कर्नाटक, धारवाड़ की शिस्टीय परत, 2. उत्थित खंड (होर्स्ट) जैसे अरावली, सतपुड़ा, पूर्वीघाट, असम का पठार तथा मध्य हिमालय, एवं 3. मैफिक अंतर्वेदनों के संभावित क्षेत्र, जैसे दक्षिण पश्चिमी कडप्पा द्रोणी आदि हैं। एक संकरा 'उच्च' वाराणसी से गंगा द्रोणी से होता हुआ काम्बे की खाड़ी तक गया है। संभव है कि यह एक प्रमुख कमजोर प्रक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा नर्मदा-सोन विभ्रंश क्षेत्र की उत्तरी सीमा का सीमांकन करता है। यह असंगति कई संरचनाओं को काटते हुए बुंदेलखंड गिरिपिंड के ठीक दक्षिण से निकली है। अपने इस मार्ग में यह पन्ना क्षेत्र, जहां किंबरलाइट पाइप हैं, से गुजरती है। यह गुरुत्व 'उच्च' मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र वायुचुंबकीय सर्वेक्षणों द्वारा मानचित्रित चुंबकीय 'उच्च' का समर्थन करता है। बूगे असंगति मानचित्र में एक और गुरुत्व 'उच्च' दिल्ली शैलों के ऊपर स्थित है जो गंगा द्रोणी में आगरे के पार उत्तर में 28° उत्तर तथा 80° पूर्व तक प्रक्षेपित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा शाहजहांपुर—बरेली क्षेत्र में भूकंपीय एवं अन्य भूभौतिकी विधियों से ज्ञात की गई असंगति के समान ही है।

गुरुत्व आंकड़ों की गणना द्वारा अधिकांश उपमहाद्वीप की भूपर्पटी की मोटाई 35-40 किमी. के बीच ज्ञात की गई है, लेकिन उठे हुए क्षेत्रों यथा हिमालय, अरावली, सतपुड़ा, नीलगिरि तथा पूर्वीघाट में भूपर्पटी की मोटाई में उल्लेखनीय वृद्धि हुई प्रतीत होती है। जब भारत में गुरुत्व क्षेत्र पर विचार करने के लिए विभिन्न कारकों को प्रस्तुत किया जाता है तो ऐरी के सिद्धांत के अनुसार समस्थितिक संतुलन जो प्रायद्वीपीय भारत में दिखाई देता है, को टाला नहीं जा सकता, क्योंकि समस्थितिक असंगतियों को अधिकांश मामलों में अंतरा भूपर्पटी असंगत द्रव्यमान के द्वारा समझाया जा सकता है।

समस्थिति तथा गुरुत्व

साहुल रेखा विक्षेप आंकड़ों के आधार पर सर एस.ज़ी. बरार्ड ने गंगा के मैदान के नीचे

तथा हिमालय पर्वतमाला के लगभग समानांतर एक अदृश्य कटक की उपस्थिति की कल्पना की थी। इसकी सत्यता का प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि संपूर्ण हिमालय गिरिपादों के निकटवर्ती क्षेत्र में यह विक्षेप दक्षिण की ओर था परंतु जलोढ़क मैदान को पार करते ही अचानक विलुप्त हो गया और उसके पश्चात यह विक्षेप उत्तर की ओर होकर आगे तक चला गया प्रतीत होता है। लगभग 1000 केंद्र क्रमबद्ध विक्षेप मापन और उनका अभिलेखन कर रहे हैं। प्राप्त आंकड़ों को यह मानकर कि क्षतिपूर्ति की गहराई 113.7 किमी. है, हेकोर्ड विधि से अब समस्थितिकता के आधार पर घटाया जाता है। हालांकि 113.7 किमी. की गहराई संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए तो ठीक है परंतु भारत के लिए बहुत अधिक है। भारतीय सर्वेक्षण संस्थान के बी.एल. गुलाटी के अनुसार एक बहुत ही तर्कसंगत गहराई 56 किमी. है। क्षतिपूर्ति की यह निम्न गहराई मान हिमालय स्थित केंद्रों के विक्षेप की गणना में अधिक-से-अधिक 16° का परिवर्तन कर सकती है। भारत में विक्षेप का स्थलाकृति पर प्रभाव एक ज्ञात केंद्र से 640 किमी. की त्रिज्या में माना जाता है।

किसी भी क्षेत्र विशेष में समस्थितिकी क्षतिपूर्ति की डिग्री तथा मात्रात्मक अनुमान ज्ञात करने के लिए साहुल रेखा विक्षेपों की अपेक्षा गुरुत्व आंकड़े अधिक सुविधाजनक हैं। गुरुत्व परिणामों की जटिल गणना का निर्वचन स्थानीय भूविज्ञान के संशोधन, नीचे स्थित शैलों के घनत्व का अनुमान तथा मोहरोविसिक असांतत्य आदि, पर निर्भर है। 113.7 किमी. की क्षतिपूर्ति गहराई के आधार पर गुरुत्व असंगतियों की गणना की तीन विशिष्टताएं स्पष्ट हुई हैं—1. पूर्व में डिब्रूगढ़ से पश्चिम में पेशावर तक हिमालय के गिरिपादों में फैली हुई एक सतत ऋणात्मक पट्टी का दृष्टिगत होना, 2. इसके बाद ही प्रायद्वीपीय भारत में एक धनात्मक पट्टी की उपस्थिति, 3. और अंत में दक्षिण भारत की आर्कियन शैलों से लेकर सतत रूप से श्रीलंका तक सुस्पष्ट ऋणात्मक पट्टी दृष्टिगत हुई हैं। गुलाटी इस प्रवृत्ति को असंतोषजनक मानते हैं क्योंकि प्रायद्वीपीय भारत भारी शैलों से निर्मित है और यह ठीक नहीं प्रतीत होता है कि इस विशाल क्षेत्र में ऋणात्मक असंगतियां सिंधु-गंगा जलोढ़क की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए जो कम घनत्व के पदार्थों से भरा है।

11

भूमंडलीय विवर्तनिकी

महाद्वीपीय विस्थापन

इतिहास

कुछ योरोपीय विद्वानों ने 17वीं शताब्दी में यह देखा कि दक्षिणी अमेरिका का पूर्वी तट तथा अफ्रीका का पश्चिमी तट एक दूसरे से आकार में बहुत मिलते हैं, परंतु इस संबंध में जर्मन मौसमविज्ञानी अल्फ्रेड बेगनर ने 1912 में महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत को प्रस्तुत किया जो यह बताता है कि दो महाद्वीप तथा वर्तमान महाद्वीपीय भूपर्पटी के अन्य भाग सुदूर भूवैज्ञानिक पुराकाल में पूरा एक भूपिंड था। एक विशाल महाद्वीप पैन्जिया (ग्रीक में—संपूर्ण पृथ्वी) था जो बाद में दो आद्य महाद्वीपों दक्षिणी गोलार्द्ध में गोंडवानालैंड (मध्य भारतीय जनजाति के नाम पर) तथा उत्तरी गोलार्द्ध में लारेशिया (कनाडा तथा ग्रीनलैंड—"लारेशिया" तथा एशिया) में पृथक हो गए। इन्होंने ही बाद में पुनः टूटकर वर्तमान आधुनिक महाद्वीपों तथा भूखंडों को बनाया।

अपने सिद्धांत के समर्थन में बेगनर ने कई प्रमाण प्रस्तुत किए जिनमें से कुछ आज उचित प्रतीत नहीं होते। जब यह सिद्धांत प्रकाशित हुआ तो इससे बहुत से विवाद उत्पन्न हुए और उस समय के भूवैज्ञानिकों व भूभौतिकविदों द्वारा इस सिद्धांत को नकार दिया गया। यद्यपि बेगनर को महाद्वीपीय विस्थापन के लेखक होने का श्रेय जाता है, लेकिन दो अमरीकी भूवैज्ञानिक एफ. बी. टेलर ने 1910 तथा एच. बी. बेकर ने 1911 में पहले ही महाद्वीपीय पिंडों के संचलन के संबंध में अपने विचार प्रकट किए थे परंतु, उनके विचार उस समय के विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं कर सके।

इस सिद्धांत का वास्तविक पृष्ठांकन ए. एल. इटॉय (1937) के कार्य से हुआ, जिन्होंने इसके पक्ष में दक्षिण अफ्रीका से अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किए। तब से अधिक-से-अधिक भूवैज्ञानिक इसकी प्रमाणिकता को स्वीकार करते आ रहे हैं। सागर तल के विस्तार तथा प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांतों के प्रतिपादन के पश्चात तो महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत को सर्वमान्य अनुमोदन मिल गया है। हालांकि भूभौतिकीविदों के एक बढ़ते हुए समूह ने इस सिद्धांत के पक्ष में प्रस्तुत प्रमाणों पर आपत्तियां उठाई हैं। इन आपत्तियों पर बाद में विचार किया गया है।

महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत के प्रकाश में आने के काफी पहले दक्षिणी गोलार्द्ध के कुछ भूवैज्ञानिकों ने 19वीं शताब्दी के अंत में इस गोलार्द्ध के महाद्वीपों में समांतर संघटन पाए तथा उनको एक साथ रखा। ऑस्ट्रियन भूवैज्ञानिक एडुआर्ड सुएस ने सभी महाद्वीपों को पुनः मिलाकर एक अकेला विशाल भूपिंड बनाया जिसको उन्होंने गोंडवानालैंड नाम दिया। इस आद्य महाद्वीप में दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया तथा अंटार्कटिक सम्मिलित थे। इटॉय ने उत्तरी गोलार्द्ध के आद्य महाद्वीप को लॉरेंशिया नाम दिया। इसमें उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैंड तथा भारत को छोड़कर यूरेशिया सम्मिलित था। सुएस ने उत्तर-मध्य साइबेरिया स्थित प्राचीन प्रीकैम्ब्रियन शैलों को प्रदर्शित करते हुए एक छोटे-से शील्ड को अंगारालैंड का नाम दिया जो वह केंद्र था जिसके चारों ओर एशिया के अन्य भाग निर्मित हुए माने गए।

प्रमाण

महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत के पक्ष में प्रस्तुत किए जाने वाले मुख्य तर्कों पर यहां संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि पूर्वी दक्षिण अमेरिका की महाद्वीपीय सीमाएं दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका की महाद्वीपीय सीमाओं से लगभग ठीक ठीक मिलती हैं। इन महाद्वीपों में मेडागास्कर, भारत, आस्ट्रेलिया तथा अंटार्कटिक को भी सरलता से जोड़ा जा सकता है। अनेक लेखकों ने इनको एक साथ जोड़ने के कई ढंग प्रस्तावित किए हैं तथा गोंडवानालैंड को पुनः एकत्रित करने के कई प्रतिरूप प्रस्तुत किए हैं। विस्तृत रूप में सभी एक-दूसरे से अलग हैं, परंतु घटक भूखंडों की अंतःएकात्मता के संबंध में शायद ही कोई असहमति हो। हाल ही में अटलांटिक के दोनों ओर स्थित महाद्वीपों की अत्यधिक उन्नत भौगोलिक एकात्मता को कंप्यूटर द्वारा बनाया गया है, जिसमें अच्छे जोड़ को मिलाने के लिए सामान्यतया प्रयुक्त तट रेखाओं के स्थान पर महाद्वीपीय ढलानों की मध्य गहराई को आधार बनाया गया है।

केवल कुछेक महाद्वीपों की सीमाएं ही एक-दूसरे से नहीं मिलतीं परंतु इनके संधि-स्थलों की शैलों की समानता पर भी ध्यान दिया गया है। सभी दक्षिण महाद्वीपों में प्राचीन क्रेटानिक शैलें हैं। दक्षिण अफ्रीका से दक्षिण आस्ट्रेलिया तक मीसोजोइक डोलराइट शैलें ज्ञात की गई हैं। पूर्वी अफ्रीका, मेडागास्कर तथा भारत में प्रीकैम्ब्रियन एनार्थोसाइट का संरेखण काफी महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार पूर्वी ब्राजील से अटलांटिक पार दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका में कमेरून तक वही पट्टी प्रीकैम्ब्रियन मायलोनाइट के रूप में मिलती है।

इटॉय ने पूर्वी-दक्षिण अमेरिका से दक्षिण अफ्रीका तथा मेडागास्कर से भारत तक प्राचीन आधार शैलों की संरचनात्मक विशेषताओं का मिलान किया था। समस्थानिकीय विधियों से निरपेक्ष आयु निर्धारण आंकड़ों ने अब अटलांटिक महाद्वीपों की सीमाओं

तथा इन महाद्वीपों में एक पर्वतन पट्टी को खोज निकालने में उल्लेखनीय सहायता प्रदान की है।

गोंडवाना असमुद्री अवसाद सारे दक्षिण महाद्वीपों तथा भारत में वितरित हैं तथा पांचों महाद्वीपों के अनुक्रमों में असाधारण समग्र समानता है। पर्मियन टिलाइट, कोयला धारक संरचनाओं की समानता के साथ ही ग्लासॉप्टेरिस वनस्पति जात तथा कशेरुकी जीवों की समानता इस दृष्टिकोण को प्रमाणित करने में सहायक है कि ये महाद्वीप एक सतत सान्निध्य में थे। उत्तरी आद्य महाद्वीप की उपस्थिति को सिद्ध करने के लिए पूर्वी उत्तरी अमेरिका तथा योरोप में लायकॉप्सिड वनस्पति में अत्यधिक समानताएं पाई गई हैं। तथापि, अब ऐसे तथ्य प्रकाश में आए हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि इनमें से कुछ प्रमाण अब तर्कसंगत नहीं रह गए हैं, इनका उल्लेख इस अध्याय के अंत में किया गया है।

वर्तमान समय में शैल पुराचुंबकत्व ने महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत को बहुत अधिक सहायता प्रदान की है, इसको इसी पाठ में कुछ विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है।

भारत की स्थिति

जैसा कि पहले बताया जा चुका है दक्षिण आद्य महाद्वीप के जोड़ की समानता स्थापित करने के कई ढंग प्रस्तावित किए गए हैं, तथा उपलब्ध पुनर्रचनाओं में भारत की स्थिति अलग अलग प्रदर्शित की गई है। हालांकि स्थिति के विवरण भिन्न हैं फिर भी अनेक समूहों में भारत को आस्ट्रेलिया तथा पूर्वी अफ्रीका में मेडागास्कर के मध्य स्थित दिखाया गया है। एफ. अहमद (1960) ने प्रायद्वीपीय भारत के पूर्वी तट तथा आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट की संरचनाओं का विस्तृत अध्ययन किया तथा यह इंगित किया कि शैल प्रकारों, खनिज उपलब्धियों, पुराजलवायु, संरचना, प्राणी तथा वनस्पति में आर्कियन से लेकर क्रिटेशस तक समानता है।

कुछ वर्तमान लेखकों ने गोंडवानालैंड में भारत की स्थिति भिन्न प्रकार से आस्ट्रेलिया से दूर अफ्रीका तथा अंटार्कटिक के बीच एक पच्चड़ (वेज) के रूप में प्रस्तावित की है। यह स्थिति भूचुंबकीय असंगति संरेखन तथा अन्य प्राकृतिक लक्षणों और हिमनद निक्षेपों के विवरण के आधार पर निर्धारित की गई है।

पुराअक्षांश वक्र जो चुंबकीय अध्ययनों पर आधारित है, के अनुसार प्रीकैम्ब्रियन काल में भारत लगभग भूमध्यरेखीय अक्षांशों में स्थित था, तथा पेलिओजोइक काल में दक्षिण की ओर विचलित होकर लगभग 50° दक्षिण अक्षांश में स्थित हो गया। यह पर्मियन से क्रिटेशस काल की अवधि में लगभग स्थिर रहा फिर टर्शियरी काल में उत्तर की ओर विस्थापित हो गया। यह अपनी वर्तमान स्थिति में संभवतया मायोसीन काल में आया है।

आस्ट्रेलिया के लिए पुराअक्षांश वक्र में कैम्ब्रियन समय से भारत के समान स्पष्ट

अनुरूपता दृष्टिगत होती है। कैम्ब्रियन कार्बोनिफेरस काल में आस्ट्रेलिया ने भी दक्षिण की ओर विस्थापन किया परंतु यह विस्थापन अपेक्षाकृत कम अक्षांश का था और कार्बोनिफेरस-क्रिटेशस काल में हुआ। इसके बाद फिर एक और विचलन उत्तर की ओर हुआ।

पेलिओजोइक और मीसोजोइक काल में भारत गोंडवानालैंड का एक भाग था। इसकी संरचना व विघटन के तीन प्रारूप प्रस्तावित किए गए हैं—

1. यह वर्तमान दक्षिणी गोलार्द्ध के अधिकांश भाग को अपने में समेटे हुए एक विशाल महाद्वीप था जो सागर में एक बड़े भाग के जलमग्न हो जाने के कारण विघटित हो गया।

2. वर्तमान महाद्वीप एक भूसंधि से जुड़े हुए थे जो अब जलमग्न हो गए हैं। तथा

3. अंटार्कटिक, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका तथा भारत ये पांच प्रमुख महाद्वीप मूलरूप से एक दूसरे के सान्निध्य में थे । परंतु बाद में विस्थापित होकर अलग हो गए।

गोंडवानालैंड का भारतीय भाग सिंधु-गंगा मैदान के पार उत्तर की ओर तक विस्तारित था जहां अब हिमालय है। भारतीय कोयला क्षेत्रों के आधार में पाई जाने वाली ऊपरी कार्बोनिफेरस-पर्मियन हिमनदीय टिलाइट, संभवतया उत्तर-पूर्व सिक्किम के गोलाश्म संस्तरों, शिमला-मसूरी-गढ़वाल पर्वतों के ब्लेनी गोलाश्म संस्तर, तथा हजारा के टनाक्की गोलाश्म संस्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

टेथियन भूअभिनति गोंडवानालैंड के उत्तर में स्थित है जो पेलिओजोइक के प्रारंभ से मीसोजोइक के अंत तक जीवाश्मीय शैलों का सतत निक्षेपण स्थल रही है। क्रोल प्रक्षेत्र संभवतया मुख्य टेथिस तथा गोंडवाना आद्य महाद्वीप के मध्य एक सहायक भूअभिनति का प्रतिनिधित्व करता है।

गोंडवानालैंड व अंगारालैंड महाद्वीपीय भूपिंड धीरे धीरे एक-दूसरे के निकट हुए तथा पहले के धंसाव ने एक खाई की रचना की जिसमें टेथिस के विशाल मोटाई के अवसादों का संचयन हुआ। मीसोजोइल की समाप्ति तथा टर्शियरी के प्रारंभ में टेथिस सामान्य रूप से संकुचित होकर अरब सागर में मात्र खाड़ी मुख के रूप में रह गया। ईओसीन काल में यह खाड़ी मुख भी पूर्णतया बंद हो गया तथा हिमालय का उत्थान प्रारंभ हुआ।

पुराचुंबकत्व

पुराचुंबकत्व, महाद्वीपीय विस्थापन तथा ध्रुवीय परिभ्रमण से बहुत ही सघनता से संबंधित है। भूवैज्ञानिक अतीत में जब लावा प्रवाह हो रहा था तब लौह समृद्ध खनिज उस समय विद्यमान चुंबकीय क्षेत्र से प्रभावित होकर उसी दिशा में कुछ चुंबकीय हो गए तथा ठंढे होने पर उसी दशा में जम गए। इसी प्रकार कुछ अवसादों में यह खनिज ध्रुवों की दिशा

में विन्यस्त हो गए तथा संघटित होने पर भी उनका दिकविन्यास वही रहा। इस प्रकार की शैलों ने अपने प्राकृतिक अवशिष्ट चुंबकत्व को परिरक्षित रखा और भूवैज्ञानिक काल में पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के अध्ययन में संकेतक की भूमिका निभाई। शैलों में परिरक्षित इस अभिलेख से पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का इतिहास बनाने तथा महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत तथा विस्तारित होते हुए सागर तल की अवधारणा एवं प्लेट विवर्तनिकी आदि सिद्धांतों के पक्ष में अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हो जाते हैं।

भारत गोंडवानालैंड का सुदूर उत्तरी भाग है और ऐसा माना जाता है कि यह अधिकतम रूप से उत्तर की ओर विस्थापित हुआ है। यह तथ्य भारत में मुख्य रूप से डेक्कन राजमहल तथा ग्वालियर ट्रैप, मलानी रायोलाइट तथा गोंडवाना एवं विन्ध्य बलुआ पत्थरों के आधुनिक पुराचुंबकीय आंकड़ों द्वारा प्रमाणित किया गया है। इन आंकड़ों से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रीकैम्ब्रियन काल में भारतीय शील्ड के संदर्भ में भौगोलिक ध्रुव का अपेक्षाकृत बहुत संचलन हुआ है तथा यह काल सामान्यतया 1400 मिलियन वर्ष से 500 मिलियन वर्ष रहा होगा, जब यह ध्रुव की वर्तमान स्थिति में उसके चारों ओर अनियमित रूप से परिभ्रमित होते हुए दक्षिण की ओर 70° अक्षांश तक खिसक गया। इसके अतिरिक्त भारत दक्षिणी गोलार्द्ध में था जब दक्षिणी ज्वालामुखीय सक्रियता प्रारंभ हुई तथा उत्तर की ओर विस्थापन हुआ। डेक्कन लावा प्रवाह सामान्य रूप से 600 मी. की ऊंचाई तक चुंबकीय हो गया और इसके नीचे का लावा विपरीत दिशा में चुंबकीय हुआ। इससे यह प्रमाणित हो गया कि लावा पुंज के उद्गार के लंबे इतिहास में भू-चुंबकीय क्षेत्र विपरीत दिशा में परिवर्तित हो गया। तिरुपति बलुआ पत्थर (मध्य क्रिटेशस) भी इस विपरीतता तथा औसत अवशिष्ट दिशा जो समान आयु के डेक्कन ट्रैप के अत्यधिक समान है, की उपस्थिति को प्रदर्शित करता है। आग्नेय एवं अवसादी शैलों के बीच जो एक-दूसरें से काफी दूर स्थित हैं, यह संबंध महत्वपूर्ण है और आपस में पुष्टिकारक है। इसी प्रकार का प्रमाण कामथी बलुआ पत्थर (गोंडवाना, उपरिपर्मियन) के पुराचुंबकीय परिणामों से भी प्राप्त हुआ।

पुराचुंबकीय आंकड़ों से एक रोचक तथ्य ज्ञात हुआ है कि भारत के उत्तर की ओर विस्थापन के समय भूपिंड वामावर्त दिशा में घूम रहा था तथा इसके विपरीत यह पहले के दक्षिण की ओर विस्थापन के समय संभवतया दक्षिणावर्त दिशा में घूम रहा था। विभिन्न प्रकार की शैलों पर अनेक चुंबकीय निर्धारणों के बाद सी.टी. क्लूटबिज्क (1974) ने भारतीय उपमहाद्वीप के घूमने का इतिहास निर्धारित किया। उपमहाद्वीप से प्राप्त रेडियोधर्मिता से आयु निर्धारित प्रीकैम्ब्रियन शैलों के पुराचुंबकीय आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि इसका वामावर्त दिशा में घूमने का संचलन लगभग 1800 लाख वर्ष पूर्व (आरंभिक प्रोटेरोजोइक) प्रारंभ हुआ था। फेनेरोजोइक से प्राप्त इस प्रकार के आंकड़ों ने यह निश्चित रूप से स्थापित कर दिया है कि इस संपूर्ण काल में वामावर्त संचलन सतत रूप से चलता रहा। यह वामावर्त संचलन मीसोजोइक काल में भी अबाध

चलता रहा लेकिन इसमें हल्का-सा उत्तर की ओर का संचलन भी सम्मिलित था। बड़े अनुदैर्घ्य संचलन पेलिओजोइक काल में जारी रहे जबकि भारत ने गोंडवानालैंड के भाग के रूप में दक्षिणी ध्रुव को पार किया और टर्शियरी काल में भारत उत्तर की ओर बढ़कर एशिया महाद्वीप में मिल गया।

पेलिओजोइक आखिरी भाग में भारत से प्राप्त आंकड़ों तथा अन्य गोंडवानालैंड महाद्वीपों से प्राप्त सामान्य आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस अवधि में भारत दक्षिण की ओर एक बड़े संचलन से प्रभावित रहा है और फिर ध्रुव के दूसरी ओर पहुंच गया जबकि संचलन के घुमाव का क्रम वामावर्त दिशा में ही रहा। पर्मियन से प्रारंभिक ट्राइएसिक काल में भारत 50°-30° दक्षिण अक्षांश में स्थित था। मीसोजोइक काल में उपमहाद्वीप उत्तर की ओर थोड़ा-सा ही खिसका तथा वामावर्त दिशा में इसका संचलन लगभग 50° था। टर्शियरी काल के दौरान यह संचलन उत्तर की ओर 40° अक्षांश से भी अधिक था। सागर तल के फैलाव के आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि उत्तर की ओर संचलन 75 मिलियन वर्ष से 55 मिलियन वर्ष की अवधि में मध्य मायोसीन काल से ओर तेज हो गया।

गोंडवानालैंड का विघटन

अफ्रीका से दक्षिणी अमेरिका तथा अंटार्कटिक और आस्ट्रेलिया के ध्रुव की ओर घूमने के परिणामस्वरूप 150 मिलियन वर्ष पूर्व हिंद महासागर का विकसित होना प्रारंभ हुआ था। भारत भी पश्चिमी आस्ट्रेलिया से पृथक होना प्रारंभ करके संभवतया इसी काल में पश्चिम की ओर विस्थापित हो चुका था। इसकी विस्थापन दिशा में उत्तर की ओर परिवर्तन 100 मिलियन वर्ष पूर्व ही किसी समय आया था, और भारत एशिया से मध्य ईओसीन काल में (45 मिलियन वर्ष पूर्व) टकराया था। हिंद महासागर, मध्य-उत्तर-मायोसीन काल में वर्तमान स्थिति में आया था।

ध्रुवीय परिभ्रमण

भूविज्ञान स्तंभ के विभिन्न भागों में प्राचीन शैलों में परिरक्षित हिमनदीय अभिोख टिलाइट तथा रेखित कुट्टिम आदि के रूप में संपूर्ण विश्व में फैले हुए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस प्राचीन काल में जिन अक्षों में हिमनद थे वहां अब कोई भी हिमनद नहीं है। यह इस प्रकार समझा जा सकता है कि भूवैज्ञानिक काल के बढ़ते समय में ध्रुव अपने वर्तमान स्थान से खिसक गए हैं, या भूमिपिंड ठंढे अक्षांशों से खिसककर गर्म अक्षांशों में आ गए हैं। इस बात के प्रमाण हैं और अधिकांशतया अनुमानित है कि ध्रुवीय परिभ्रमण तथा महाद्वीपों का विस्थापन दोनों ही घटनाएं घटित हुई हैं। उत्तरी चुंबकीय ध्रुव 33,500 किमी. का लंबा मार्ग तय करके पश्च प्रीकैम्ब्रियन काल में पश्चिमी से उत्तरी अमरीका, पेलिओजोइक काल में प्रशांत महासागर के पार, मीसोजोइक काल में उत्तर पूर्वी एशियाई क्षेत्रों में, मध्य टर्शियरी काल में आर्कटिक क्षेत्र में अंतिम रूप से स्थिर हो गया है।

कुछ शैलों में अवशिष्ट चुंबकत्व के अध्ययन से हिमनदीय निक्षेपों के निरीक्षण को बड़ा प्रबल समर्थन मिला है। समस्त आयु वर्ग की अन्य महाद्वीपों में स्थित शैलों में इसके मापन से यह संभव हो पाया है कि अतीत के भूवैज्ञानिक काल में चुंबकीय ध्रुव की स्थिति को पुनः रचित किया जा सके। यदि महाद्वीपों को स्थिर मान लिया जाए, तो पुराचुंबकीय आंकड़े बताते हैं कि उत्तरी ध्रुव निश्चित रूप से विभिन्न भागों में से विभिन्न महाद्वीपों के चारों ओर घूमता रहा है। यदि दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया को पश्च पेलिओजोइक काल में एक साथ रखकर यह प्रमाणित किया जाए कि महाद्वीप बाद में विस्थापित हुए हैं तो इस असंगति को दूर किया जा सकता है।

महाद्वीपीय विस्थापन की आपत्तियां

पृथ्वी तथा चंद्रमा के यांत्रिक गुणों के संबंध में एकत्र नयी जानकारी के आधार पर कई भूवैज्ञानिकों ने इस सिद्धांत के संबंध में गंभीर आपत्तियां उठाई हैं। इसमें महासागरीय द्रोणियों तथा महाद्वीपों से प्राप्त भूभौतिकी तथा भूवैज्ञानिक आंकड़े भी हैं जो यह संकेत करते हैं कि संवहन के सर्वसमस्त प्रारूपों, सागर तल के फैलाव और या प्लेट विवर्तनिकी संचलनों के कारण महाद्वीपों का विस्थापन हो ही नहीं सकता। इस दिशा में कैम्ब्रिज के विख्यात भूभौतिकीविद सर हेरल्ड जेफ्रीस (1974) ने प्रमाणों को बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया। महाद्वीपीय विस्थापन के समर्थकों के अनुसार इस संबंध में पहला कारण दक्षिण अमरीका का अफ्रीका से ठीक तरह से मिल जाना है परंतु इस प्रकार से प्रस्तावित प्रतिरूपों में गंभीर कमियां थीं। यह जोड़ कितना ही निकट क्यों न हो क्षैतिज संचलनों हेतु कोई अच्छा प्रमाण नहीं है, जब तक कि उसमें ऊर्ध्व संचलन को न सम्मिलत किया जाए। यह देखा गया है कि आधुनिक तटों के कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें तट रेखा समानाकृति की है तथा कहीं अधिक निकट मिलान है, परंतु अधिकांश में उनके अतीत के संपर्कों के विषय में कोई भी संभावना नहीं है। इसके अतिरिक्त जेफ्रीस के अनुसार दक्षिण अमरीका व अफ्रीका के मिलान में और भी कई कमियां हैं। भूकंपीय तथा गुरुत्व आंकड़े यह दिखाते हैं कि महाद्वीपों की अपेक्षा सागर तल कहीं अधिक शक्तिशाली व मजबूत हैं अतः सागर तलों के संचलन का प्रश्न ही नहीं है।

महाद्वीपों के अपने स्थान से हटने के प्रमाणस्वरूप कुछ प्राचीन शैलों में चुंबकत्व को आधार बनाया गया है तथा चुंबकीय ध्रुव की अस्थिरता को वर्तमान भौगोलिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित किया गया। इससे यह प्रकट होता है कि जीवाश्मों द्वारा अभिलेखित समय के प्रारंभ में, सारे महाद्वीप एक-दूसरे के निकट थे तथा ध्रुव इनके बीच में था। यह कल्पना तर्कसंगत नहीं है क्योंकि इस विशाल महाद्वीप में कई कोयला क्षेत्रों व हिमनदों की स्थिति महाद्वीप के बहुत भीतर है तथा न तो कोयला और न ही हिमनद सागर से बहुत दूर अंदर की ओर बन सकते हैं क्योंकि उनके लिए भारी वर्षा या भारी हिमपात चाहिए जो महाद्वीप के सुदूर अंतःस्थली भाग में संभव नहीं है। शैलों की कई

श्रेणियां जो चुंबकीय ध्रुव के विपरीत दिशा में परिभ्रमण के समय उत्पन्न हुई थीं, के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी के निर्माण के समय से ही ध्रुवीय परिभ्रमण का यह क्रम उत्तर से दक्षिण की ओर सामान्य व अबाध रूप से चल रहा है तथा यह क्रम विपरीत रूप से भी चला है और इसकी स्थिति में कोई अचानक परिवर्तन नहीं आया है। यह परिवर्तन थोड़े ही समय में घटित हुए हैं परंतु परिभ्रमण की दर महाद्वीपीय विस्थापन के समर्थकों द्वारा ज्ञात दर से कहीं अधिक थी।

अतीत के भू-संपर्कों के पक्ष में वनस्पति व जीवों की समानता को महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा महाद्वीपों के काफी बड़े भूभाग को समर्थकों द्वारा जलमग्न बताया जाता है। बहुत से वैज्ञानिकों ने यह प्रदर्शित किया है कि पृथ्वी की वनस्पति के बीज तथा जीवों के कवच सागरों, महासागरों के पार हजारों किलोमीटर तक परिवहित हो जाते हैं तथा इस यांत्रिकी के आधार पर वानस्पतिक समानता को समझा जा सकता है। डायनासोर दक्षिण अमेरिका से अंटार्कटिक तक महाद्वीपीय चाप द्वारा जो कि दो महाद्वीपों के बीच एक स्थल संपर्क था, प्रवासन कर सकते थे।

यह दर्शाया गया है कि अभिलेखित इतिहास की अवधि में जलवायु में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, तथा पुराजलवायु को महाद्वीपीय विस्थापन के प्रमाण के रूप में प्रयुक्त किया जाना वांछनीय नहीं है।

अब यह सुनिश्चित किया जा चुका है कि प्रारूपिक गोंडवाना वनस्पति 'लॉसॉप्टेरिस' तिब्बत, चीन तथा साइबेरिया में भी प्राप्त है—यह क्षेत्र मिलकर आद्य महाद्वीप लारेशिया का निर्माण करते हैं। महाद्वीपीय विस्थापन के समर्थकों के विचार में, इस प्रकार ये गोंडवानालैंड से असंबंधित थे। विस्थापन के सिद्धांत के विरुद्ध ये एक अकाट्य प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं। विस्तृत रूप से अलग क्षेत्रों में भी एक समान वनस्पति या जीव उत्पन्न हो सकते हैं और यह स्वतंत्र रूप से समानांतर विकास तथा समाभिसरण (होमाप्लाजी अर्थात भागों या अंगों में एकत्रीकरण या समानांतरण) के कारण यह समानता विकसित हो सकती है।

सागर तल का विस्तारण तथा प्लेट विवर्तनिकी

सामान्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पुराचुंबकीय अध्ययनों के विकास से महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत को व्यापक समर्थन मिला है। महासागर तलों की खोज से मिले तथ्यों को केवल महाद्वीपीय विस्थापन अथवा पुराचुंबकत्व की अवधारणाओं को लागू करके पूर्णतया नहीं समझाया जा सकता है। महाद्वीपों तथा महासागरों की कुछ चौंका देने वाली विशिष्टताओं की व्याख्या करने के लिए विख्यात ब्रिटिश भूवैज्ञानिक आर्थर

होम्स (1928) ने यह कल्पना की कि पृथ्वी के प्रावार में कुछ ऐसी संवहन धाराएं उत्पन्न हुईं जो भूपृष्ठ के संचलन का कारण बनीं। उनके विचारों को बाद में एच. एच. हेस (1960) ने और परिमार्जित किया तथा उन्होंने सागर तल के विस्तार की अवधारणा को पहले केवल एक विचार के रूप में प्रस्तावित किया। लेकिन बाद के दशक में भूभौतिकी निरीक्षणों से बहुत अधिक समर्थन मिला और इस मूल विचार को उल्लेखनीय वैज्ञानिक पुष्टि मिली। महाद्वीपीय विस्थापन तथा सागर तल विस्तार में संबंध स्थापित हो जाने से प्लेट विवर्तनिकी की अवधारणा ने जन्म लिया। भूविज्ञान के क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी अवधारणा मानी जाती है जो एकरूपतावाद के बाद सर्वाधिक स्वीकृत अवधारणा है। जैसी कि आशा थी, विस्तृत शोधों से प्राप्त आंकड़े न तो प्लेट विवर्तनिकी अथवा सागर तल विस्तार के सिद्धांतों की सीमाओं का समर्थन करते हैं और न ही उनका खंडन करते हैं। सिद्धांत के पक्ष तथा विपक्ष में प्राप्त प्रमाणों पर आज बहुत विचार-विमर्श हो रहा है और अभी तक अंतिम रूप से कुछ भी निर्णय नहीं लिया जा सका है तथा इसमें संदेह है कि यह निर्णय कभी लिया भी जा सकेगा।

सरल शब्दों में प्लेट विवर्तनिकी पृथ्वी के बाहरी स्थलमंडल का प्रतिरूप है। यह कई बड़े बड़े खंडों या प्लेट से लक्षित है जो महाद्वीपीय व सागरीय भूपर्पटी से निर्मित है। यह प्लेट धीमी संवहन गति वाले प्रावार अथवा दुर्बलता मंडल (एस्थेनोस्फियर जो स्थलमंडल के ठीक नीचे स्थित है और प्लास्टिक विरूपण के गुणों से युक्त है) में विस्कासी (विस्कस) निम्नस्थ तल के ऊपर तैर रही है। प्लेट का यह संचलन उन भूकंपत्व वाली पट्टियों से दूर सागर तल के विस्तारण के कारण है जो सागरीय कटक तथा उनसे संबंधित अनुप्रस्थ भ्रंशों के साथ साथ हैं। स्थलमंडल के बड़े भाग का निर्माण प्रावार की मध्यसागरीय कटक से लावा के उत्स्रवण से होता है जो प्लेट को कटक शिखरों से परे धकेलने की चेष्टा करता है, चूंकि पृथ्वी का स्थलमंडल विस्तारित नहीं हो रहा है, यह स्पष्ट है कि प्लेट के किनारे मुड़ रहे हैं और सागरीय खाइयों के नीचे धंसाव क्षेत्र में लुप्त हो जाते हैं। ये क्षेत्र वे लंबे क्षेत्र हैं जिनके किनारे एक भूपर्पटी खंड दूसरे भूपर्पटी खंड की अपेक्षा नीचे होता है। प्रत्येक खंड अधिकांशतया एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से संचलन करता है और वे कभी कभी आपस में जोर से टकराते भी हैं। यह शक्ति उन्हें सागर तल से विस्तारित होने से प्राप्त होती है जो खंडों की सीमाओं पर केंद्रित होती है। प्लेट की सीमा विवर्तनिक सक्रियता की पट्टियों द्वारा प्रकट होती है, जिसमें ज्वालामुखी तथा भूकंप सम्मिलित हैं। महाद्वीपीय विस्थापन की समेकित अवधारणा, सागर तल विस्तार तथा प्लेट विवर्तनिकी मिलकर भूमंडलीय विवर्तनिकी कहलाते हैं।

प्रारंभ में 6 प्लेटें पहचानी गई थीं परंतु कुछ शोधकर्ता 12 अथवा 20 प्लेट के प्रतिरूप को मानते हैं। भारत एक विशाल प्लेट का भाग है जिसमें भारतीय प्रायद्वीप, हिंद महासागर का एक बड़ा भाग तथा आस्ट्रेलिया सम्मिलित हैं। कुछ वैज्ञानिकों द्वारा

अनेक उप-प्लेटें भी मनोनीत की गई हैं परंतु उनकी पहचान और सीमा के बारे में विचार भिन्न हैं। भारतीय प्लेट बहुत विशाल है जो संभवतया एक नई सीमा है जो श्रीलंका से आस्ट्रेलिया तक विस्तारित है। ऐसा माना गया है कि इस रेखा पर आने वाले छिछले भूकंप इस बात का संकेत करते हैं कि सागर के अंदर यह एक सक्रिय भूकंपी क्षेत्र है और एक नवजात द्वीप चाप के अनुकूल है।

भारतीय प्लेट

भूसीवन उन क्षेत्रों को दर्शाते हैं जहां सागरीय स्थलमंडल पूर्ण रूप से धंसा हुआ है। ये प्रक्षेत्र उस समय निर्मित होते हैं जब स्थलमंडल के पिंड टकराकर इस प्रकार का तनाव उत्पन्न कर देते हैं जो इन पिंडों को धंसाव क्षेत्र जिससे वे टकराते हैं, से जोड़ देता है, जिसे सीवन कहा जाता है। यह बहुत ही कम स्थितियों में सरल सुस्पष्ट लक्षण या संरेखण होते हैं। जब भारतीय प्लेट हिमालय के उत्तर में यूरेशियन प्लेट से टकराई, तब एक संधिरेखा क्षेत्र का निर्माण हुआ जो सिंधु-त्सांगपो संधिरेखा स्थल कहलाया, क्योंकि यह लगभग इन दोनों नदियों की घाटियों के अनुरूप संरेखित है। पुरानी शैलों के विदेशज खंड जो इस प्रक्षेत्र में क्लिश के समान क्रिटेशस आयु के अवसादों में धंसे हुए दृष्टिगत होते हैं, उन शैलों के अवशेष हैं जो अतीत में धंस चुकी हैं और ऐसा विश्वास किया जाता है और इसी कारण इन शैलों के यथावत दृश्यांश कभी भी नहीं देखे गए हैं। इस क्षेत्र में ओफियोलाइट स्पष्टतया उपस्थित है जो मैफिक तथा अतिमैफिक आग्नेय शैलों के वे समूह हैं जिनका उद्गम भूअभिनतियों के विकास के प्रारंभिक चरण के साथ संबंधित है।

शिवालिक तथा बृहत हिमालय के बीच स्थित मुख्य सीमा क्षेत्र संभवतया अंतमहाद्वीपीय अभिसारी क्षेत्र रहा हो जो संभवतया लवण श्रृंखला के दक्षिण तक विस्तारित रहा होगा बलूचिस्तान-ईरान के मकरान तट पर स्थित संरेखण यह संकेत करता है कि यह एक धंसाव प्रक्षेत्र है जो सागरीय स्थलमंडल से बना है और अरब तथा यूरेशियन प्लेटों के मध्य स्पष्ट सीमा-रेखा का निर्धारण करता है, और जो उत्तर की ओर यूरेशियन प्लेट के नीचे धंस गई है। यह सीमा संभवतया सीनोजोइक के अधिकांश भाग में सक्रिय रही है। मकरान क्षेत्र लगभग संपूर्ण खाई-चाप तंत्र से निर्मित है, परंतु अवसाद की प्रचुर मात्रा में धंसी हुई अरब प्लेट की कम नति का कारण बनी और अनुगभीर खाई को विकसित नहीं होने दिया। इस छिछली नति वाले प्रक्षेत्र में केवल सामान्य भूकंपनीयता ही दृष्टिगत होती है। मकरान क्षेत्र एक शीघ्र अभिवर्धी महाद्वीपीय सीमा है। भारतीय, यूरेशियन तथा अरब प्लेटें कराची के निकट एक त्रिसंधि स्थल का निर्माण करती हैं।

राष्ट्रीय भूभौतिकी शोध संस्थान के वैज्ञानिकों का एक दल बृहत हिमालय पामीर-हिंदूकुश क्षेत्र में भूकंपीय गभीरतामापन तथा भूकंप विवर्तनिक आंकड़ों के अध्ययन से

इस नतीजे पर पहुंचा है कि भारतीय प्लेट की उत्तरी सीमा न तो सिंधु सीवन रेखा के पास और न ही मुख्य मध्य क्षेत्र के पास स्थित है, वरन यह सम्मिलित भारत-तिब्बत खंड के और भी आगे उत्तर की ओर स्थित है। यह नयी प्लेट सीमा तियेन शान-नान शान चलायमान वलय पट्टी के दक्षिणी छोर से मिलती हुई मानी गई है, जो ऑरडोस और शांशी खंडों के दक्षिण से होती हुई अंत में पूर्वोत्तर की ओर मुड़कर पेचिंग के दक्षिण-पूर्व तक जाती है। इस प्रस्तावित प्लेट की पश्चिमी सीमा पामीर-आले विभंग क्षेत्र के दक्षिण की ओर का अनुक्रम है जो बदरकशां पर्वतमाला की पश्चिमी सीमा के पास से गुजरती हुई सुलेमान-किरथर पर्वतमालाओं के भ्रंश क्षेत्र से और भी दक्षिण में मिलती है। इस प्लेट की पूर्वी सीमा दक्षिण-पूर्वी चीन को तिब्बत से अलग करती है, और लुंग-मे-शान क्षेत्र तथा अरकन वलय पट्टी के निकट से गुजरती है। यह प्रस्तावित भारतीय प्लेट सम्मिलित भारत-तिब्बत खंड के उत्तर की ओर और साथ ही पूर्व की ओर के संचलन की ओर संकेत करती है।

अरावली क्षेत्र संभवतया प्रोटेरोजोइक संधि रेखा प्रक्षेत्र को स्पष्ट करता है। इसमें भूअभिनतिक अवसादों की ओफियोलाइट के साथ एक प्रारूपिक संबद्धता है।

भारतीय प्लेट, प्रशांत प्लेट से तथा परिवर्तनीय सीमाओं के एक लंबे जटिल तंत्र से संबंधित है जो भारत-अंटार्कटिक-प्रशांत त्रिसंधि स्थल से विस्तारित होकर न्यूजीलैंड के दक्षिण से, और वहां से फिलीपींस तक, सुंडा चाप से झुकते हुए हिमालय के पूर्वी अक्षसंधि तक विस्तारित है। धंसाव सुंडा-अंडमान चाप के निकट दृष्टिगत होता है और फिर उत्तर की ओर भारत-बर्मा पर्वतमाला में मिल जाता है।

भारतीय प्लेट का मध्य एशिया भूपिंड के विपरीत उत्तर की ओर संचलन ने टेथिस विदर को बंद कर दिया। इस प्लेट के पूर्वी यूरेशियन प्लेट के नीचे घुसने से टीथीय अवसादों ने ऊपर की ओर उठकर हिमालय पर्वत शृंखला की रचना की। यह विश्वास किया जाता है कि भारतीय महाद्वीपीय भूपृष्ठ के इसके नीचे घुसने के कारण ही तिब्बत के नीचे स्थित भूपृष्ठ की मोटाई सामान्य महाद्वीप की मोटाई से दो गुनी है। सिंधु-गंगा द्रोणी एक विवर्तनिकी अग्रगभीर है जो धंसते हुए किनारे पर निर्मित हुआ है। यह जलोढ़क की मोटी परत के नीचे स्थित विन्ध्य अवसादों की उपस्थिति को दर्शाती है।

लवण शृंखला की कैम्ब्रियन संरचनाओं से प्राप्त पुराचुंबकीय परिणामों तथा मध्य भारत के सहसंबंधी आश्मिकी समूहों में विरोधाभास देखा गया है। इस विरोधाभास की व्याख्या एक सिंधु उप प्लेट की कल्पना करके की जा सकती है जो भारतीय उपमहाद्वीप का ही उत्तर-पश्चिमी भाग है। संभवतया यह सुदूर उत्तर की ओर भारतीय प्लेटफार्म की अपेक्षा संचालित हो गया हो जिसके परिणामस्वरूप पश्चिमी हिमालयी अक्षसंधि की रचना हुई हो। भारतीय प्लेटफार्म से संबंधित भूवैज्ञानिक तथा भूभौतिकी आंकड़ों तथा अल्पाइन-हिमालय पट्टी के उत्तर की ओर उभरे हुए मोड़ से,

विशेष रूप से उत्तर-पश्चिम हिंद महासागर (अरब सागर) से प्राप्त चुंबकीय व संरचनात्मक आंकड़ों को सिंधु प्लेट की उपस्थिति के संबंध में प्रतिपादित किया जाना चाहिए।

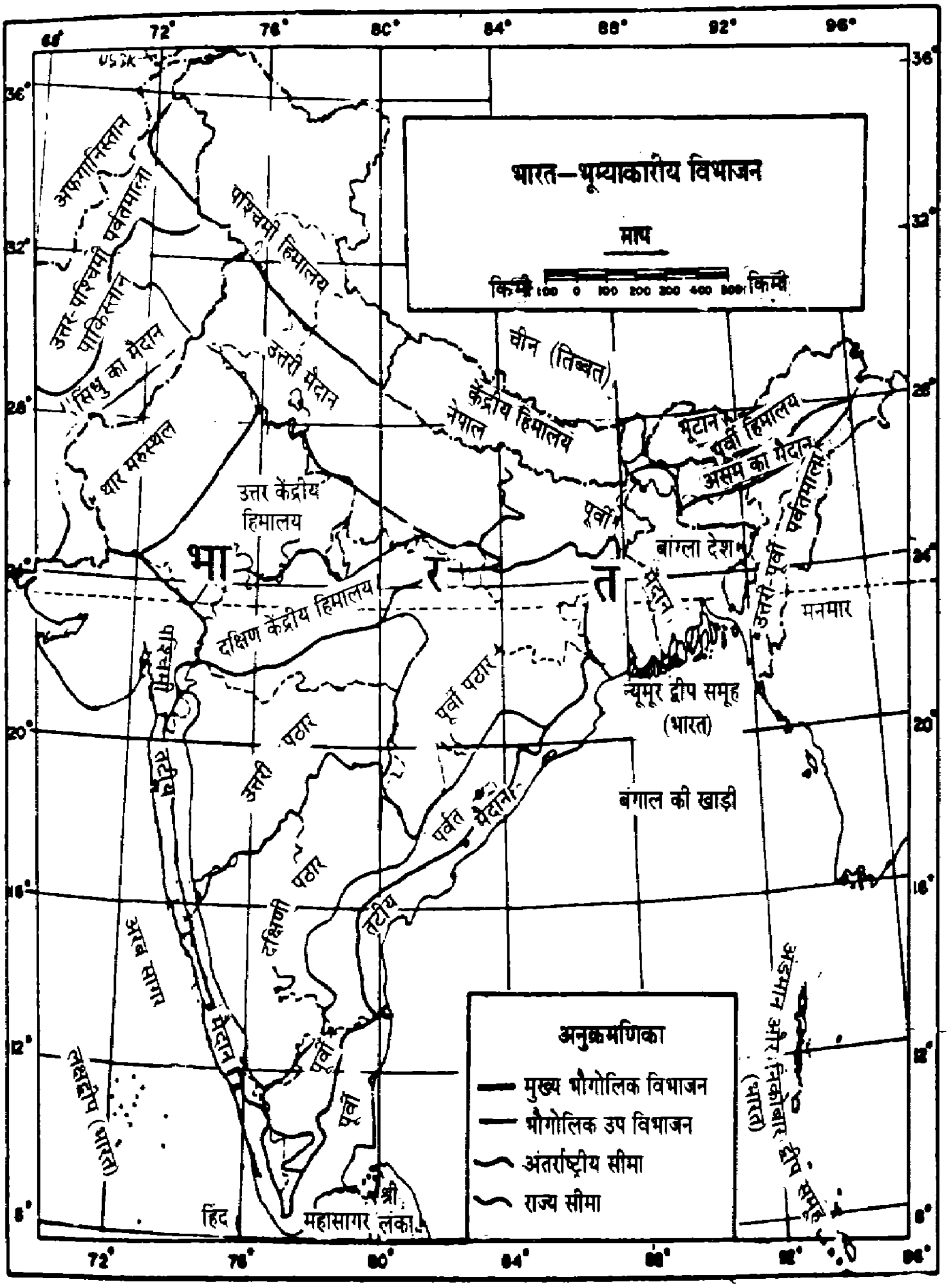
भारतीय प्लेट की पश्चिमी सीमा का निर्धारण ओबेन विभंग क्षेत्र जो दिशा नति भ्रंशन के कारण मरी कटक में दृष्टिगत है, द्वारा किया जाता है। यह भारतीय प्लेट को अफ्रीकी प्लेट से अलग करता है। पश्चिम की प्लेट सीमा कार्ल्सवर्ग कटक तथा मध्य सागरीय कटक के साथ सीधे दक्षिण तक विस्तारित है।

भारत के लिए प्लेट विवर्तनिकी प्रतिरूप का यहां संक्षेपण किया जा सकता है। भारतीय प्लेट का उत्तर की ओर पहला विस्थापन पश्चिमी सोजोइक प्रारंभिक सीनोजोइक काल में प्रारंभ में हुआ। भारतीय प्रायद्वीप जो गोंडवानालैंड का एक भाग था, तथा मुख्य एशिया महाद्वीप के मध्य स्थित टेथिस महासागर क्रिटेशस काल में संकीर्ण होना प्रारंभ हुआ तथा सिंधु-त्सांगपो संधि रेखा प्रक्षेत्र का विकास प्रारंभ हुआ। यह विस्थापन लगभग 55 मिलियन वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ तथा दोनों महाद्वीपों का अंतिम मिलाप लगभग 38 मिलियन वर्ष पूर्व हुआ था। सागरीय भूपृष्ठ के तिब्बत के नीचे घुसने से उसकी मोटाई में वृद्धि हो गई।

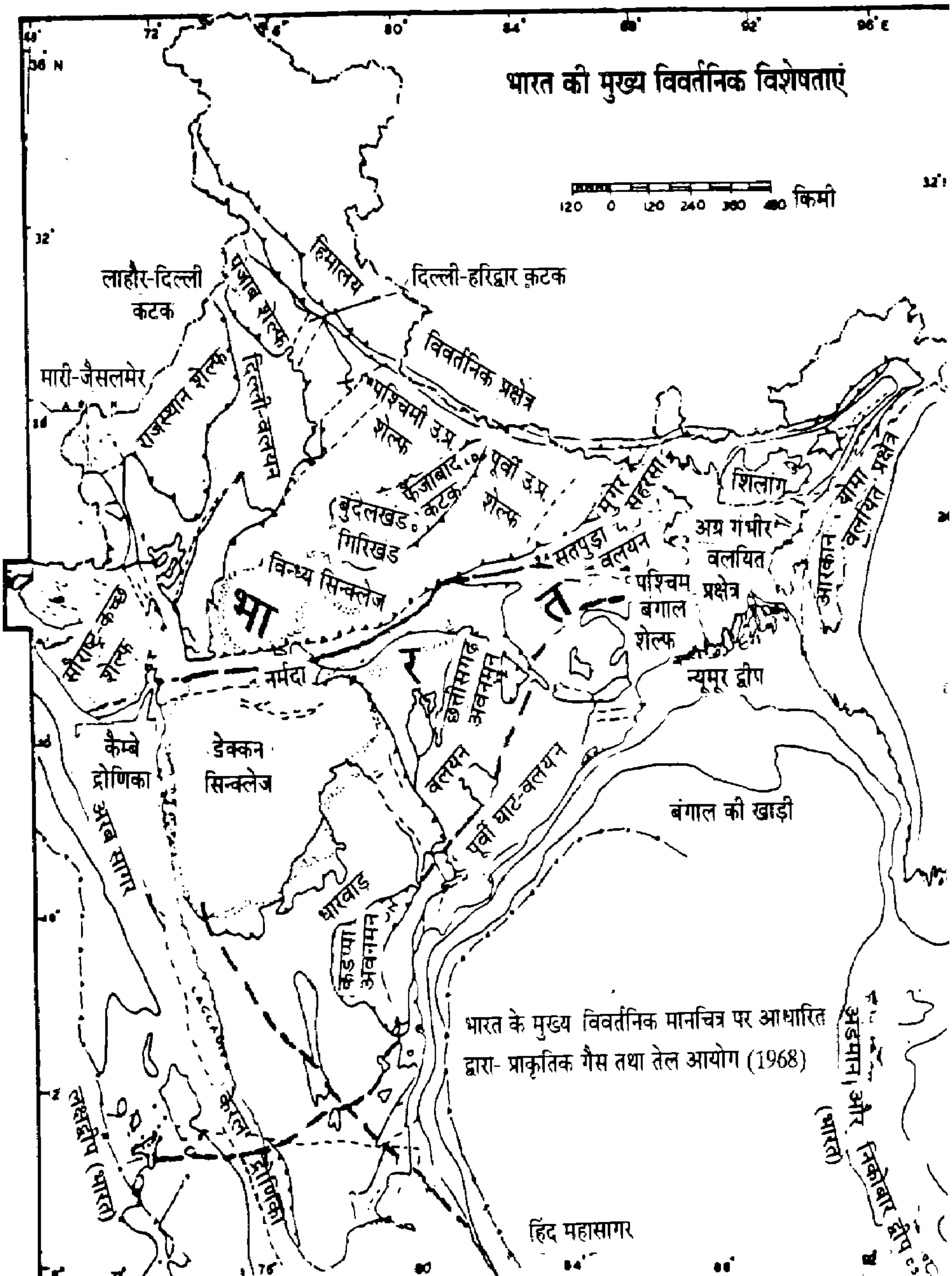
प्लेट विवर्तनिकी की आपत्तियां

सागर द्रोणियों तथा महाद्वीपों से मिले नए भूवैज्ञानिक एवं भूभौतिकी आंकड़ों के निरीक्षणों से कई ऐसे तथ्य प्रकाश में आए हैं जो नयी भूमंडलीय विवर्तनिकी के प्रस्तावित प्रतिरूपों से मेल नहीं खाते हैं और उनकी वैधता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। इन आंकड़ों का संकलन ए. ए. मेयेरहॉफ तथा एच.ए. मेयेरहॉफ (1974) ने किया था। उदाहरण के लिए अनेक पुराजलवायु आंकड़े जैसे महाद्वीपों पर दृष्टिगत प्राचीन इवेफेराइट का वितरण, कार्बोनेट शैलों, कोयला तथा टिलाइट्स की उपस्थिति की व्याख्या उसी दिशा में संभव है, जब पृथ्वी के घूमने के अक्ष की वर्तमान स्थिति, महाद्वीपों और सागर द्रोणियों का घूमना कम-से-कम 1600 मिलियन वर्ष तक अर्थात मध्य प्रोटेरोजोइक काल से प्रारंभ से स्थिर रहा हो। पृथ्वी का अक्ष और महाद्वीपों तथा सागर द्रोणियों के घूमने का सामंजस्य पिछले 570 मिलियन वर्षों से अर्थात फेनेरोजोइक काल से जीवाश्मीय अकशेरुकी तथा चतुष्पाद जीवों और वनस्पतियों से ज्ञात होता है। विभिन्न प्राणि क्षेत्र के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि महाद्वीप अपनी लगभग इसी स्थिति में वर्तमान सापेक्षिक स्थितियों में प्रोटेरोजोइक काल से हैं।

प्लेट विवर्तनिक अवधारणा की संभवतया सबसे भयंकर त्रुटि अमेरिका से यूरो अफ्रीका तक संचलित होने की भौतिक आवश्यकताएं हैं जो इस प्रकार के संचलन की किसी भी संभावना को उस समय तक नकारती हैं, जब तक कि पिछले 150-200 मिलियन वर्षों के बीच पृथ्वी अप्रत्याशित रूप से विस्तारित न हुई हो।



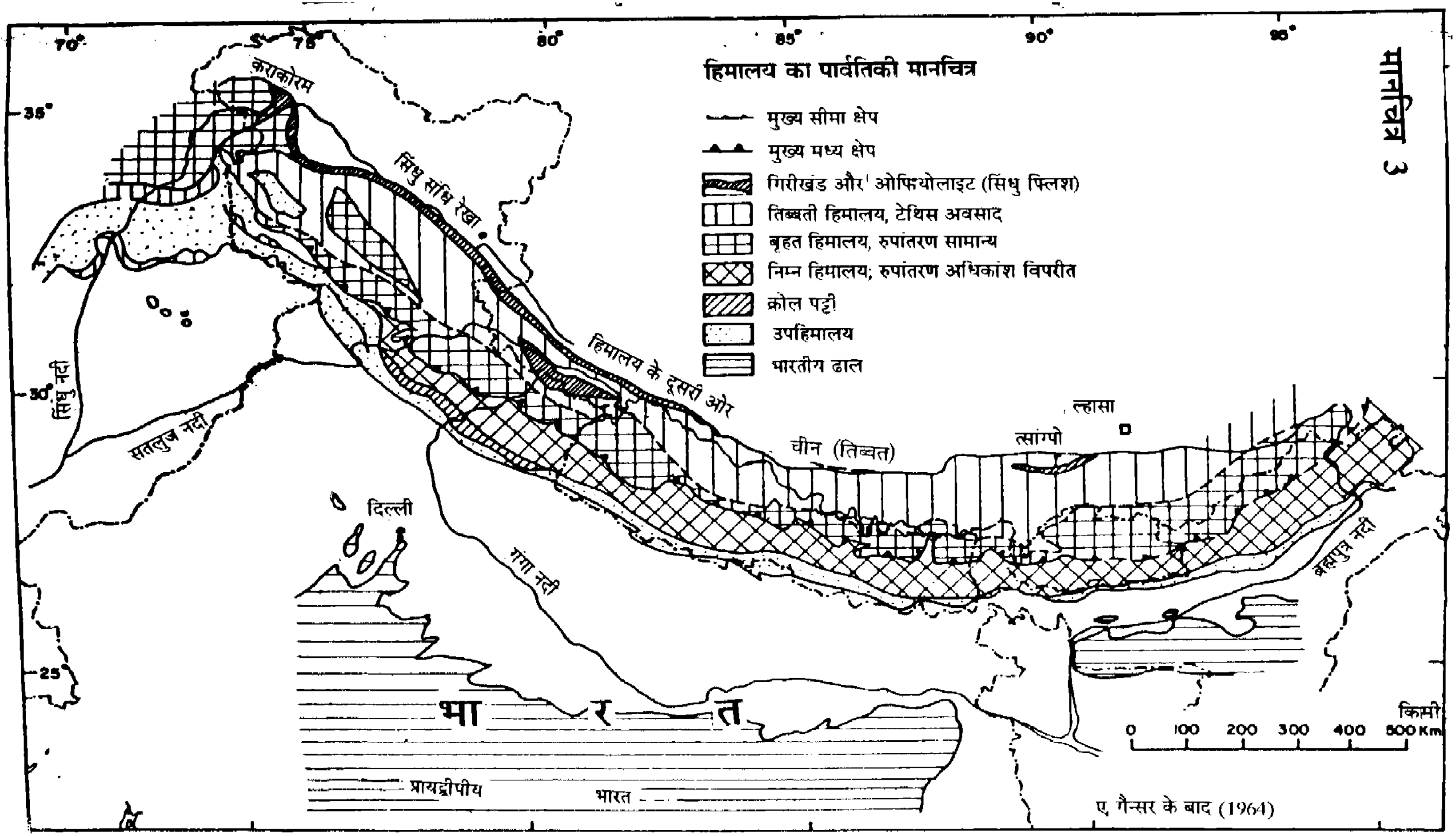
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।



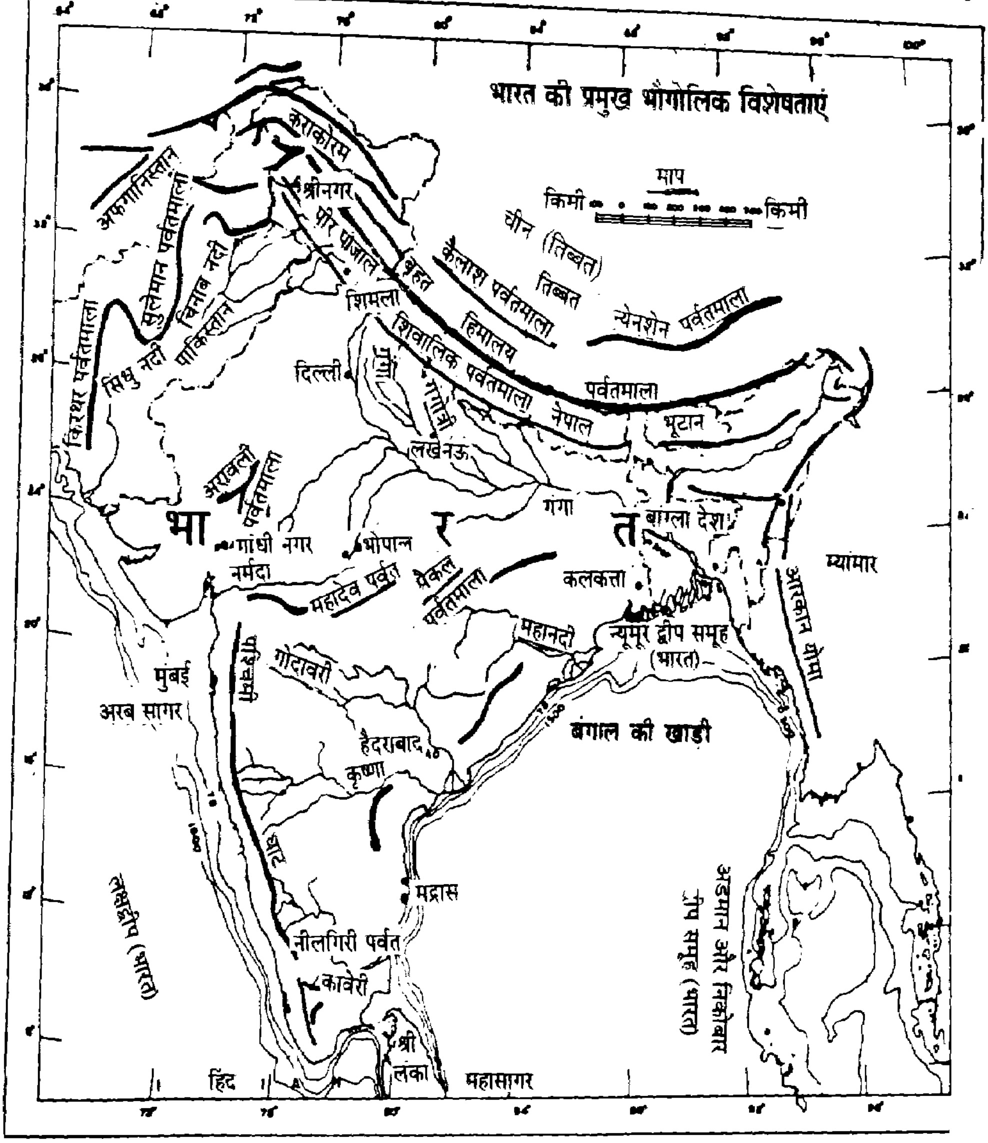
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

भारत की जल सीमा की समुद्र में माप, आधार रेखा से ठीक 12 नौटिकल मील है।

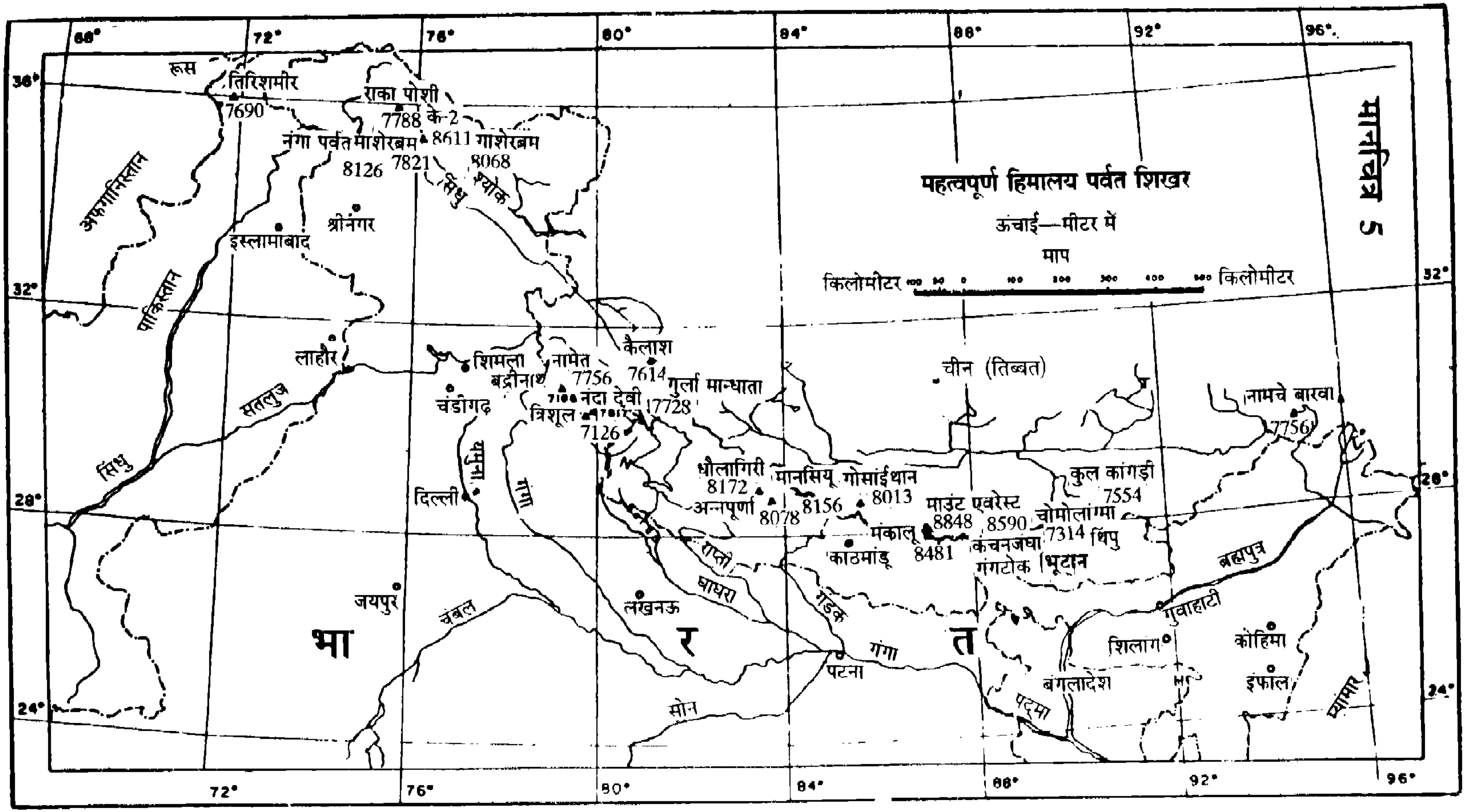
मानचित्र 3


हिमालय का पार्वतिकी मानचित्र
मुख्य सीमा क्षेप
मुख्य मध्य क्षेप
गिरीखंड और ओफियोलाइट (सिंधु फ्लिश)
तिब्बती हिमालय, टेथिस अवसाद
बृहत हिमालय, रुपांतरण सामान्य
निम्न हिमालय; रुपांतरण अधिकांश विपरीत
क्रोल पट्टी
उपहिमालय
भारतीय ढाल
70°
75°
80°
85°
90°
95°
35°
30°
25
काराकोरम
सिंधु संधि रेखा
हिमालय के दूसरी ओर
चीन (तिब्बत)
ल्हासा
त्सांग्पो
सिंधु नदी
सतलुज नदी
दिल्ली
गंगा नदी
ब्रह्मपुत्र नदी
भा र त
प्रायद्वीपीय
भारत
किमी
0 100 200 300 400 500 Km
ए. गैन्सर के बाद (1964)

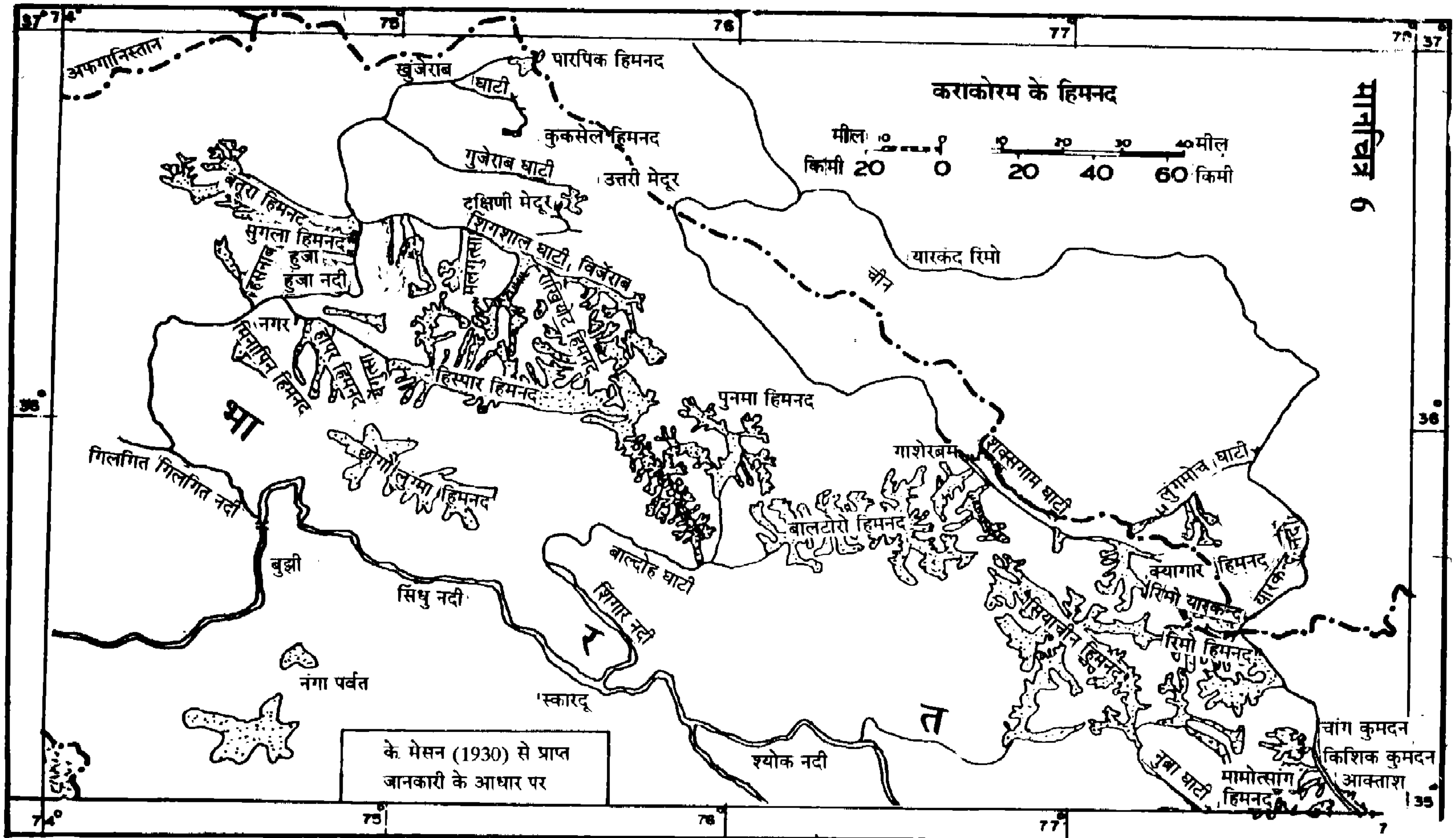
मानचित्र 4

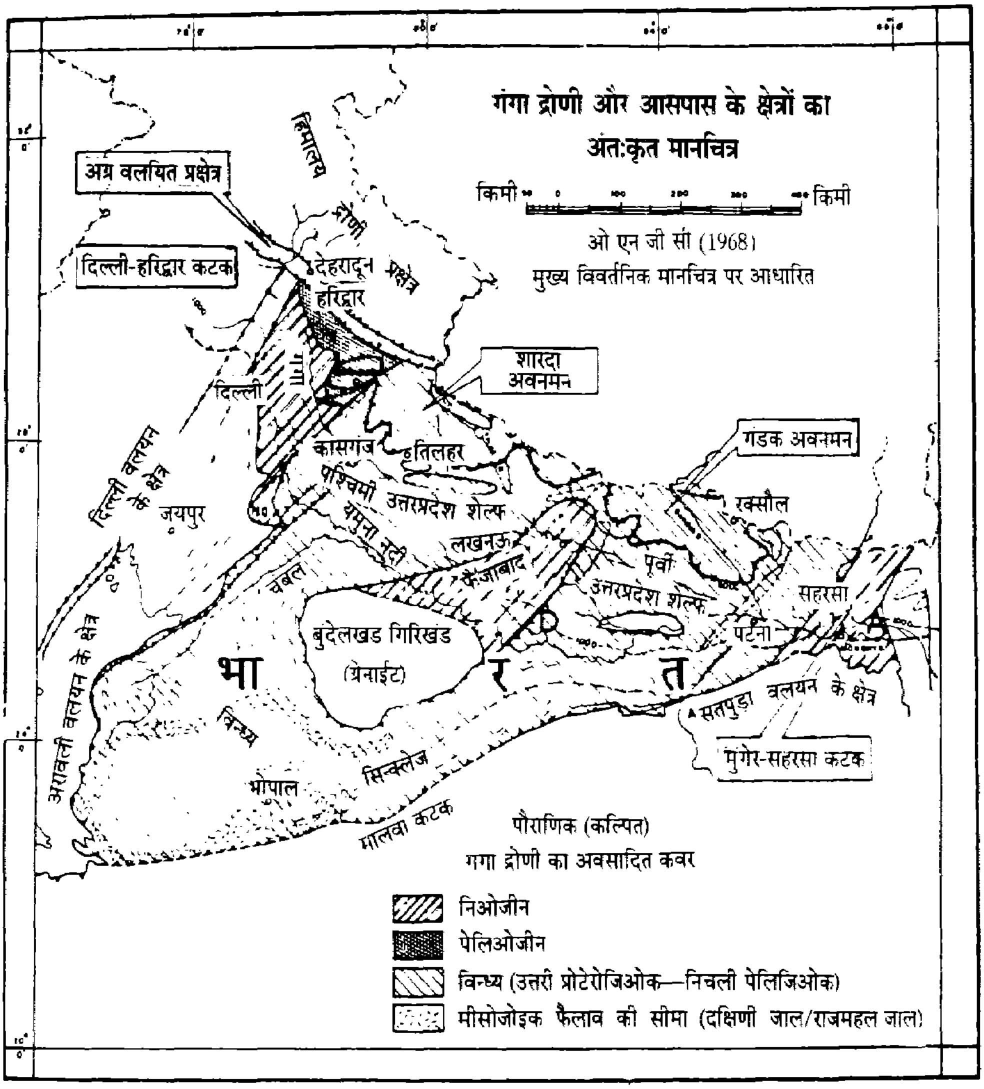


भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

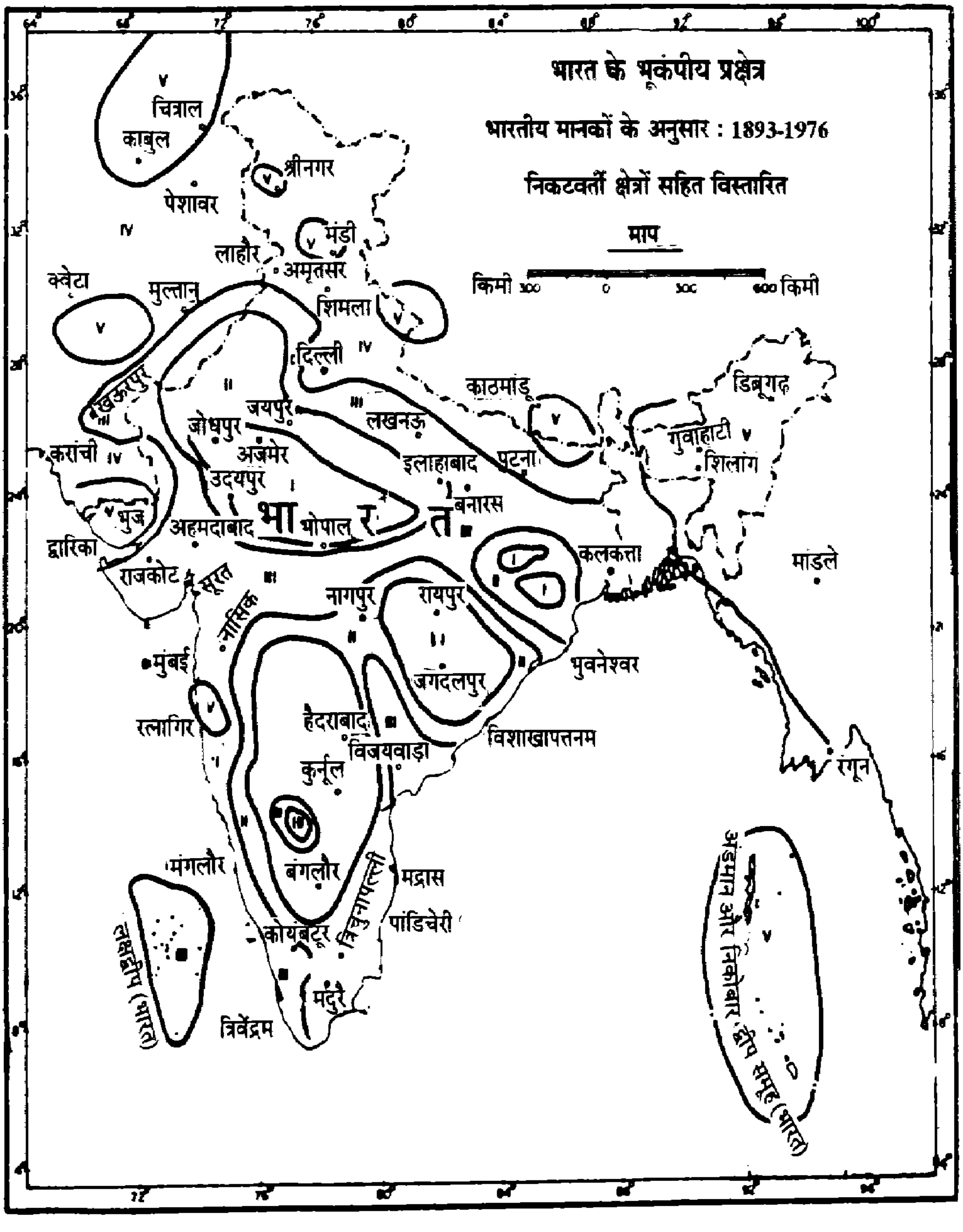


भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित। © भारत सरकार का प्रतिलिप्याधिकार, 1996।


मानचित्र 6
कराकोरम के हिमनद
मील 10 0 10 20 30 40 मील
किमी 20 0 20 40 60 किमी
अफगानिस्तान
खुंजेराब घाटी
पारपिक हिमनद
कुकसेल हिमनद
गुजेराब घाटी
उत्तरी मेदूर
दक्षिणी मेदूर
शिमशाल घाटी, विर्जेराब
बतूरा हिमनद
सुगला हिमनद
हुजा
हुजा नदी
नगर
हिस्पार हिमनद
पुनमा हिमनद
चीन
यारकंद रिमो
गाशेरब्रम
शक्सगाम घाटी
बालटोरो हिमनद
बाल्टोह घाटी
सिगार नदी
भा
र
त
गिलगित
गिलगित नदी
बुझी
सिंधु नदी
नंगा पर्वत
स्कारदू
श्योक नदी
क्यागार हिमनद
रिमो यारकंद
रिमो हिमनद
सियाचीन हिमनद
नुब्रा घाटी
मामोस्तांग हिमनद
चांग कुमदन
किशिक कुमदन
आक्ताश
के. मेसन (1930) से प्राप्त जानकारी के आधार पर
74° 75° 76° 77° 78°
35 36 37



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

फैरो-आइसलैंड-ग्रीनलैंड कटक के नीचे महाद्वीपीय भूपृष्ठ की उपस्थिति उत्तरी अटलांटिक के पार यह प्रमाणित करती है कि महाद्वीपों के अन्य स्थानों की आवश्यकता उत्तरी गोलार्द्ध में पूर्व-पश्चिम संचलनों को आर्कियन काल से नहीं होने देती है। पुराजलवायु तथा पुराजीवाश्मीय आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि विशिष्ट महाद्वीपों का उत्तर-दक्षिण संचलन मात्र कुछ सौ किलोमीटर तक ही सीमित था। यह तथ्य टेथिस के लिए भी सत्य है।

सागरीय द्रोणियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाद्वीपीय चाप पूरण खाई जहां पर धंसाव की क्रिया चल रही है, से अपरूपित हैं। बड़ी मात्रा में अपरूपित अवसादी शैलों की सबसे ऊपरी परत यह संकेत करती है कि या तो (1) पश्च मीसोजोइक काल या उसके पहले के समय से सागर तल का कोई विस्तार नहीं हुआ, (2) द्वीपीय चापों व खाइयों से सागर की ओर निश्चित रूप से धंसाव होना चाहिए, अथवा (3) धंसाव नाम की कोई भी प्रक्रिया नहीं है। कुछ द्वीपीय चापों यथा—निम्न एन्टिलीज तथा टोंगा-न्यूजीलैंड चापों के अध्ययन से यह सिद्ध हो गया है कि सागरवर्ती अभूकंपीय द्वीप शृंखलाएं अपनी वर्तमान सापेक्ष स्थिति में मध्य मीसोजोइक तथा पश्च पेलिओजोइक काल से उसी स्थिति में हैं। इसी प्रकार विभंग क्षेत्र जो मध्य सागरीय कटक तक विस्तारित हैं, को भरने वाले अवसाद भी अपरूपित हैं, अतः यदि सागरतल विस्तार की प्रक्रिया जारी होती है तो यह संभव नहीं होता। इसी प्रकार के कई विभंग महाद्वीपों के तटीय क्षेत्रों में भी विस्तारित हैं।

प्लेट विवर्तनिकी के समर्थक 'JOIDES' वेधन परियोजना की इस अवधारणा को महत्वपूर्ण तथ्य मानते हैं, लेकिन यह देखा गया है कि इस वेधन में पड़ने वाले सभी बेसाल्ट वास्तव में आधार शैल नहीं हैं जैसा कि इस अवधारणा के समर्थकों का विचार था क्योंकि उन्होंने ऊपरी संपर्कों को ही देखा। मीसोजोइक अवसादों के नीचे मिलने वाले बेसाल्ट के निरपेक्ष आयु निर्धारण से यह ज्ञात हुआ है कि वे टर्शियरी के अंत या उससे अभिनव काल के हैं। यह प्लेट विवर्तनिकी के समर्थकों को गहरा धक्का था क्योंकि यह सिद्ध किया जा चुका था कि मीसोजोइक अवसादों के निक्षेपण के बाद बेसाल्ट शैलें ऊपर उठी हैं। एक और तथ्य जो आधुनिक प्लेट विवर्तनिक में मेल नहीं खाता वह है अटलांटिक, प्रशांत महासागर तथा हिंद महासागर में पाई गई प्राचीन शैलों की खोज जो 797 से 1590 मिलियन वर्ष की आयु की हैं। यदि सागर तल के विस्तार तथा धंसाव की प्रक्रिया वास्तव में हो रही है तो ये शैलें वहां पर मिलती ही नहीं।

प्रसारी पृथ्वी

कुछ काल पहले यह लगने लगा था कि प्लेट विवर्तनिकी की अवधारणा लगभग अकाट्य है, लेकिन जैसा कि पिछले खंड में कहा गया है, यह बहुत से भूवैज्ञानिक व भूभौतिकी तथ्य तथा निरीक्षण जो वास्तव में इसके विरुद्ध चले गए हैं के सामने टिक

नहीं पाएगी। इस अवधारणा के विरुद्ध कई नयी आपत्तियां उठाई गई हैं और विरोध बढ़ रहा है। पहले की फुसफुसाहट अब स्पष्ट स्वर धारण करने लगी है और एक वैकल्पिक अवधारणा 'विस्तारित होती पृथ्वी' प्रस्तावित की जा रही है जो विभिन्न निरीक्षित तथ्यों की व्याख्या करेगी।

प्रसारी पृथ्वी का सर्वप्रथम प्रस्ताव संभवतया रूसी भौतिकीविद आई.ओ. यारकोव्स्की द्वारा 1899 में किया गया था। कई जर्मन वैज्ञानिकों ने भी इस शताब्दी के तीस के दशक में इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किए थे, परंतु उन पर कोई ध्यान उस समय तक नहीं दिया गया जब तक कि इस विचार को तस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रो. एस. डब्ल्यू. केरी ने 1958 में पुनर्जीवित नहीं किया। उनके द्वारा विस्तारित होती पृथ्वी की अवधारणा के पक्ष में रखे गए प्रमाणों की एक लंबी सूची ने भूवैज्ञानिकों के समक्ष जानकारी के नए आयाम खोल दिए गए हैं और यह आशा जागृत की कि यह अवधारणा उन कई समस्याओं की व्याख्या कर देगी जिन्हें प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत सुलझा पाने में असमर्थ रहा है।

संक्षेप में, प्रसारी पृथ्वी की अवधारणा यह बताती है कि आदि पृथ्वी आकार में कहीं छोटी थी शायद वर्तमान पृथ्वी व्यास के आकार की लगभग 60 प्रतिशत तथा इसका आकार क्रमिक रूप से विभिन्न दरों से वर्तमान समय तक बढ़ रहा है। और इसमें यह तर्क दिया गया कि ऐसा होने से इसके परिणामस्वरूप सागरीय क्षेत्र निश्चित रूप से बढ़ रहे होंगे जबकि महाद्वीपीय पृष्ठ लगभग स्थिर है और यह विशाल महाद्वीप 'पैन्जिया' के टूटने के कारण बने। प्रारंभ में जब पूरी पृथ्वी 'सियालिक' भूपर्पटी से ढकी हुई थी जो समुद्र जल से डूबा हुआ था। जैसे जैसे विभ्रंश विकसित होते गए उन्होंने सागरीय विशेषताएं अपनाईं और जैसे जैसे समुद्र जल कम होता गया, अधिक-से-अधिक भूक्षेत्र धीरे धीरे सागर के ऊपर उभरने लगा।

सागर तल विस्तार की अवधारणा प्रसारी पृथ्वी की अवधारणा से मेल नहीं खाती है। वास्तव में दोनों ही, प्लेट विवर्तनिकी अवधारणा व प्रसारी पृथ्वी की अवधारणा, मानती हैं कि सागर क्षेत्र महासागरीय कटकों के मध्य से बेसाल्टीय मैग्मा के अंतर्वेधन के कारण बढ़ते जा रहे हैं, लेकिन दोनों के बीच एक विशेष अंतर यह है कि प्लेट विवर्तनिकी के अनुसार समान मात्रा का भूपृष्ठ नीचे धंसता है जबकि विस्तार भूखंड के धंसाव को नकारता है और यह प्रस्तावित करता है कि पृथ्वी का व्यास मैग्मा के ऊपर उठने से सतत रूप से बढ़ रहा है।

विस्तारवादी यह मानते हैं कि 'पैन्जिया' ट्रायसिक या उसके कुछ बाद तक अविभाजित रहा है, क्योंकि वनस्पति की अनेक प्रकार, अकशेरुकी, केशेरुकी यहां तक कि कीड़े-मकोड़े भी 'सागर' के दोनों ओर वितरित थे। यह सागर टेथिस उस समय था जब भारत और एशिया का मुख्य भूभाग सागर के संकीर्ण होने के समय पास आए हुए बताए जाते हैं। एफ. अहमद के निष्कर्षों के अनुसार टेथिस एक 'अधि महाद्वीपीय सागर'

रहा होगा इसलिए, गोंडवानालैंड स्पष्ट रूप से उत्तर-पूर्वी एशिया तथा संभवतया बाकी 'पैन्जिया' में घुसा रहा हो।

पृथ्वी की वर्तमान त्रिज्या के ग्लोब पर 'पैन्जिया' की पुनर्रचना करने पर यह गोलार्द्ध से कुछ अधिक भाग को आच्छादित करता है, तथा शेष में प्रशांत महासागर है। आर्कटिक, एटलांटिक, हिंद एवं दक्षिणी महासागर के बनने से इनका क्षेत्रफल पैन्जिया से लगभग दो गुना हो गया। इस प्रकार एक स्थिर त्रिज्या वाली पृथ्वी के आधार पर, प्रशांत महासागर तो घटकर वास्तव में शून्य हो जाता, परंतु ऐसा नहीं है, इसकी अपेक्षा प्रशांत महासागर के चारों ओर के महाद्वीपीय खंड अपने पड़ोसी से बड़े भागों में अलग हो गए और इस प्रकार प्रशांत महासागर शून्य के स्थान पर क्षेत्रफल में बढ़कर इस समय लगभग आधे ग्लोब को घेरे हुए है। पुराचुंबकीय मापनों ने यह स्पष्ट किया है कि अंटार्कटिक को छोड़कर समस्त महाद्वीप पर्मियन काल में आर्कटिक के चारों ओर दसेक डिग्री के भीतर एकत्र हो रहे थे। लगभग 250 मिलियन वर्ष पूर्व योरोप लगभग उत्तरी ध्रुव से कोई 40° निकट था, और साइबेरिया कोई 20° और निकट था। अन्य आंकड़े यह भी दर्शाते हैं कि महाद्वीप ध्रुव के चारों ओर एकत्र हो रहे थे। यहां तक कि जैसा कि मध्य महासागरीय कटक से पता चलता है, आर्कटिक भी एक विस्तार योग्य क्षेत्र था। यह सब तब तक संभव नहीं जब तक कि पृथ्वी का प्रसार न हो रहा हो।

यह पहले भी बताया जा चुका है कि गोंडवानालैंड जीवाश्म सिंधु-त्सांगपो सीवन रेखा-प्रक्षेत्र के उस पार चीन में भी पाए गए हैं। यह तभी संभव था जबकि भारत एशिया मुख्यभूमि से अलग न हुआ होता। ए. गैन्सर (1979) ने कहा है कि सारे क्षेत्र के प्रमाण यह स्पष्ट करते हैं कि भारत तथा यूरेशिया एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं थे, हालांकि प्लेट विवर्तनिकी के प्रतिरूपों के अनुसार भारत हजारों किलोमीटर तक विस्थापित हो चुका है। जे. स्टॉकलिन (1983) ने कहा है कि हिमालय का भूविज्ञान यह स्पष्ट करने में विफल रहा है कि पेलिओजोइक-अति प्रारंभिक मीसोजोइक काल में वहां पर किसी टेथिस सागर का अस्तित्व भी रहा है। इन दोनों उत्कृष्ट हिमालय भूविज्ञानियों ने भारत के विस्थापन के विचार को नकारा है तथा प्रसारी पृथ्वी के सिद्धांत को समर्थन दिया है। हिमालय का जन्म न तो टकराव और न ही धंसाव के कारण हुआ है, वरन यह तो ऊर्ध्व उत्थान का परिणाम है। हिमालय की संरचना स्वयं ही, अत्यधिक संपीडन तथा भूपर्पटी सिकुड़ने के प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस संपीडन की सबसे स्पष्ट व्याख्या भारत-तिब्बत का हिंद महासागर की ओर से आने वाले भूपर्पटी प्रसार के दबाव के कारण अभिसरण है। हिमालय में भूपर्पटी के संकुचन की मात्रा हिंद महासागर के भूपृष्ठ विस्तार की क्षतिपूर्ति की तुलना में कम थी। गोंडवाना तथा अन्य वनस्पति के वर्तमान वितरण ने प्रारंभिक पर्मियन काल के टेथिस महासागर के अस्तित्व में न होने की प्रबल संभावना की ओर संकेत किया है, यह पश्च टर्शियरी काल तक संभव नहीं होता जब टेथिस सागर बना था। जे. के. डेविडसन (1983) ने टिप्पणी की कि यदि प्लेट

विवर्तनिकी के समर्थक पृथ्वी की स्थिर त्रिज्या के आधार पर क्रिटेशस की समाप्ति पर टेथिस को संकीर्ण करना चाहते हैं, तो उन्हें इसको 6,000 किमी. चौड़ा खोलना पड़ेगा तथा 130 मिलियन वर्षों में पुनः संकीर्ण करना पड़ेगा। इस गणना के अनुसार यह बिना रुके हुए एक वर्ष में 5 सेंमी. की दर से प्रसारित होगा एवं इसी दर से धंसाव द्वारा ही संभव हो पाएगा जो अत्यंत कठिन है।

पृथ्वी के प्रसार का सिद्धांत अभी भी विकसित व परीक्षित किया जा रहा है। इसने अभी अपना वह प्रभाव नहीं बनाया है जैसा कि प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत ने बनाया था, परंतु यह अनेक भूवैज्ञानिक व भूभौतिकी निरीक्षणों की व्याख्याएं करने का दावा करती है जिनकी किसी अन्य प्रकार से संतोषजनक रूप में व्याख्या नहीं की जा सकती।

□□□

अनुक्रमणिका

मुद्रक : जे. के. ऑफसेट प्रिंटर्स, नांगलोई, दिल्ली – 110041